जस्टिस मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद तक़ी साहिब उस्मानी

इस्लाही ख़ुतबात

(10)

जस्टिस मौलाना मुफ़्ती
मुहम्मद तक़ी साहिब उस्मानी

अनुवादक

मुहम्मद इमरान क़ासमी एम०ए० (अलीग)

प्रकाशक

फ़रीद बुक डिपो प्रा० लि०
422, मटिया महल, ऊर्दू मार्किट, जामा मस्जिद देहली 6
फ़ोन आफ़िस, 3289786,3289159, आवास, 3262486

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

नाम किताब	इस्लाही ख़ुतबात जिल्द (10)
ख़िताब	मौलाना मुहम्मद तक़ी उस्मानी
अनुवादक	मुहम्मद इमरान क़ासमी
संयोजक	मुहम्मद नासिर ख़ान
तायदाद	2100
प्रकाशन वर्ष	अप्रैल 2002
कम्पोज़िंग	इमरान कम्प्यूटर्स मुज़फ़्फ़र नगर (0131-442408)

>>>>>>>>>>>

प्रकाशक

फ़रीद बुक डिपो प्रा० लि०

422, मटिया महल, ऊर्दू मार्किट, जामा मस्जिद देहली 6

फ़ोन आफ़िस, 3289786,3289159, आवास, 3262486

मुख़्तसर फ़ेहरिस्ते मज़ामीन

तफ़सीली फ़ेहरिस्ते मज़ामीन

(95) रमज़ान किस तरह गुज़ारें?

क्र.स.	क्या?	कहां?
	(99) बहस व मुबाहसा और झूठ को छोड़ दीजिए	
1.	कामिल ईमान की दो निशानियां	104
2.	मज़ाक में झूठ बोलना	104
3.	हुज़ूर सल्ल. के मज़ाक का एक वाक़िआ	105
4.	हुज़ूर सल्ल. के मज़ाक का दूसरा वाक़िआ	106
5.	हज़रत हाफ़िज़ ज़ामिन शहीद और दिल्लगी	107
6.	हज़रत मुहम्मद बिन सीरीन और क़हक़हे	107
7.	हदीस में मज़ाक़ दिल्लगी की तरग़ीब	108
8.	हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ि. और झूठ से परहेज़	108
9.	मौलाना मुहम्मद क़ासिम नानौतवी रह. और झूठ से परहेज़	109
10.	आज समाज में फैले हुए झूठ	110
11.	बहस व मुबाहसे से परहेज़ करें	112
12.	अपनी राय बयान करके अलग हो जाएं	112
13.	सूरः काफ़िरून के नाज़िल होने का मक़सद	113
14.	दूसरे की बात क़बूल कर लो, वर्ना छोड़ दो	114
15.	एक ख़त्म न होने वाला सिलसिला जारी हो जाएगा	114
16.	मुनाज़रा मुफ़ीद नहीं	115
17.	फ़ालतू अक़्ल वाले बहस व मुबाहसा करते हैं	115
18.	बहस व मुबाहसे से अंधेरी पैदा होती है	116
19.	जनाब मौदूदी साहिब से मुबाहसे का एक वाक़िआ	116
	(100) दीन सीखने और सिखाने का तरीक़ा	
1.	हदीस का तर्जुमा	118

(101) इस्तिख़रा का मसनून तरीक़ा

पेश लफ़्ज़

हज़रत मौलाना मुहम्मद तक़ी साहिब उस्मानी

بسم اللہ الرحمن الرحیم

الحمد لله وكفى وسلام على عباده الذين اصطفى، امابعد

अपने बाज़ बुज़ुर्गों के इर्शाद की तामील में अह्क़र कई साल से जुमे के दिन अ़सर के बाद जामा मस्जिद बैतुल मुकर्रम गुलशन इक़्बाल कराची में अपने और सुनने वालों के फ़ायदे के लिए कुछ दीन की बातें किया करता है। इस मज्लिस में हर तब्क़ा–ए–ख़्याल के हज़रात और औ़रतें शरीक होते हैं। अल्हम्दु लिल्लाह! अह्क़र को ज़ाती तौर पर भी इसका फ़ायदा होता है और अल्लाह तआ़ला के फ़ज़्ल से सुनने वालों भी फ़ायदा महसूस करते हैं। अल्लाह तआ़ला इस सिलसिले को हम सब की इस्लाह का ज़रिया बनाएं, आमीन।

अह्क़र के ख़ुसूसी मददगार मौलाना अ़ब्दुल्लाह मेमन साहिब सल्ल–महू ने कुछ मुद्दत से अह्क़र के उन बयानात को टेप रिकार्डर के ज़रिये महफ़ूज़ करके उनके कैसिट तैयार करने और उनको शाया करने का एहतिमाम किया, जिसके बारे में दोस्तों से मालूम हुआ के अल्लाह के फ़ज़्ल से उनसे भी मुसलमानों को फ़ायदा पहुंच रहा है।

उन कैसिटों की तायदाद अब तीन सौ से ज़ायद हो गयी है, उन्हीं में से कुछ कैसिटों की तक़रीरें मौलाना अ़ब्दुल्लाह मेमन साहिब सल्ल–महू ने क़लम बन्द भी फ़रमा लीं, और उनको छोटे छोटे रिसालों की शक्ल में शाया किया। अब वह उन तक़रीरों का मजमूआ़ "इस्लाही ख़ुतबात" के नाम से शाया कर रहे हैं।

इनमें से बाज़ तक़रीरों को अह्क़र ने देखा भी है, और मौसूफ़ ने उन पर एक मुफ़ीद काम भी किया है, कि तक़रीरों में जो हदीसें आती हैं उनको असल किताबों से निकाल करके उनके हवाले भी

दर्ज कर दिए हैं, और इस तरह उनका फ़ायदा और ज़्यादा बढ़ गया है।

इस किताब के मुताले के वक़्त यह बात ज़ेहन में रहनी चाहिए कि यह कोई बाक़ायदा तसनीफ़ नहीं है, बल्कि तक़रीरों का ख़ुलासा है जो कैसिटों की मदद से तैयार किया गया है। इसलिये इसका अन्दाज़ तहरीरी नहीं बल्कि ख़िताबी है। अगर किसी मुसलमान को इन बातों से फ़ायदा पहुंचे तो यह महज़ अल्लाह तआला का करम है, जिस पर अल्लाह तआला का शुक्र अदा करना चाहिए, और अगर कोई बात ग़ैर मोहताात या ग़ैर मुफ़ीद है तो वह यक़ीनन अहक़र की किसी ग़लती या कोताही की वजह से है। लेकिन अल्हम्दु लिल्लाह! इन बयानात का मक़सद तक़रीर बराय तक़रीर नहीं, बल्कि सब से पहले अपने आपको और फिर सुनने वालों को अपनी इस्लाह की तरफ़ मुतवज्जह करना है।

अल्लाह तआला अपने फ़ज़्ल व करम से इन ख़ुतबात को ख़ुद अहक़र की और तमाम पढ़ने वालों की इस्लाह का ज़रिया बनायें, और ये हम सब के लिए ज़ख़ीरा-ए-आख़िरत साबित हों। अल्लाह तआला से मज़ीद दुआ है कि वह इन ख़ुतबात के मुरत्तिब और नाशिर को भी इस ख़िदमत का बेहतरीन सिला अ़ता फ़रमाएं, आमीन।

मुहम्मद तक़ी उस्मानी

12 रबीउल अव्वल 1414 हिजरी

بسم الله الرحمٰن الرحيم

अर्ज़े नाशिर

अल्हम्दु लिल्लाह "इस्लाही ख़ुतबात" की दसवीं जिल्द आप तक पहुंचाने की हम सआदत हासिल कर रहे हैं। नवीं जिल्द की मक़बूलियत और इफ़ादियत के बाद मुख़्तलिफ़ हज़रात की तरफ़ से नवीं जिल्द को जल्द से जल्द शाया करने का शदीद तक़ाज़ा हुआ, और अब अल्हम्दु लिल्लाह, दिन रात की मेहनत और कोशिश के नतीजे में सिर्फ़ चन्द माह के अन्दर यह जिल्द तैयार होकर सामने आ गयी। इस जिल्द की तैयारी में बिरादरे मुकर्रम मौलाना अ़ब्दुल्लाह मेमन साहिब ने अपनी मसरूफ़ियात के साथ साथ इस काम के लिए अपना क़ीमती वक़्त निकाला, और दिन रात की अंथक मेहनत और कोशिश करके दसवीं जिल्द के लिए मवाद तैयार किया। अल्लाह तआ़ला उनकी सेहत और उम्र में बर्कत अ़ता फ़रमाए, और मज़ीद आगे काम जारी रखने की हिम्मत और तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाए, आमीन।

हम जामिया दारुल उलूम कराची के उस्तादे हदीस जनाब मौलाना महमूद अशरफ़ उस्मानी साहिब मद्दज़िल्लहुम और मौलाना अ़ज़ीज़ुर्रहमान साहिब मद्दज़िल्लहुम के भी शुक्रगुज़ार हैं, जिन्होंने अपना क़ीमती वक़्त निकाल कर इस पर नज़रे सानी फ़रमाई, और मुफ़ीद मश्विरे दिए, अल्लाह तआ़ला दुनिया व आख़िरत में उन हज़रात को बेहतरीन अज्र अ़ता फ़रमाए, आमीन।

तमाम पढ़ने वालों से दुआ़ की दरख़्वास्त है कि अल्लाह तआ़ला इस सिलसिले को और आगे जारी रखने की हिम्मत और तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाए, और इसके लिए वसाइल और अस्बाब में आसानी पैदा फ़रमाए। इस काम को इख़्लास के साथ जारी रखने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाए।

नाशिर

परेशानियों का इलाज

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

عن عبد اللّٰه بن ابی اوفیٰ رضی اللّٰه عنه قال: قال رسول اللّٰه صلی اللّٰه عليه وسلم من كانت له الى اللّٰه حاجة او الیٰ احد بن بنی آدم فليتوضأوليحسن الوضوء ثم ليصل ركعتين ثم ليثن على اللّٰه تبارك وتعالیٰ وليصل على النبى صلى اللّٰه عليه وسلم، ثم ليقل ، لااله الا اللّٰه الحليم الكريم، سبحان اللّٰه رب العرش العظيم، الحمد للّٰه رب العالمين، اسألك موجبات رحمتك وعزائم مغفرتك والغنيمة من كل بروالسلامة من كل اثم لا تدع لنا ذنباالاغفرته ولاهمّا الافرجته ولا حاجة هى لك رضى الا قضيتهايا ارحم الراحمين۔ (ترمذی شریف)

तम्हीद

यह हदीस शरीफ़ हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अबी औफ़ा रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत की गयी है जो आं हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के फुक़हा सहाबा में से हैं, वह रिवायत करते हैं कि जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमायाः जिस शख़्स को अल्लाह तआ़ला से कोई ज़रूरत पेश आये या किसी आदमी से कोई काम पेश आ जाये तो उसको चाहिये कि वह अच्छी तरह सुन्नत के मुताबिक़ तमाम आदाब के साथ वुज़ू करे, फिर दो रक्अ़तें पढ़े और दो रक्अ़त पढ़ने के बाद अल्लाह तआ़ला की तारीफ़ व प्रशंसा बयान करे और फिर हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर दुरूद भेजे और फिर दुआ़ के ये कलिमात कहे। (कलिमात ऊपर

हदीस में मौजूद हैं)

इस हदीस में नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उस नमाज़ का तरीक़ा बयान फ़रमाया है जिसको उर्फ़े आम में, "सलातुल हाजा" कहा जाता है, यानी "हाजत की नमाज़" जब भी किसी शख़्स को कोई ज़रूरत पेश आये या कोई परेशानी लग जाये या कोई काम करना चाहता हो लेकिन वह काम होता नज़र न आ रहा हो, या उस काम के होने में रुकावटें हों तो उस सूरत में नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने एक मुसलमान को यह तल्क़ीन फ़रमाई कि वह "नमाज़े हाजत" पढ़े, और नमाज़े हाजत पढ़ने के बाद "दुआए हाजत" पढ़े, और फिर अपना जो मक़सद है वह अल्लाह तआला के सामने अपनी ज़बान और अपने अल्फ़ाज़ में पेश करे, अल्लाह तआला की रहमत से यह उम्मीद है कि अगर उस काम में ख़ैर होगी तो इन्शा अल्लाह वह काम ज़रूर अन्जाम पा जायेगा। इसलिये हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सुन्नत यह है कि ज़रूरत के वक़्त नमाज़े हाजत पढ़ी जाये, और अल्लाह तआला की तरफ़ रुजू किया जाये।

एक मुसलमान और काफ़िर में फ़र्क़

इस से यह बताना मक़सूद है कि इन्सान को जब कोई ज़रूरत पेश आती है तो वह ज़ाहिरी असबाब और दुनियावी असबाब तो इख़्तियार करता है, और शरई तौर पर उन असबाब को इख़्तियार करने की इजाज़त भी है, लेकिन एक मुसलमान और एक काफ़िर के दरमियान यही फ़र्क़ है, कि जब एक काफ़िर दुनिया के ज़ाहिरी असबाब इख़्तियार करता है तो वह उन्हीं असबाब पर भरोसा करता है, कि जो असबाब मैं इख़्तियार कर रहा हूं उन्हीं असबाब के ज़रिये मेरा काम बन जायेगा।

नौकरी के लिए कोशिश

जैसे फ़र्ज़ करें कि एक शख़्स बे रोज़गार है, और इस बात के

लिये कोशिश कर रहा है कि मुझे अच्छी नौकरी मिल जाये, अब नौकरी हासिल करने का एक तरीक़ा यह है कि वह जगहें तलाश करे, और जहां कहीं नौकरी मिलने की संभावना हो वहां दरख़्वास्त दे, और अगर कोई जानने वाला है तो उस से अपने हक़ में सिफ़ारिश कराए वग़ैरह। ये सब ज़ाहिरी असबाब हैं। अब एक काफ़िर सारा भरोसा उन्हीं ज़ाहिरी असबाब पर करता है, और उसकी कोशिश यह होती है कि दरख़्वास्त ठीक तरीक़े से लिख दूं, सिफ़ारिश अच्छी करा दूं और तमाम ज़ाहिरी असबाब इख़्तियार कर लूं और बस उसकी पूरी निगाह और पूरा भरोसा उन्हीं असबाब पर है, यह काम काफ़िर का है। और मुसलमान का काम यह है कि असबाब तो वह भी इख़्तियार करता है, दरख़्वास्त वह भी देता है, और अगर सिफ़ारिश की ज़रूरत है तो जायज़ तरीक़े से वह सिफ़ारिश भी कराता है, लेकिन उसकी निगाह उन असबाब पर नहीं होती, वह जानता है कि न यह दरख़्वास्त कुछ कर सकती है और न यह सिफ़ारिश कुछ कर सकती है, किसी मख़्लूक़ की क़ुदरत और इख़्तियार में कोई चीज़ नहीं, उन असबाब के अन्दर तासीर पैदा करने वाली ज़ात अल्लाह जल्ल जलालुहू की ज़ात है। वह मुसलमान तमाम असबाब इख़्तियार करने के बाद उसी ज़ात से मांगता है कि या अल्लाह! इन असबाब को इख़्तियार करना आपका हुक्म था, मैंने ये असबाब इख़्तियार कर लिये, लेकिन इन असबाब में तासीर पैदा करने वाले आप हैं। मैं आप ही से मांगता हूं कि आप मेरी यह मुराद पूरी फ़रमा दीजिये।

बीमार आदमी की तदबीरें

जैसे एक शख़्स बीमार हो गया, अब ज़ाहिरी असबाब ये हैं कि वह डॉक्टर के पास जाये और जो दवा वह तज्वीज़ करे वह दवा इस्तेमाल करे। जो तदबीर वह बताये वह तदबीर इख़्तियार करे, ये सब ज़ाहिरी असबाब हैं। लेकिन एक काफ़िर शख़्स जिसका अल्लाह तआला पर ईमान नहीं है, वह सारा भरोसा उन दवाओं और तदबीरों पर करेगा, डॉक्टर पर करेगा। लेकिन एक मोमिन बन्दे को हुज़ूरे

अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने यह तल्कीन फ़रमाई कि तुम दवा और तदबीर ज़रूर करो, लेकिन तुम्हारा भरोसा उन दवाओं और तदबीरों पर न होना चाहिये, बल्कि तुम्हारा भरोसा अल्लाह जल्ल शानुहू की जात पर होना चाहिये। अल्लाह तआला की जात शिफ़ा देने वाली है। अगर वह जात उन दवाओं और तदबीरों में तासीर न डाले तो फिर उन दवाओं और तदबीरों में कुछ नहीं रखा है, एक ही दवा, एक ही बीमारी में, एक इन्सान को फ़ायदा पहुंचा रही है, लेकिन वही दवा उसी बीमारी में दूसरे इन्सान को नुक़सान पहुंचा रही है, इसलिये कि हक़ीक़त में दवा में तासीर पैदा करने वाले अल्लाह तआला हैं, अगर अल्लाह तआला चाहें तो मिट्टी की एक चुटकी में तासीर अता फ़रमा दें, अगर वह तासीर अता न फ़रमायें तो बड़ी से बड़ी दवा महंगी से महंगी दवा में तासीर अता न फ़रमायें।

इसलिये हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की तालीम यह है कि असबाब ज़रूर इख़्तियार करो लेकिन तुम्हारा भरोसा उन असबाब पर न होना चाहिये, बल्कि भरोसा अल्लाह जल्ल शानुहू की ज़ात पर होना चाहिये, और उन असबाब को इख़्तियार करने के बाद यह दुआ करो: या अल्लाह! जो कुछ मेरे बस में था और जो ज़ाहिरी तदबीरें इख़्तियार करना मेरे इख़्तियार में था वह मैंने कर लिया, लेकिन या अल्लाह! उन तदबीरों में तासीर पैदा करने वाले आप हैं उन तदबीरों को कामयाब बनाने वाले आप हैं, आप ही उनमें तासीर अता फ़रमाइये, और आप ही उनको कामयाब बनाइए।

तदबीर के साथ दुआ

हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से दुआ का एक अजीब और ख़ूबसूरत जुम्ला नकल किया गया है, कि जब भी आप किसी काम की कोई तदबीर फ़रमाते, चाहे दुआ की ही तदबीर फ़रमाते, तो उस तदबीर के बाद यह जुम्ला इर्शाद फ़रमाते:

اللّٰهم هذا الجهد وعليك التكلان۔ (ترمذی شریف)

यानी ऐ अल्लाह! मेरी ताकत में जो कुछ था वह मैंने इख़्तियार कर लिया, लेकिन भरोसा आपकी ज़ात पर है, आप ही अपनी रहमत से इस मक़सद को पूरा फ़रमा दीजिये।

नुक़्ता-ए-निगाह बदल दो

यही वह बात है जो हमारे हज़रत डॉ. अ़ब्दुल हई साहिब रह्मतुल्लाहि अ़लैहि इस तरह फ़रमाया करते थे कि दीन हक़ीक़त में नुक़्ता-ए-निगाह की तब्दीली का नाम है, बस ज़रा सा नुक़्ता-ए-निगाह बदल लो तो दीन हो गया, और अगर नुक़्ता-ए-निगाह न बदलो तो वही दुनिया है। जैसे हर मज़हब यह कहता है कि जब बीमारी आये तो इलाज करो, इस्लाम की तालीम भी यही है, कि बीमार होने पर इलाज करो, लेकिन बस नुक़्ता-ए-निगाह की तब्दीली का फ़र्क़ है, वह यह कि इलाज ज़रूर करो लेकिन भरोसा उस इलाज पर मत करो, बल्कि भरोसा अल्लाह जल्ल जलालुहू की ज़ात पर करो।

"हुवश्शाफ़ी" नुस्ख़े पर लिखना

इसी वजह से उस ज़माने में मुसलमान तबीबों का यह तरीक़ा था कि जब वे किसी मरीज़ का नुस्ख़ा लिखते तो सब से पहले नुस्ख़े के ऊपर "हुवश्शाफ़ी" लिखा करते थे। यानी शिफ़ा देने वाला अल्लाह है। यह "हुवश्शाफ़ी" लिखना एक इस्लामी तरीक़ा-ए-कार था, उस ज़माने में इन्सान के हर हर काम और हर हर क़ौल व फ़ेल में इस्लामी ज़ेहनियत, इस्लामी अक़ीदा और इस्लामी तालीमात दिखाई देती थीं। एक तबीब है जो इलाज कर रहा है लेकिन नुस्ख़े से पहले उसने "हुवश्शाफ़ी" लिख दिया, यह लिख कर उसने इस बात का ऐलान कर दिया कि मैं इस बीमारी का नुस्ख़ा तो लिख रहा हूं लेकिन यह नुस्ख़ा उस वक़्त तक कारामद नहीं होगा जब तक वह शिफ़ा देने वाला शिफ़ा नहीं देगा। एक मोमिन डॉ. और तबीब पहले ही क़दम पर इसका एतिराफ़ कर लेता था, और जब "हुवश्शाफ़ी"

का एतिराफ करके नुस्खा लिखता तो उसका नुस्खा लिखना भी अल्लाह तआला की इबादत और बन्दगी का एक हिस्सा बन जाता था।

पश्चिमी तहज़ीब की लानत का असर

लेकिन जब से हमारे ऊपर पश्चिमी तहज़ीब की लानत मुसल्लत हुई है, उस वक़्त से उसने हमारे इस्लामी निशानियों का मलियामेट कर डाला, अब आजकल के डॉ. को नुस्ख़ा लिखते वक़्त न "बिस्मिल्लाह" लिखने की ज़रूरत है और न "हुवश्शाफ़ी" लिखने की ज़रूरत है, बस उसने तो मरीज़ का मुआयना किया और नुस्ख़ा लिखना शुरू कर दिया। उसको अल्लाह तआला की तरफ़ रुजू करने की कोई ज़रूरत नहीं होती, इसकी क्या वजह है? वजह इसकी यह है कि यह साइन्स हमारे पास ऐसे काफ़िरों के वास्ते से पहुंची है जिनके दिमाग़ में अल्लाह तआला के शाफ़ी होने का कोई तसव्वुर मौजूद नहीं, उनका सारा भरोसा और एतिमाद उन्हीं असबाब और उन्हीं तदबीरों पर है, इसलिये वे सिर्फ़ तदबीरें इख़्तियार करते हैं।

इस्लामी शनाख़्तों की हिफ़ाज़त

अल्लाह तआला ने साइन्स को हासिल करने पर कोई पाबन्दी नहीं लगाई, साइन्स किसी कौम की मीरास नहीं हुआ करती, इल्म किसी कौम और मज़हब की मीरास नहीं होती। मुसलमान भी साइन्स ज़रूर हासिल करे, लेकिन अपनी इस्लामी चीज़ों को तो महफूज़ रखे और अपने दीन व ईमान की तो हिफ़ाज़त करे, अपने अक़ीदे की कोई झलक तो उसके अन्दर दाख़िल करे। यह तो नहीं है कि जो शख़्स डॉ. बन गया उसके लिये "हुवश्शाफ़ी" लिखना हराम हो गया, अब उसके लिये अल्लाह तआला के "शाफ़ी" होने के अक़ीदे का ऐलान करना ना जायज़ हो गया, और वह डॉ. यह सोचने लगे कि अगर मैंने यह नुस्ख़े के ऊपर "हुवश्शाफ़ी" लिख दिया तो लोग यह समझेंगे कि यह "पुराने ख़्याल" का आदमी है। बहुत पसमान्दा है,

और यह लिखना तो डॉ. के उसूल के ख़िलाफ़ है। अरे भाई अगर तुम डॉ. हो तो एक मुसलमान डॉ. हो, अल्लाह जल्ल जलालुहू पर ईमान रखने वाले हो, इसलिये तुम इस बात का पहले से ऐलान कर दो कि जो कुछ तदबीर हम कर रहे हैं यह सारी तदबीर अल्लाह जल्ल जलालुहू की तासीर के बग़ैर बेकार है, इसका कोई फ़ायदा नहीं।

तदबीर के ख़िलाफ़ काम का नाम "इत्तिफ़ाक़"

बडे बडे डॉ. तबीब और इलाज करने वाले रोज़ाना अल्लाह जल्ल जलालुहू की तासीर और फ़ैसलों को अपनी आंखों से देखते हैं कि हम तदबीर कुछ कर रहे हैं मगर अचानक क्या से क्या हो गया, और इस बात का इक़रार करते हैं कि यह हमारी ज़ाहिरी साइन्स सब बेकार हो गयी, लेकिन इस अचानक और उनकी ज़ाहिरी साईन्स के ख़िलाफ़ पेश आने वाले वाक़िए को "इत्तिफ़ाक़" का नाम दे देते हैं, कि इत्तिफ़ाक़न ऐसा हो गया।

कोई काम "इत्तिफ़ाक़ी" नहीं

मेरे वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह्मतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाया करते थे कि आजकल दुनिया जिसको "इत्तिफ़ाक़" का नाम देती है कि इत्तिफ़ाक़न यह काम इस तरह हो गया, यह सब ग़लत है, इसलिये कि इस कायनात में कोई काम इत्तिफ़ाक़न नहीं होता, बल्कि इस कायनात का हर काम अल्लाह तआ़ला की हिक्मत, मर्ज़ी और इन्तिज़ाम के मातहत होता है। जब किसी काम की इल्लत और सबब हमारी समझ में नहीं आता कि यह काम किन असबाब की वजह से हुआ तो बस हम कह देते हैं कि इत्तिफ़ाक़न यह काम इस तरह हो गया। अरे जो इस कायनात का मालिक और ख़ालिक़ है वही इस पूरे निज़ाम को चला रहा है, और हर काम पूरे मज़बूत निज़ाम के तहत चला रहा है, कोई ज़र्रा उसकी मर्ज़ी के बग़ैर हिल नहीं सकता, इसलिये सीधी सी बात यह है कि

उस दवा में बज़ाते ख़ुद कोई तासीर नहीं थी, जब अल्लाह तआला ने उस दवा में तासीर पैदा फ़रमाई थी तो फ़ायदा हो गया था और जब अल्लाह तआला ने तासीर पैदा नहीं फ़रमाई तो उस दवा से फ़ायदा नहीं हुआ, बस यह सीधी सी बात है "इत्तिफ़ाक़" का क्या मतलब?

असबाब के पैदा करने वाले पर नज़र हो

बस इन्सान यही नुक़्ता-ए-निगाह बदल ले कि तदबीरों और असबाब पर भरोसा न हो। बल्कि असबाब को पैदा करने वाले पर भरोसा हो कि वह सब करने वाला है। अल्लाह तआला ने न सिर्फ़ तदबीर इख़्तियार करने की इजाज़त दी बल्कि तदबीर इख़्तियार करने का हुक्म दिया कि तदबीर इख़्तियार करो और उन असबाब को इख़्तियार करो, इसलिये कि हमने ही ये असबाब तुम्हारे लिये पैदा किये हैं, लेकिन तुम्हारा इम्तिहान यह है कि आया तुम्हारी निगाह उन असबाब की हद तक महदूद और सीमित रह जाती है या उन असबाब के पैदा करने वाले पर भी जाती है। नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम के दिलों में यह अक़ीदा इस तरह जमा दिया था कि उनकी निगाह हमेशा असबाब के पैदा करने वाले पर रहती थी। सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम असबाब को सिर्फ़ इस वजह से इख़्तियार करते थे कि हमें असबाब इख़्तियार करने का अल्लाह तआला की तरफ़ से हुक्म है, और जब अल्लाह तआला की ज़ात पर मुकम्मल यक़ीन और भरोसा हासिल हो जाता है तो फिर अल्लाह तआला अपनी क़ुदरत के अजीब व ग़रीब करिश्मे बन्दे को दिखाते हैं।

हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ि. का ज़हर पीना

हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ियल्लाहु अन्हु ने एक बार मुल्क शाम के एक क़िले का घेराव किया हुआ था, क़िले के लोग घेराव से तंग आ गये थे, वे चाहते थे कि सुलह हो जाये, इसलिये उन लोगों ने क़िले के सरदार को हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ियल्लाहु अन्हु

के पास सुलह की बात चीत के लिये भेजा। चुनांचे उनका सरदार हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ियल्लाहु अन्हु की ख़िदमत में आया, हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ियल्लाहु अन्हु ने देखा कि उसके हाथ में छोटी सी शीशी है, हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ियल्लाहु अन्हु ने उस से पूछा कि यह शीशी में क्या है? और क्यों लेकर आये हो? उसने जवाब दिया कि इस शीशी में ज़हर भरा हुआ है, और यह सोच कर आया हूं कि अगर आप से सुलह की बात चीत कामयाब हो गयी तो ठीक, और अगर बात चीत नाकाम हो गयी और सुलह न हो सकी तो नाकामी का मुंह लेकर अपनी क़ौम के पास वापस नहीं जाऊंगा, बल्कि यह ज़हर पीकर ख़ुदकुशी कर लूंगा।

तमाम सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम का असल काम तो लोगों को दीन की दावत देना होता था, इसलिये हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ियल्लाहु अन्हु ने सोचा कि इसको इस वक़्त दीन की दावत देने का अच्छा मौक़ा है। चुनांचे उन्होंने उस सरदार से पूछा: क्या तुम्हें इस ज़हर पर इतना भरोसा है कि जैसे ही तुम यह ज़हर पियोगे तो फ़ौरन मौत वाक़े हो जायेगी? उस सरदार ने जवाब दिया कि हां मुझे इस पर भरोसा है, इसलिये कि यह ऐसा सख़्त ज़हर है कि इसके बारे में डॉक्टरों का कहना यह है कि आज तक कोई शख़्स इस ज़हर का ज़ायका नहीं बता सका, क्योंकि जैसे ही कोई शख़्स यह ज़हर खाता है तो फ़ौरन उसकी मौत वाक़े हो जाती है। उसको इतनी मोहलत नहीं मिलती कि वह इसका ज़ायका बता सके। इस वजह से मुझे यक़ीन है कि अगर मैं इसको पी लूंगा तो फ़ौरन मर जाऊंगा।

हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ियल्लाहु अन्हु ने उस सरदार से कहा कि यह ज़हर की शीशी जिस पर तुम्हें इतना यक़ीन है, यह ज़रा मुझे दो, उसने वह शीशी आपको दे दी, आपने वह शीशी अपने हाथ में ली और फिर फ़रमाया कि इस कायनात की किसी चीज़ में कोई तासीर नहीं, जब तक अल्लाह तआला उसके अन्दर असर न

पैदा फ़रमा दें, मैं अल्लाह का नाम लेकर और यह दुआ पढ़ कर:

بسم الله الذی لا یضر مع اسمه شیٔ فی الارض ولا فی السمآء وهو السمیع العلیم۔

"उस अल्लाह तआला के नाम के साथ जिसके नाम के साथ कोई चीज़ नुकसान नहीं पहुंचा सकती, न आसमान में और न ज़मीन में, और वही सुनने वाला और जानने वाला है"

इस ज़हर को पीता हूं। आप देखना कि मुझे मौत आती है या नहीं। उस सरदार ने कहा जनाब! यह आप अपने ऊपर ज़ुल्म कर रहे हैं, यह ज़हर तो इतना सख़्त है कि अगर इन्सान थोड़ा सा भी मुंह में डाल ले तो ख़त्म हो जाता है और आपने पूरी शीशी पीने का इरादा कर लिया! हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़रमाया कि: इन्शा अल्लाह मुझे कुछ नहीं होगा। चुनांचे दुआ पढ़ कर वह ज़हर की पूरी शीशी पी गये। अल्लाह तआला को अपनी कुदरत का करिश्मा दिखाना था। उस सरदार ने अपनी आंखों से देखा कि हज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ियल्लाहु अन्हु पूरी शीशी पी गये लेकिन उन पर मौत के कोई आसार ज़ाहिर नहीं हुए, वह सरदार यह करिश्मा देख कर मुसलमान हो गया।

हर काम में अल्लाह की मर्ज़ी

बरह हाल, हज़राते सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम के दिलों में यह अक़ीदा जमा हुआ था कि जो कुछ इस कायनात में हो रहा है वह अल्लाह जल्ल शानुहू की मर्ज़ी और इरादे से हो रहा है, उनकी मर्ज़ी के बग़ैर कोई ज़र्रा हर्कत नहीं कर सकता। यह अक़ीदा उनके दिलों में इस तरह बैठ चुका था कि उसके बाद ये तमाम असबाब बे हकीक़त नज़र आ रहे थे। और जब आदमी इस ईमान व यक़ीन के साथ काम करता है तो फिर अल्लाह तआला उसको अपनी कुदरत के करिश्मे भी दिखाते हैं। अल्लाह तआला की सुन्नत और आदत यह है कि तुम असबाब पर जितना भरोसा करोगे, उतना ही हम तुम्हें असबाब के साथ बांध देंगे, और जितना तुम उसकी ज़ात

पर भरोसा करोगे तो उतना ही अल्लाह तआला तुमको असबाब से बे नियाज़ करके तुम्हें अपनी कुदरत के करिश्मे दिखायेंगे। चुनांचे हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और हज़राते सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम के हालात में क़दम क़दम पर यह चीज़ नज़र आती है।

हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का एक वाक़िआ

एक बार हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम एक ग़ज़वा (लड़ाई, जंग) से वापस तशरीफ़ ला रहे थे। रास्ते में एक मन्ज़िल पर कियाम फ़रमाया और वहां एक पेड़ के नीचे आप अकेले सो गये, आपके क़रीब कोई मुहाफ़िज़ और कोई निगहबान नहीं था, किसी काफ़िर ने आपको तन्हा देखा तो तलवार सूंत कर आ गया और बिल्कुल आपके सर पर आकर खड़ा हो गया। जब आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की आंख खुली तो आपने देखा कि उस काफ़िर के हाथ में तलवार है और आप ख़ाली हाथ हैं, और वह काफ़िर यह कह रहा है कि ऐ मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) अब तुम्हें मेरे हाथ से कौन बचायेगा? उस शख़्स को यह ख़्याल था कि जब हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम यह देखेंगे कि उसके हाथ में तलवार है और ख़ली हाथ हूं और अचानक यह शख़्स मेरे सर पर आ खड़ा हुआ तो आप घबरा जायेंगे और परेशान हो जायेंगे, लेकिन आपने इत्मीनान से जवाब दिया कि मुझे अल्लाह तआला बचायेंगे। जब उस शख़्स ने देखा कि आपके ऊपर परेशानी और घबराहट के कोई आसार ज़ाहिर नहीं हुए तो इसकी वजह से अल्लाह तआला ने उस पर ऐसा रोब मुसल्लत फ़रमा दिया कि उसके हाथों में कपकपी आ गई और कपकपी की वजह से तलवार हाथ से छूट कर गिर पड़ी, अब सरकारे दो आलम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने वह तलवार हाथ में उठा ली और फ़रमाया कि अब बताओ कि अब तुम्हें कौन बचायेगा?

इस वाक़िए के ज़रिये उस शख़्स को यह दावत देनी थी कि हक़ीक़त में तुम इस तलवार पर भरोसा कर रहे थे और मैं इस तलवार के पैदा करने वाले पर भरोसा कर रहा था, और इस तलवार में तासीर देने वाले पर भरोसा कर रहा था। यही नमूना हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम के समाने पेश फ़रमाया और उसके नतीजे में एक एक सहाबी का यह हाल था कि वह असबाब भी इख़्तियार करते थे मगर साथ में भरोसा वह अल्लाह तआ़ला की ज़ात पर करते थे।

पहले असबाब फिर तवक्कुल

एक सहाबी हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में आये और अ़र्ज़ किया कि या रसूलल्ला! मैं जंगल में ऊंटनी लेकर जाता हूं और वहां नमाज़ का वक़्त आ जाता है तो जब नमाज़ का वक़्त आ जाये और उस वक़्त जंगल में नमाज़ की नियत का इरादा करूं तो उस वक़्त अपनी ऊंटनी का पांव किसी पेड़ के साथ बांध कर नमाज़ पढ़ूं या उस ऊंटनी को नमाज़ के वक़्त खुला छोड़ दूं और अल्लाह तआ़ला पर भरोसा करूं? जवाब में हुज़ूरे अक़्दस सल्ल. ने इर्शाद फ़रमाया।

"اِعْقِلْ سَاقَهَا وَتَوَكَّلْ"

यानी उस ऊंटनी की पिंडली रस्सी से बांध कर फिर अल्लाह तआ़ला पर भरोसा करो। यानी आज़ाद न छोड़ो, बल्कि पहले उसे रस्सी से बांध दो, लेकिन बांधने के बाद फिर भरोसा उस रस्सी पर मत करो बल्कि भरोसा अल्लाह तआ़ला पर करो, इसलिये कि वह रस्सी टूट भी सकती है और रस्सी धोखा भी दे सकती है। इसी हदीस के मज़मून को मौलाना रूमी रह्मतुल्लाहि अ़लैहि इस तरह बयान फ़रमाते हैं कि:

"ब तव्वक्कुल पाया-ए-उशतुर बबन्द"

यानी तवक्कुल पर ऊंटनी का पांव बांधो। इसलिये तवक्कुल और असबाब का इख़्तियार करना ये दोनो चीज़ें एक मोमिन के साथ

उसकी जिन्दगी में साथ साथ चलती हैं। पहले असबाब इख़्तियार करे और फिर अल्लाह तआ़ला से कह देः

"اللّٰھم ھذا الجھد وعلیک التکلان"

या अल्लाह जो तदबीर और जो कोशिश मेरे इख़्तियार में थी वह मैंने इख़्तियार कर ली, अब आगे भरोसा आपकी ज़ात पर है।

असबाब की यक़ीनी मौजूदगी की सूरत में तवक्कुल

हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली साहिब थानवी रह्मतुल्लाहि अ़लैहि की एक लतीफ़ बात याद आ गयी। वह फ़रमाते हैं कि लोग यों समझते हैं कि तवक्कुल सिर्फ़ उसी सूरत में होता है जब ज़ाहिरी असबाब के ज़रिये किसी काम के होने या न होने दोनों का एहतिमाल मौजूद हो। हो सकता है कि यह काम हो जाये और यह भी मुम्किन है कि यह काम न हो। उस वक़्त तो तवक्कुल करना चाहिये और अल्लाह तआ़ला से मांगना चाहिये। लेकिन जहां पर किसी काम के हो जाने की यक़ीनी सूरत मौजूद हो, वहां पर अल्लाह तआ़ला से मांगने और अल्लाह तआ़ला पर तवक्कुल करने की ज़्यादा ज़रूरत नहीं, वह न तवक्कुल का मौक़ा है और न ही दुआ़ का मौक़ा है।

जैसे हम दस्तरख़्वान पर खाना खाने के लिये बैठते हैं, खाना सामने चुना हुआ है, भूख लगी हुई है, यह बात बिल्कुल यक़ीनी है कि हम यह उठा कर खा लेंगे, अब ऐसे मौक़े पर कोई शख़्स भी न तवक्कुल करता है और न ही अल्लाह तआ़ला से दुआ़ करता है, कि या अल्लाह यह खाना मुझे खिला दीजिये, और न ही कोई शख़्स तवक्कुल और दुआ़ करने की ज़रूरत महसूस करता है।

तवक्कुल का असल मौक़ा यही है

लेकिन हज़रत थानवी रह्मतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं कि तवक्कुल का असल मौक़ा यही है और अल्लाह तआ़ला से मांगने का असल मौक़ा यही है, इसलिये कि अगर उस वक़्त अल्लाह तआ़ला से मांगेगा तो इसका मतलब यह होगा कि मुझे इस ज़ाहिरी सबब पर

भरोसा नहीं है जो मेरे सामने रखा है, बल्कि मुझे आपके रिज़्क़ देने पर, आपके पैदा करने पर, आपकी क़ुदरत और रहमत पर भरोसा है। इसलिये जब खाना सामने दस्तरख़्वान पर आ जाये तो उस वक़्त भी अल्लाह तआला से मांगो, कि या अल्लाह! यह खाना आफ़ियत के साथ खिला दीजिये। क्योंकि अगरचे ग़ालिब गुमान यह है कि खाना सामने रखा है, सिर्फ़ हाथ बढ़ा कर खाने की देर है, लेकिन यह मत भूलो कि यह खाना भी अल्लाह तआला की मर्ज़ी के बग़ैर नहीं होगा। कितने वाक़िआत ऐसे पेश आ चुके हैं कि खाना दस्तरख़्वान पर रखा था, सिर्फ़ हाथ बढ़ाने की देर थी, लेकिन कोई ऐसा आरिज़ पेश आ गया या कोई परेशानी खड़ी हो गयी या कोई ऐसा हादसा पेश आ गया कि वह आदमी वह खाना नहीं खा सका, वह खाना रखा का रखा रह गया। इसलिये अगर खाना सामने मौजूद हो तो उस वक़्त भी अल्लाह तआला से मांगो कि या अल्लाह! यह खाना मुझे खिला दीजिये।

ख़ुलासा यह है कि जिस जगह पर तुम्हें यक़ीनी तौर पर मालूम हो कि यह काम हो जायेगा, उस वक़्त भी अल्लाह तआला से मांगो कि या अल्लाह! मुझे तो बज़ाहिर नज़र आ रहा है कि यह काम हो जायेगा लेकिन मुझे पता नहीं कि हक़ीक़त में यह काम हो जायेगा या नहीं, क्योंकि हक़ीक़त में तो आपके क़ब्ज़ा—ए—क़ुदरत में है। ऐ अल्लाह! इस काम को ठीक अन्जाम तक पहुंचा दीजिये।

दोनों सूरतों में अल्लाह से मांगे

जो हदीस मैंने शुरू में बयान की थी, उसमें हुज़ूरे अक़्दस सल्ल. ने दो लफ़्ज़ इर्शाद फ़रमाये, वह यह कि तुम्हें या तो अल्लाह तआला से कोई ज़रूरत पेश आये या किसी आदमी से कोई ज़रूरत पेश आये, ये दो लफ़्ज़ इसलिये इर्शाद फ़रमाये कि बाज़ काम ऐसे होते हैं जिसमें किसी आदमी की मदद या उसके बीच में पड़ने का कोई रास्ता ही नहीं होता, बल्कि वह बराहे रास्त अल्लाह तआला की अता

होती है। जैसे किसी शख़्स को औलाद की ख़्वाहिश है, अब ज़ाहिरी असबाब में भी किसी इन्सान से औलाद नहीं मांगी जा सकती, बल्कि अल्लाह तआला ही से मांगी जा सकती है। बहर हाल वह ख़्वाहिश और ज़रूरत चाहे ऐसी हो जो बराहे रास्त अल्लाह तआला देने वाले हैं या ऐसी ज़रूरत हो जो आदमी के वास्ते अल्लाह तआला अता फ़रमाते हैं, जैसे नौकरी और रोज़ी वग़ैरह, दोनों सूरतों में हक़ीक़त में तुम्हारा मांगना अल्लाह तआला से होना चाहिये।

इत्मीनान से वुज़ू करें

बहर हाल, अब अगर तुम्हारे पास वक़्त में गुन्जाइश है और वह काम बहुत जल्दी का काम नहीं है, तो उस काम के लिये पहले हाजत की नमाज़ पढ़ो। और "हाजत की नमाज़" पढ़ने का तरीक़ा इस हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने यह इर्शाद फ़रमाया कि सब से पहले वुज़ू करो और अच्छी तरह वुज़ू करो। यानी वह वुज़ू सिर्फ़ टालने के अन्दाज़ में न करो, बल्कि यह समझ कर करो कि यह वुज़ू हक़ीक़त में एक अज़ीमुश्शान इबादत की तम्हीद है, इस वुज़ू के कुछ आदाब और कुछ सुन्नतें हैं जो नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने तल्क़ीन फ़रमाई हैं। उन सब का एहतिमाम करके वुज़ू करो। हम लोग दिन रात बेख़्याली में जल्दी जल्दी वुज़ू करके फ़ारिग़ हो जाते हैं, बेशक इस तरह वुज़ू करने से वुज़ू हो तो जाता है लेकिन उस वुज़ू के अनवार व बरकतें हासिल नहीं होतीं।

वुज़ू से गुनाह धुल जाते हैं

एक हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम इर्शाद फ़रमाते हैं कि जिस वक़्त बन्दा वुज़ू करता है और वुज़ू के दौरान अपना चेहरा धोता है तो चेहरे से जितने गुनाह किये हैं वे सब चेहरे के पानी के साथ धुल जाते हैं, और जब दायां हाथ धोता है तो दायें हाथ के जितने गुनाह होते हैं वे सब धुल जाते हैं, और जब बायां

हाथ धोता है तो बायें हाथ के तमाम गुनाह धुल जाते हैं। इस तरह जो बदन का हिस्सा और अंग वह धोता है उस अंग के छोटे गुनाह माफ़ होते चले जाते हैं।

मेरे हज़रत डॉ. अ़ब्दुल हई साहिब रह्मतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाया करते थे कि जब वुज़ू किया करो तो ज़रा यह ख़्याल किया करो कि मैं अपना चेहरा धो रहा हूं तो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़ुशख़बरी के मुताबिक़ मेरे चेहरे के गुनाह धुल रहे हैं, अब हाथ धो रहा हूं तो हाथ के गुनाह धुल रहे हैं, इसी तसव्वुर के साथ मसह करो और इसी तसव्वुर के साथ पांव धोओ, वह वुज़ू जो इस तसव्वुर के साथ किया और वह वुज़ू जो इस तसव्वुर के बग़ैर किया जाये, दोनों के दरमियान ज़मीन व आसमान का फ़र्क़ नज़र आयेगा, और उस वुज़ू का लुत्फ़ महसूस होगा।

वुज़ू के दौरान की दुआएं

बहर हाल ज़रा ध्यान के साथ वुज़ू करो और वुज़ू के जो आदाब और सुन्नतें हैं उनको ठीक ठीक पूरा करो। जैसे क़िबले की तरफ़ मुंह करके बैठो, और हर हर अंग को तीन तीन बार इत्मीनान से धोओ, और वुज़ू की जो मसनून दुआएं हैं वे वुज़ू के दौरान पढ़ो, जैसे यह दुआ पढ़ोः

"اللّٰهم اغفرلی ذنبی ووسع لی فی داری وبارك لی فی مارزقتنی"۔ (ترمذی شریف)

(अल्लाहुम्मग़्फ़िर ली ज़म्बी, व वस्सिअ् ली फ़ी दारी, व बारिक ली फ़ी मा रज़क़्तनी)

और कलिमा–ए–शहादत पढ़ेः

"اشهد ان لااله الا اللّٰه واشهد ان محمدًا عبده ورسوله"

(अश्हदु अल्ला इला–ह इल्लल्लाहु व अश्हदु अन्–न मुहम्मदन अ़ब्दुहू व रसूलुहू)

और वुज़ू के बाद यह दुआ पढ़ेः

"اللّٰهم اجعلنی من التوابین واجعلنی من المتطهرین" (ترمذی شریف)

(अल्लाहुम्मज्-अ़ल्नी मिनत्तव्वाबी-न वज्अ़ल्नी मिनल-मु-त-तह्हिरीन)

बस अच्छी तरह वुज़ू करने का यही मतलब है।

"हाजत की नमाज़" के लिये ख़ास तरीक़ा मुक़र्रर नहीं

फिर दो रक्अ़त "सलातुल हाजा" यानी हाजत की नमाज़ की नियत से पढ़ो, और उस सलातुल हाजा के तरीक़े में कोई फ़र्क़ नहीं है, जिस तरह आ़म नमाज़ पढ़ी जाती है इसी तरह से ये दो रक्अ़तें पढ़ी जायेंगी। बहुत से लोग यह समझते हैं कि "सलातुल हाजा" पढ़ने का कोई ख़ास तरीक़े है। लोगों ने अपनी तरफ़ से उसके ख़ास ख़ास तरीक़े घड़ रखे हैं, बाज़ लोगों ने उसके लिये ख़ास सूरतें भी मुताय्यन कर रखी हैं कि पहली रक्अ़त में फ़लां सूरत पढ़े और दूसरी रक्अ़त में फ़लां सूरत पढ़े, वग़ैरह वग़ैरह। लेकिन हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने "सलातुल हाजा" का जो तरीक़ा बयान फ़रमाया है उसमें नमाज़ पढ़ने का कोई अलग तरीक़ा बयान नहीं फ़रमाया, और न किसी सूरत को मुताय्यन फ़रमाया है।

लेकिन बाज़ बुज़ुर्गों के तजुर्बात हैं कि अगर "सलातुल हाजा" में फ़लां सूरतें पढ़ ली जायें तो कभी कभी इस से ज़्यादा फ़ायदा होता है, तो उसको सुन्नत समझ कर इन्सान इख़्तियार न करे, इसलिये कि अगर सुन्नत समझ कर इख़्तियार करेगा तो वह बिद्अ़त हो जायेगा। चुनांचे मेरे हज़रत डॉ. अ़ब्दुल हई साहिब रह्मतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाया करते थे कि जब 'सलातुल हाजा' पढ़नी हो तो पहली रक्अ़त में सूरः अलम नश्रह और दूसरी रक्अ़त में सूरः "इज़ा जा-अ नुसरुल्लाहि" पढ़ लिया करो, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि ये सूरतें नमाज़े हाजत में पढ़ना सुन्नत हैं, बल्कि बुज़ुर्गों के तजुर्बे से यह पता चला है कि उन सूरतों को पढ़ने से ज़्यादा फ़ायदा होता है। इसलिये अगर कोई शख़्स सुन्नत समझे बग़ैर उन सूरतों को पढ़े तो भी ठीक है, और अगर उनके अ़लावा कोई दूसरी सूरज पढ़ ले तो उसमें सुन्नत की ख़िलाफ़ वर्ज़ी लाज़िम नहीं आती। बहर हाल,

सलातुल हाजा पढ़ने का कोई ख़ास तरीक़ा नहीं है, बल्कि जिस तरह आम नमाज़ें पढ़ी जाती हैं इसी तरह सलातुल हाजा की दो रक्अतें पढ़ी जायेंगी, बस नमाज़ शुरू करते वक़्त दिल में यह नियत कर ले कि ये दो रक्अत सलातुल हाजा के तौर पर पढ़ता हूं।

नमाज़ के लिये नियत किस तरह की जाये?

यहां पर यह भी अर्ज़ कर दूं कि आजकल लोगों में यह मशहूर हो गया है कि हर नमाज़ की नियत के अल्फ़ाज़ अलग अलग होते हैं, और जब तक वे अल्फ़ाज़ न कहे जायें उस वक़्त तक नमाज़ नहीं होती, इसी वजह से बार बार लोग यह पूछते रहते हैं कि फ़लां नमाज़ की नियत किस तरह होती है? और फ़लां नमाज़ की नियत किस तरह होगी? और लोगों ने नियत के अल्फ़ाज़ को बाक़ायदा नमाज़ का हिस्सा बना रखा है। जैसे ये अल्फ़ाज़ कि: "नियत करता हूं दो रक्अत नमाज़ की, पीछे इस इमाम के, वास्ते अल्लाह तआला के, मुंह मेरा काबे शरीफ़ की तरफ़, वग़ैरह वग़ैरह। ख़ूब समझ लें कि नियत इन अल्फ़ाज़ का नाम नहीं है, बल्कि नियत तो दिल के इरादे का नाम है, जब आपने घर से निकलते वक़्त दिल में यह नियत कर ली कि मैं ज़ुहर की नमाज़ पढ़ने जा रहा हूं, पस नियत हो गयी। मैं जनाज़े की नमाज़ पढ़ने जा रहा हूं, बस नियत हो गयी। मैं ईद की नमाज़ पढ़ने जा रहा हूं, बस नियत हो गयी। मैं नमाज़े हाजत पढ़ने जा रहा हूं बस नियत हो गयी। अब ये अल्फ़ाज़ ज़बान से कहना न तो वाजिब हैं, न ज़रूरी हैं, न सुन्नत हैं, न मुस्तहब हैं, ज़्यादा से ज़्यादा जायज़ हैं, इस से ज़्यादा कुछ नहीं। इसलिये सलातुल हाजा पढ़ने का न कोई मख़्सूस तरीक़ा है और न ही नियत के लिये अल्फ़ाज़ मख़्सूस हैं, बल्कि आम नमाज़ों की तरह दो रक्अतें पढ़ लो।

दुआ से पहले अल्लाह की तारीफ़ व प्रशंसा

फिर जब दो रक्अतें पढ़ लीं तो अब दुआ करो, और यह दुआ किस तरह करो, उसके आदाब भी ख़ुद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने बता दिये। यह नहीं कि बस सलाम फेरते ही

दुआ कर दो, बल्कि सब से पहले तो अल्लाह तआला की तारीफ व प्रशंसा बयान करो, और यह कहो कि या अल्लाह! तमाम तारीफ़ें आपके लिये हैं, आपका शुक्र और एहसान है।

तारीफ़ व प्रशंसा की क्या ज़रूरत है?

अब सवाल यह है कि अल्लाह तआला की तारीफ़ क्यों की जाये? और इसकी क्या ज़रूरत है? इसकी एक वजह तो उलमा-ए-किराम ने यह बताई है कि जब आदमी किसी दुनियावी हाकिम के पास अपनी ग़र्ज़ लेकर जाता है तो पहले उसकी ताज़ीम और तकरीम के लिये कुछ अल्फ़ाज़ ज़बान से अदा करता है, ताकि वह ख़ुश होकर मेरी मुराद पूरी कर दे। इसलिये जब दुनिया के एक मामूली से हाकिम के सामने पेश होते वक़्त उसके लिये तारीफ़ी कलिमात इस्तेमाल करते हो तो जब तुम तमाम हाकिमों के हाकिम के दरबार में जा रहे हो तो उसके लिये भी तारीफ़ के अल्फ़ाज़ ज़बान से कहो कि या अल्लाह! तमाम तारीफ़ें आपके लिये हैं और आपका शुक्र व एहसान है, आप मेरी यह ज़रूरत पूरी फ़रमा दीजिये।

दुआ से पहले अल्लाह तआला की तारीफ़ व प्रशंसा करने की दूसरी वजह भी है, और मुझे ज़ौक़ी तौर पर इस दूसरी वजह की तरफ़ ज़्यादा रुझान होता है, वह वजह यह है कि जब आदमी अल्लाह तआला की तरफ़ अपनी हाजत पेश करने का इरादा करता है तो चूंकि इन्सान अपनी ज़रूरत का ग़ुलाम है और ग़र्ज़ का बन्दा है, और जब उसको किसी चीज़ की ज़रूरत और ग़र्ज़ पेश आती है तो वह ज़रूरत उसके दिल व दिमाग़ पर मुसल्लत हो जाती है, उस वक़्त वह अल्लाह तआला से दुआ करता है, कि या अल्लाह! मेरी फ़लां ज़रूरत पूरी फ़रमा दीजिये, उस दुआ के वक़्त इस बात का अन्देशा होता है कि कहीं इस दुआ में नाशुक्री का पहलू शामिल न हो जाये, कि या अल्लाह! आप मेरी ज़रूरत पूरी नहीं फ़रमा रहे हैं, मेरी हाजतें आप पूरी नहीं फ़रमा रहे हैं, हालांकि इन्सान पर अल्लाह तआला की जो नेमतें बारिश की तरह बरस रही हैं दुआ के वक़्त उन

नेमतों की तरफ इन्सान का ध्यान नहीं जाता और बस अपनी ज़रूरत और ग़र्ज़ को लेकर बैठ जाता है। बहर हाल हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने यह तल्क़ीन फ़रमाई कि जब तुम अल्लाह तआ़ला के सामने कोई हाजत और ज़रूरत लेकर जाओ तो उस हाजत और ज़रूरत के अभी तक पूरा न होने के बावजूद तुम्हारे ऊपर अल्लाह तआ़ला की कितनी बेशुमार नेमतें बारिश की तरह बरस रही हैं। पहले उनका तो शुक्र अदा कर लो कि या अल्लाह! ये नमतें जो आपने अपनी रहमत से मुझे दे रखी हैं, इस पर आपका शुक्र है और आपकी तारीफ़ है, आपकी हम्द है, लेकिन एक हाजत और ज़रूरत और है, या अल्लाह उसको भी अपने फ़ज़्ल से पूरा फ़रमा दीजिये, ताकि इन्सान की दुआ़ में नाशुक्री का शुबह भी पैदा न हो।

ग़म और तक्लीफ़ें भी नेमत हैं

हज़रत हाजी इम्दादुल्लाह मुहाजिर मक्की रहमतुल्लाहि अलैहि अपनी मज्लिस में यह मज़मून बयान फ़रमा रहे थे कि इन्सान को ज़िन्दगी में जो ग़म, सदमे और तक्लीफ़ें पेश आती हैं, अगर इन्सान ग़ौर करे तो ये तक्लीफ़ें हक़ीक़त में अल्लाह तआ़ला की नेमत हैं, बीमारी भी अल्लाह तआ़ला की नेमत है, तंगी व फ़ाक़ा भी अल्लाह तआ़ला की नेमत है, अगर इन्सान को हक़ीक़त पहचानने वाली निगाह मिल जाये तो वह यह देखे कि ये सब चीज़ें भी अल्लाह तआ़ला की नेमतें हैं।

अब सवाल यह है कि ये चीज़ें किस तरह से नेमत हैं? इसका जवाब यह है कि हदीस शरीफ़ में है कि जब आख़िरत में अल्लाह तआ़ला तक्लीफ़ों और मुसीबतों पर सब्र करने वालों को बे हिसाब अज्र अता फ़रमायेंगे, तो जिन लोगों पर दुनिया में ज़्यादा तक्लीफ़ें और मुसीबतें नहीं गुज़रीं होंगी वे तमन्ना करेंगे कि काश! दुनिया में हमारी खालें कैंचियों से काटी गयी होतीं और फिर हम उस पर सब्र करते और उस पर वह अज्र मिलता जो आज इन सब्र करने वालों

को मिल रहा है। बहर हाल हकीकत में ये तक्लीफ़ें भी नेमत हैं। मगर चूंकि हम कमज़ोर हैं इस वजह से हमें इनके नेमत होने का ध्यान और ख्याल नहीं होता।

हज़रत हाजी साहिब रह. की अजीब दुआ

हज़रत हाजी साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि यह मज़मून बयान फ़रमा रहे थे कि उसी दौरान मज्लिस में एक शख़्स आ गया जो माज़ूर था, और अनेक बीमारियों में मुब्तला था। वह आकर हज़रत हाजी साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि से कहने लगा कि हज़रत! मेरे लिए दुआ फ़रमा दें कि अल्लाह तआला मुझे इस तक्लीफ से नजात दे दें। हज़रत थानवी रहमतुल्लाहि अलैहि फ़रमाते हैं कि हम लोग जो मज्लिस में हाज़िर थे, हैरान हो गये कि अभी तो हज़रत हाजी साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि फ़रमा रहे थे कि सारी तक्लीफ़ें और मुसीबतें नेमत होती हैं, और अब यह शख़्स तक्लीफ़ के दूर होने की दुआ करा रहा है। अब अगर हज़रत हाजी साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि उस शख़्स के लिये तक्लीफ़ के ख़त्म होने की दुआ करेंगे तो इसका मतलब यह होगा कि नेमत के ख़त्म होने की दुआ करेंगे? हज़रत हाजी साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि ने उसी वक़्त हाथ उठा कर यह दुआ फ़रमाई कि या अल्लाह! हकीकत में ये सारी तक्लीफ़ें और मुसीबतें नेमत हैं, लेकिन हम कमज़ोर हैं, आप हमारी कमज़ोरी पर नज़र फ़रमाते हुए इस तक्लीफ़ की नेमत को सेहत की नेमत से बदल दीजिये।

तक्लीफ़ के वक़्त दूसरी नेमतों का ज़ेहन में ख़्याल

और फिर ऐन तक्लीफ़ के वक़्त इन्सान को जो बेशुमार नेमतें हासिल होती हैं, इन्सान उनको भूल जाता है। जैसे अगर किसी के पेट में दर्द हो रहा है, तो अब वह पेट के दर्द को लेकर बैठ जाता है, लेकिन वह यह नहीं देखता कि आंख जो इतनी बड़ी नेमत उसको मिली हुई है उसमें तक्लीफ़ नहीं, ज़बान में कोई तक्लीफ़ नहीं, बस

सिर्फ़ पेट में मामूली तक्लीफ़ हो रही है। अब यह दुआ ज़रूर करो कि या अल्लाह! पेट की तक्लीफ़ दूर कर दीजिये, लेकिन दुआ करने से पहले अल्लाह तआला की इस पर तारीफ़ व प्रशंसा करो कि या अल्लाह! जो और बेशुमार नेमतें आपने अता की हुई हैं, ऐ अल्लाह! हम उस पर आपका शुक्र अदा करते हैं, लेकिन इस वक़्त जो यह तक्लीफ़ आ गयी है इसके लिये दरख़्वास्त करते हैं कि आप इस तक्लीफ़ को दूर कर दीजिये।

हज़रत मियां साहिब रह. और नेमतों का शुक्र

मेरे वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह्मतुल्लाहि अलैहि के उस्ताद थे हज़रत मियां असग़र हुसैन साहिब रह्मतुल्लाहि अलैहि, यह मादरज़ाद वली थे और अजीब व ग़रीब बुज़ुर्ग थे। हज़रत वालिद साहिब उनका वाकिआ बयान करते हैं कि एक बार मुझे पता चला कि हज़रत मियां साहिब बीमार हैं और उनको बुख़ार है, मैं मिज़ाज पूछने के लिये उनकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ, मैंने देखा कि वह सख़्त बुख़ार में तप रहे हैं और बुख़ार की तक्लीफ़ और बेचैनी में हैं। मैंने जाकर सलाम किया और पूछा कि हज़रत! कैसे मिज़ाज हैं? तबीयत कैसी है? जवाब में फ़रमाया कि "अल्हम्दु लिल्लाह मेरी आंखें काम कर रही हैं, अल्हम्दु लिल्लाह मेरे कान सही काम कर रहे हैं, अल्हम्दु लिल्लाह मेरी ज़बान सही काम कर रही है। जितनी तक्लीफ़ें नहीं थीं उन सब का एक एक करके ज़िक्र किया कि उन सब में कोई बीमारी नहीं है, लेकिन बुख़ार है, दुआ करो कि अल्लाह तआला इसको भी दूर फ़रमा दे। यह है एक शुक्र गुज़ार बन्दे का अमल, जो ऐन तक्लीफ़ में भी उन राहतों और नेमतों का ध्यान और ख़्याल कर रहा है जो उस वक़्त हासिल हैं, जिसकी वजह से उस तक्लीफ़ शिद्दत में भी कमी आती है।

जो नेमतें हासिल हैं उन पर शुक्र

बहर हाल, हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम यह जो

तल्क़ीन फ़रमा रहे हैं कि दुआ करने से पहले अल्लाह तआला की तारीफ़ व प्रशंसा करो, मतलब यह है कि अल्लाह तआला के सामने उस वक़्त जो हाजत और ज़रूरत पेश करने जा रहे हो, उसके अलावा अल्लाह तआला की जो नमेतें उस वक़्त तुम्हें हासिल हैं, पहले उनका ध्यान करके और उनको ज़ेहन में लाकर के उन पर शुक्र अदा करो और उस पर अल्लाह तआला की तारीफ़ व प्रशंसा करो।

तारीफ़ व प्रशंसा के बाद दुरूद शरीफ़ क्यों?

अल्लाह तआला की तारीफ़ व प्रशंसा के बाद क्या करे? उसके लिए इर्शाद फ़रमाया कि:

و ليصل على النبى صلى الله عليه وسلم

तारीफ़ व प्रशंसा के बाद और अपनी हाजत पेश करने से पहले नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर दुरूद भेजो। अब सवाल यह है कि उस वक़्त दुरूद भेजने का क्या मौक़ा है? असल में बात यह है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम अपनी उम्मत पर बहुत ही ज़्यादा शफ़ीक़ और मेहरबान हैं, वह यह चाहते हैं कि जब मेरा उम्मती अल्लाह तआला के सामने दुआ मांगे तो उसकी वह दुआ रद्द न हो, पूरी कायनात में दुरूद शरीफ़ के अ़लावा किसी दुआ के बारे में यह गारन्टी नहीं है कि वह ज़रूर क़बूल होगी, लेकिन अगर नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर दुरूद भेजा जाये तो उसके बारे में यह गारन्टी यक़ीनी है कि वह ज़रूर क़बूल होगी, जब हम दुरूद भेजते हैं:

"اللّٰهم صل على محمد وعلى آل محمد النبى الامى"

(अल्लाहुम्–म सल्लि अ़ला मुहम्मदिंव्–व अ़ला आलि मुहम्मदि निन्नबिय्यिल उम्मिय्यि)

इसका क्या मतलब है? इसका मतलब यह है कि ऐ अल्लाह! मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर रहमतें नाज़िल

फ़रमाइये। यह ऐसी दुआ है कि इसके रद्द होने की कोई संभावना नहीं, इसके क़बूल होने का वायदा है। इसके क़बूल होने की गारन्टी है कि यह दुआ ज़रूर क़बूल होगी। इसलिये कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर तो पहले से रहमतें नाज़िल हो रही हैं और और ज़्यादा नाज़िल होती रहेंगी, वह हमारे दूरूद भेजने के मुहताज नहीं हैं।

दुरूद शरीफ़ भी क़बूल और दुआ भी क़बूल

लेकिन हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम यह चाहते हैं कि मेरे उम्मती अपनी मुराद और ज़रूरत मांगने से पहले मुझ पर दुरूद भेज दें तो अल्लाह तआ़ला उस दुरूद को ज़रूर क़बूल फ़रमायेंगे, तो उस हाजत और ज़रूरत की दुआ को भी ज़रूर क़बूल फ़रमाएंगे। इसलिये कि उनकी रहमत से यह बात बईद है कि एक दुआ को तो क़बूल फ़रमा लें और दूसरी दुआ को रद्द फ़रमा दें। इसलिये दुरूद शरीफ़ के बाद की जाने वाली दुआ के क़बूल होने की ज़्यादा उम्मीद है।

हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और हदिये का बदला

एक दूसरी वजह मेरे हज़रत डॉ. अ़ब्दुल हई साहिब रह्मतुल्लाहि अ़लैहि बयान फ़रमाया करते थे कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का उम्र भर का मामूल यह था कि जब कोई शख़्स आपकी ख़िदमत में कोई हदिया लेकर आता तो आप उस हदिये का कुछ न कुछ बदला ज़रूर दिया करते थे, और हदिये का बदला दिया करते थे, और यह दुरूद शरीफ़ भी एक हदिया है, इसलिये कि हदीस शरीफ़ में साफ़ अल्फ़ाज़ में है कि आपने इर्शाद फ़रमाया: अगर कोई शख़्स दूर से दुरूद शरीफ़ भेजता है तो वह दुरूद मुझ तक पहुंचाया जाता है, और जो शख़्स क़ब्र पर आकर मुझको सलाम करे और दुरूद भेजे तो मैं ख़ुद उसको सुनता हूं। यह दुरूद शरीफ़ एक उम्मती का हदिया और तोहफ़ा है, जो आप तक पहुंचाया जाता है,

इसलिये जब दुनिया में और ज़िन्दगी में आपकी सुन्नत यह थी कि आपके पास कोई शख़्स हदिया लेकर आता तो आप उसका बदला दिया करते थे और उस हदिये के बदले हदिया दिया करते थे, तो उम्मीद है कि आलमे बर्ज़ख़ में जब एक उम्मती की तरफ़ से हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में दुरूद शरीफ़ का हदिया पहुंचेगा तो आप उस हदिये का भी बदला अ़ता फ़रमायेंगे, वह बदला यह होगा कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उस उम्मती के हक़ में दुआ करेंगे कि या अल्लाह! इस उम्मती ने मेरे लिये यह तोहफ़ा भेजा है और मेरे लिये दुआ की है, ऐ अल्लाह! मैं उसके लिये दुआ करता हूं कि उसकी मुराद पूरी फ़रमा दें। इसलिये जो उम्मती दुरूद भेजने के बाद दुआ करेगा तो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उसके लिये वहां दुआ फ़रमायेंगे। इसलिये जब दुआ करने बैठो तो पहले अल्लाह तआ़ला की तारीफ़ व प्रशंसा करो और फिर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर दुरूद भेजो।

दुआए हाजत के अल्फ़ाज़

उसके बाद ये अल्फ़ाज़ कहो:

"لا اله الا الله الحليم الكريم"

(ला इला–ह इल्लल्लाहुल हलीमुल करीम)

अल्लाह तआ़ला के पाक नामों के अन्दर क्या क्या अनवारात और क्या क्या ख़ासयतें छुपी हुई हैं, यह तो अल्लाह तआ़ला ही बेहतर जानते हैं, या अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम बेहतर जानते हैं, हम लोग उसकी तह तक कहां पहुंच सकते हैं।

इन असमा–ए–हुसना (अल्लाह के पाक नामों) में अल्लाह तआ़ला ने बज़ाते ख़ुद ख़ासियतें रखी हैं, इसलिये जब ख़ुद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम यह तल्क़ीन फ़रमायें कि इन असमा–ए–हुस्ना (अल्लाह के पाक नामों) का ज़िक्र करो तो उसके पीछे ज़रूर कोई राज़ होता है, इसलिये ख़ास तौर पर वही कलिमात कहने

चाहियें ताकि वह मक़सद हासिल हो, चुनांचे फ़रमायाः

"لاالہ الااللہ الحلیم الکریم"

(ला इला-ह इल्लल्लाहुल हलीमुल करीम)

अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, वह अल्लाह जो हलीम हैं और करीम हैं। "हिल्म" भी अल्लाह तआ़ला की सिफ़तों में से है और "करम" भी अल्लाह तआ़ला की सिफ़तों में से है। इन दोनों सिफ़तों को ख़ास तौर पर बज़ाहिर इसलिये ज़िक्र फ़रमाया कि बन्दा पहले मर्हले पर ही यह एतिराफ़ करे कि या अल्लाह! मैं इस क़ाबिल तो नहीं हूं कि आप मेरी दुआ़ क़बूल करें, अपनी ज़ात के लिहाज़ से मैं इस क़ाबिल नहीं हूं कि आपकी बारगाह में कोई दरख़्वास्त पेश कर सकूं, इस वजह से कि मेरे गुनाह बेशुमार हैं, मेरी ख़ताएं बेशुमार हैं, मेरी बद आमालियां इतनी हैं कि आप के सामने दरख़्वास्त पेश करने की लियाक़त मुझ में नहीं है, लेकिन चूंकि आप हलीम हैं, बुर्दबारी आपकी सिफ़त है, और इसकी वजह से कोई बन्दा चाहे वह कितना ही ख़ताकार हो, उस ख़ताकार की ख़ताओं की वजह से जज़्बात में आकर आप कोई फ़ैसला नहीं फ़रमाते बल्कि अपनी सिफ़त "हिल्म" के तहत फ़ैसला फ़रमाते हैं, इसलिये मैं सिफ़ते हिल्म का वास्ता देकर दुआ़ करता हूं और आपकी सिफ़ते "हिल्म" का तक़ाज़ा यह है कि आप मेरे गुनाहों को माफ़ फ़रमाएं और सिफ़ते "करम" का मामला फ़रमायें, यानी सिर्फ़ यह न हो कि गुनाहों से दरगुज़र फ़रमायें बल्कि ऊपर से यह भी फ़रमाएं कि नवाज़िशें अ़ता फ़रमायें, अपना करम मेरे ऊपर फ़रमायें, सिफ़ते करम और सिफ़ते हिल्म का वास्ता देकर दुआ़ करो।

उसके बाद फ़रमायाः

"سبحان اللہ رب العرش العظیم"

(सुब्हानल्लाहि रब्बिल अ़र्शिल अ़ज़ीम)

अल्लाह तआ़ला पाक है, जो अ़र्शे अ़ज़ीम का मालिक हैः

"والحمدللہ رب العالمین"

(वल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल आलमीन)

और ताम तारीफ़ें उस अल्लाह के लिये हैं जो तमाम जहानों का पालने वाला है। पहले ये तारीफ़ी कलिमात कहे और उसके बाद इन अल्फ़ाज़ के साथ दुआ करें:

"اللّٰهم انی اسئلك موجبات رحمتك"

(अल्लाहुम्–म इन्नी अस्अलु–क मूजिबाति रह्मति–क)

ऐ अल्लाह मैं आप से उन चीज़ों का सवाल करता हूं जो आपकी रहमत का सबब और उसको वाजिब करने वाली हों:

"وعزائم مغفرتك"

(व अ़ज़ाइ–म मग़्फ़ि–रति–क)

और आपकी पुख़्ता मग़फ़िरत का सवाल करता हूं:

"والغنيمة من كل بر"

(वल ग़नीम–त मिन कुल्लि बिर्रिन)

और इस बात का सवाल करता हूं कि मुझे हर नेकी से हिस्सा अ़ता फ़रमाइये:

"والسلامة من كل اثم"

(वस्सलाम–त मिन् कुल्लि इस्मिन)

और मुझे हर गुनाह से महफ़ूज़ रखिये:

"لا تدع لنا ذنبًا الا غفرته"

(ला तदअ् लना ज़म्बन इल्ला ग़फ़र–तहू)

हमारा कोई गुनाह ऐसा न छोड़िये जिसको आपने माफ़ न फ़रमाया हो। यानी हर गुनाह को माफ़ फ़रमा दीजिये:

"ولا همًّا الا فرجته"

(वला हम्मन इल्ला फ़र्रज–तहू)

और कोई तक्लीफ़ ऐसी न छोड़िये जिसको आपने दूर न फ़रमा दिया हो:

"ولا حاجة لك رضى الا قضيتها يا ارحم الراحمين"

(वला हाज–तन हि–य ल–क रिज़न इल्ला क़जैतहा या अर्हमर्राहिमीन)

और कोई हाजत जिसमें आपकी रज़ामन्दी हो ऐसी न छोड़िये कि उसको आपने पूरा न फ़रमाया हो।

ये दुआ के अल्फ़ाज़ और उसका तर्जुमा है, और मसनून दुआओं की किताबों में भी यह दुआ मौजूद है। यह दुआ हर मुसलमान को याद कर लेनी चाहिये, उसके बाद फिर अपने अल्फ़ाज़ में जो हाजत मांगना चाहता है वह अल्लाह तआला से मांगे, उम्मीद है कि अल्लाह तआला इस उस दुआ को ज़रूर कबूल फ़रमायेंगे।

हर ज़रूरत के लिये 'सलातुल हाजा' पढ़ें

एक हदीस शरीफ़ में हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की यह सुन्नत बयान की गयी है कि:

"كان النبى صلى الله عليه وسلم اذا حزنه امر صلّى" (ابوداؤد شريف)

यानी जब कभी हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को कोई तश्वीश का मामला पेश आता तो आप सब से पहले नमाज़ की तरफ़ दौड़ते और यही सलातुल हाजा पढ़ते और दुआ करते कि या अल्लाह! यह मुश्किल पेश आ गयी है, आप इसको दूर फ़रमा दीजिये, इसलिये एक मुसलमान का काम यह है कि वह अपने मकासिद के लिये सलातुल हाजा की कसरत करे।

अगर वक़्त कम हो तो सिर्फ़ दुआ करे

यह तफ़सील तो सिर्फ़ उस सूरत में है जब इन्सान के पास फ़ैसला करने के लिये वक़्त है और दो रक्अत पढ़ने की गुन्जाइश है। लेकिन अगर जल्दी का मौका है और इतनी मोहलत नहीं है कि वह दो रक्अत पढ़ कर दुआ करे, तो उस सूरत में दो रक्अत पढ़े बग़ैर ही दुआ के ये अल्फ़ाज़ पढ़ कर अल्लाह तआला से मांगे, लेकिन अपनी हर हाजत अल्लाह तआला की बारगाह में ज़रूर पेश कर दे, चाहे वह छोटी हाजत हो या बड़ी हाजत हो, यहां तक कि हुज़ूरे

अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमाया कि अगर तुम्हारे जूते का तस्मा भी टूट जाये तो अल्लाह तआला से मांगो। इसलिये जब छोटी चीज़ भी अल्लाह तआला से मांगने का हुक्म दिया जा रहा है तो बड़ी चीज़ और ज़्यादा अल्लाह तआला से मांगनी चाहिये। और हक़ीक़त में यह छोटी और बड़ी हमारी निस्बत से है, जूते के तस्मे का दुरुस्त हो जाना यह छोटी बात है, और हुकूमत का मिल जाना बड़ी बात है, लेकिन अल्लाह तआला के यहां छोटे बड़े का कोई फ़र्क़ नहीं, उनके नज़्दीक सब काम छोटे हैं, हमारी बड़ी से बड़ी हाजत, बड़े से बड़ा मक़सद अल्लाह तआला के नज़्दीक छोटा है।

"اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ قَدِيْرٌ"

अल्लाह तआला हर चीज़ पर क़ादिर है, उनकी क़ुदरत हर चीज़ पर यकसां है। उसके लिए कोई काम मुश्किल नहीं, उसके लिये कोई काम बड़ा नहीं, इसलिये बड़ी हाजत हो या छोटी हाजत हो, बस अल्लाह ही से मांगो।

ये परेशानियां और हमारा हाल

आजकल हमारे शहर में हर शख़्स परेशान है, हमारे शहर की क्या हालत बनी हुई है, अल्लाह अपनी पनाह में रखे, कोई घराना ऐसा नहीं है जो इन हालात की वजह से बेचैनी और बेताबी का शिकार न हो, कोई बराहे रास्त मुब्तला है और कोई बिलवास्ता मुब्तला है, कोई अन्देशों का शिकार है, किसी की जान माल इज़्ज़त आबरू महफ़ूज़ नहीं, सब का बुरा हाल है। लेकिन दूसरी तरफ़ हमारा हाल यह है कि सुबह से लेकर शाम तक इस सूरते हाल पर तब्सिरे तो बहुत करते हैं, जहां चार आदमी बैठे और तब्सिरे शुरू हो गये, फ़लां जगह यह हो गया, फ़लां ने यह ग़लती की, फ़लां ने यह ग़लती की, हुकूमत ने यह ग़लती की वग़ैरह, लेकिन हम में से कितने लोग ऐसे हैं जिनको तड़प कर अल्लाह तआला की तरफ़ रुजू करने और

अल्लाह से दुआ मांगने की तौफ़ीक़ हुई, कि या अल्लाह यह मुसीबत हम पर मुसल्लत है, हमारे गुनाहों का वबाल हम पर मुसल्लत है, हमारे आमाल की नहूसत हम पर मुसल्लत है, या अल्लाह! अपनी रहमत से इसको दूर फ़रमा दें। बताइये कि हम में से कितनों को इसकी तौफ़ीक़ हुई?

राय ज़ाहिर करने से कोई फ़ायदा नहीं

१९७१ में जब पूरबी पाकिस्तान के अलग होने का वाक़िआ पेश आया और मुसलमानों की तारीख़ में ज़िल्लत का ऐसा वाक़िआ पेश नहीं आया था जो उस मौक़े पर पेश आया, कि नव्वे हज़ार मुसलमानों की फ़ौज हिन्दुओं के आगे हथियार डाल कर ज़लील हो गयी। तमाम मुसलमानों पर उसके सदमे का असर था, सब लोग परेशान थे। उसी दौरान मेरी हज़रत डॉ. साहिब रहमतुल्लाहि अ़लैहि के यहां हाज़री हुई, मेरे साथ मेरे बड़े भाई हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद रफ़ी उस्मानी साहिब मद्दज़िल्लुहुम भी थे, जब वहां पहुंचे तो कुछ ख़ास ख़ास लोग वहां मौजूद थे। अब वहां पर तब्सिरे शुरू हो गये कि उसके असबाब क्या थे? कौन उसका सबब बना? किसकी ग़लती है? किसी ने कहा कि फ़लां पार्टी की ग़लती है, किसी ने कहा कि फ़लां पार्टी की ग़लती है, किसी ने कहा कि फ़ौज की ग़लती है, हज़रते वाला रहमतुल्लाहि अ़लैहि थोड़ी देर तक सब की बातें सुनते रहे, उसके बाद हज़रते वाला फ़रमाने लगे कि अच्छा भाई! आप लोगों ने फ़ैसला कर लिया कि कौन मुज्रिम है? और कौन बेगुनाह है? और इस फ़ैसले के नतीजे क्या निकले? जो मुज्रिम है क्या उसको सज़ा दोगे? और जो बेगुनाह है उसके बरी होने का इज़हार कर दोगे? यह बताओ कि इतनी देर तक जो तुम तब्सिरे करते रहे इसका क्या नतीजा निकला? क्या दुनिया या आख़िरत का कोई फ़ायदा तुम्हें हासिल हुआ?

तब्सिरा के बजाए दुआ करें

अगर इतनी देर तुम अल्लाह तआला के सामने दुआ के लिये हाथ उठा देते और अल्लाह तआला से कहते कि या अल्लाह! हमारे आमाल की नहूसत के नतीजे में हम पर यह मुसीबत आ गयी है। ऐ अल्लाह! हमें माफ़ फ़रमा और हम से इस मुसीबत को दूर फ़रमा और हमारे आमाल की नहूसत को दूर फ़रमा, और इस ज़िल्लत को इज़्ज़त से बदल दीजिये। अगर यह दुआ कर ली होती तो क्या बईद है कि अल्लाह तआला इस दुआ को क़बूल फ़रमा लेते, और अगर फ़र्ज़ कर लो वह दुआ क़बूल न होती तब भी इस दुआ के करने का सवाब तो हासिल हो जाता, और आख़िरत की नेमत तुम्हें हासिल हो जाती। अब यह तुमने बैठ कर जो फुज़ूल तब्सिरे किये, इस से न कोई दुनिया का फ़ायदा हुआ और न ही आख़िरत का कोई फ़ायदा हुआ।

उस वक़्त हमारी आंखें खुलीं कि वाक़ई हम दिन रात इस मर्ज़ में मुब्तला हैं, कि दिन रात बस इन बातों पर तब्सिरे हो रहे हैं, लेकिन अल्लाह तआला के दरबार में हाज़िर होकर मांगने का सिलसिला ख़त्म हो गया। हम में कितने लोग ऐसे हैं जिन्होंने उन हालात से बेताब होकर अल्लाह तआला से गिड़गिड़ा कर दुआएं कीं और सलातुल हाजा पढ़ कर दुआ की हो, या अल्लाह! मैं सलातुल हाजा पढ़ रहा हूं, ऐ अल्लाह! अपनी रहमत से यह अज़ाब हम से दूर फ़रमा दीजिये। यह काम शायद ही किसी अल्लाह के बन्दे ने किया होगा, लेकिन सुबह से लेकर शाम तक तब्सिरे हो रहे हैं। वक़्त उन तब्सिरों में ख़र्च हो रहा है, और फिर उन तब्सिरों में मालूम नहीं कितनी ग़ीबत हो रही है, कितने बोहतान बांधे जा रहे हैं और उनके ज़रिये उल्टा अपने सर गुनाह ले रहे हैं।

अल्लाह की तरफ़ रुजू करें

तमाम हज़रात से दरख़्वास्त है कि वे इन हालात में दुआ की

तरफ़ तवज्जोह करें। अगर किसी के बस में कोई तदबीर है तो वह तदबीर इख़्तियार करे, और अगर तदबीर इख़्तियार में नहीं है तो अल्लाह तआला से दुआ करना तो हर एक के इख़्तियार में है, हमारे अन्दर से अल्लाह तआला की तरफ़ रुजू करने का सिलसिला अब ख़त्म होता जा रहा है। हमें याद है कि जब पाकिस्तान बन रहा था, उस वक़्त मुल्क में फ़साद हो रहे थे, उस वक़्त देवबन्द और दूसरे शहरों में घर घर आयते करीमा का ख़त्म हो रहा था, किसी की तरफ़ से अपील नहीं थी, बल्कि मुसलमान अपनी तहरीक से और अपने शौक़ से और ज़रूरत महसूस करके घर घर और मौहल्ले मौहल्ले आयते करीमा का ख़त्म कर रहे थे, औरतें अपने घरों में बैठी हुई आयते करीमा का ख़त्म कर रही थीं, और दुआयें हो रही थीं कि अल्लाह तआला मुसलमानों को इस मुसीबत से निकाल दे, उसका नतीजा यह हुआ कि अल्लाह तआला ने मुसलमानों को उस मुसीबत से नजात दे दी।

फिर भी आंखें नहीं खुलतीं

आज हमारे शहर में सब कुछ हो रहा है, आंखों के सामने लाशें तड़प रही हैं, लेकिन अल्लाह तआला की तरफ़ रुजू करने की तौफ़ीक़ नहीं होती, क्या आपने कहीं सुना कि मौहल्लों में या घरों में आयते करीमा का ख़त्म किया जा रहा है, और दुआ करने का एहतिमाम हो रहा है। बल्कि यह हो रहा है कि आंखों के सामने लाशें तड़प रही हैं, मौत आंखों के सामने नाच रही है, और लोग घरों में बैठ कर वी. सी. आर. देख रहे हैं। अब बताइये इन हालात में अल्लाह तआला का क़हर और अज़ाब नाज़िल न हो तो क्या हो। तुम्हारे सामने अच्छा ख़ासा आदमी ज़रा सी देर में दुनिया से चल बसा, लेकिन फिर भी तुम्हारी आंखें नहीं खुलतीं, फिर भी तुम गुनाहों को नहीं छोड़ते, फिर भी अल्लाह की ना फ़रमानी पर कमर बांधे हुए हो।

अपनी जानों पर रहम करते हुए यह काम कर लो

ख़ुदा के लिये अपनी जानों पर रहम करते हुए अल्लाह तआ़ला की तरफ़ रुजू करने का सिलसिला शुरू कर दो। और कौन मुसलमान ऐसा है जो यह नहीं कर सकता कि वह इस मक़सद के लिये दो रक्अ़त सलातुल हाजा की नियत से पढ़ लिया करे। दो रक्अ़तें पढ़ने में कितनी देर लगती है, औसतन दो रक्अ़त पढ़ने में दो मिनट लगते हैं, और दो रक्अ़त के बाद दुआ़ करने में तीन मिनट और लग जायेंगे। अपनी इस क़ौम और इस मिल्लत के लिये पांच मिनट अल्लाह तआ़ला के सामने हाज़िर होकर दुआ़ मांगने की भी तौफ़ीक़ नहीं होती तो फिर किस मुंह से कहते हो कि हमें क़ौम में होने वाले इन फ़सादात की वजह से सदमा और रंज और तक्लीफ़ हो रही है। इसलिये जब तक इन फ़सादात का सिलसिला जारी है उस वक़्त तक रोज़ाना दो रक्अ़त सलातुल हाजा (हाजत की नमाज़) पढ़ कर अल्लाह तआ़ला से दुआ़ करो और ख़ुदा के लिये अपनी जानों पर रहम करते हुए अपने घरों से ना फ़रमानी के ज़राए और आले को निकाल दो, और ना फ़रमानी और गुनाह के सिलसिले को बन्द कर दो, और अल्लाह तआ़ला के सामने रो रोकर और गिड़गिड़ा कर दुआ़ करो। आयते करीमाः

"لاالٰه الا انت سبحانك انى كنت من الظالمين"

(ला इला–ह इल्ला अन–त सुब्हान–क इन्नी कुन्तु मिनज़्ज़ा–लिमीन)

का ख़त्म करो और "या सलामु" का विर्द करो, और अल्लाह तआ़ला की तरफ़ रुजू करो, फ़ुज़ूल तब्सिरों में वक़्त ज़ाया करने के बजाए इस काम में लगो, अल्लाह तआ़ला हम सबको अपनी तरफ़ रुजू करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, आमीन।

وآخردعوانا ان الحمد لله رب العالمين

रमज़ान किस तरह गुज़ारें

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

فَاَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنَ الشَّيْطٰنِ الرَّجِيْمِ، بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ۔

شَهْرُ رَمَضَانَ الَّذِيْٓ اُنْزِلَ فِيْهِ الْقُرْاٰنُ هُدًى لِّلنَّاسِ وَبَيِّنٰتٍ مِّنَ الْهُدٰى وَالْفُرْقَانِ، فَمَنْ شَهِدَ مِنْكُمُ الشَّهْرَ فَلْيَصُمْهُ" (سورة البقرة:١٨٥)

اٰمنت باللّٰه صدق اللّٰه مولانا العظيم، وصدق رسوله النبى الكريم ونحن علىٰ ذالك من الشاهدين والشاكرين، والحمد للّٰه رب العالمين۔

रमज़ान, एक अज़ीम नेमत

बुज़ुर्गाने मुहतरम व प्यारे भाईयो! यह रमज़ान मुबारक का महीना अल्लाह जल्ल शानुहू की बड़ी अज़ीम नेमत है, हम और आप इस मुबारक महीने की हक़ीक़त और इसकी क़द्र कैसे जान सकते हैं, क्योंकि हम लोग दिन रात अपने दुनियावी कारोबार में उलझे हुए हैं और सुबह से शाम तक दुनिया ही की दौड़ धूप में लगे हुए हैं। और माद्दियत के भंवर में फंसे हुए हैं। हम क्या जानें कि रमज़ान क्या चीज़ है? अल्लाह जल्ल शानुहू जिनको अपने फ़ज़्ल से नवाज़ते हैं और इस मुबारक महीने में अल्लाह जल्ल शानुहू की तरफ़ से अनवार व बरकतों का जो सैलाब आता है उसको पहचानते हैं, ऐसे हज़रात को इस महीने की क़द्र होती है। आपने यह हदीस सुनी होगी कि जब नबी–ए–अकरम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम रजब का चांद देखते तो दुआ फ़रमाया करते थे:

"اَللّٰهُمَّ بَارِكْ لَنَا فِیْ رَجَبَ وَشَعْبَانَ وَبَلِّغْنَا رَمَضَانَ" (مجمع الزوائد ج ۲)

ऐ अल्लाह, हमारे लिये रजब और शाबान के महीनों में बर्कत अ़ता फ़रमा और हमें रमज़ान के महीने तक पहुंचा दीजिये। यानी हमारी उम्र इतनी लम्बी कर दीजिये कि हमें अपनी उम्र में रमज़ान का महीना नसीब हो जाये। अब आप अन्दाज़ा लगायें कि रमज़ान के आने से दो महीने पहले रमज़ान का इन्तिज़ार और इश्तियाक़ शुरू हो गया, और उसके हासिल हो जाने की दुआ कर रहे हैं कि अल्लाह तआ़ला यह महीना नसीब फ़रमा दे, यह काम वही शख़्स कर सकता है जिसको रमज़ान मुबारक की सही क़द्र व क़ीमत मालूम हो।

उम्र में बढ़ोतरी की दुआ

इस हदीस से यह पता चला कि अगर कोई शख़्स इस नियत से अपनी उम्र में इज़ाफ़े और बढ़ोतरी की दुआ करे कि मेरी उम्र में इज़ाफ़ा हो जाये ताकि इस उम्र को मैं अल्लाह तआ़ला की मर्ज़ी के मुताबिक़ सही इस्तेमाल कर सकूं और फिर वह आख़िरत में काम आये, तो उम्र के इज़ाफ़े की यह दुआ करना इस हदीस से साबित है, इसलिये यह दुआ मांगनी चाहिये कि या अल्लाह! मेरी उम्र में इतना इज़ाफ़ा फ़रमा दे कि मैं इसमें आपकी रिज़ा के मुताबिक़ काम कर सकूं और जिस वक़्त मैं आपकी बारगाह में पहुंचूं तो उस वक़्त आपकी रिज़ा का हक़दार बन जाऊं। लेकिन जो लोग इस क़िस्म की दुआ मांगते हैं कि "या अल्लाह! अब तो इस दुनिया से उठा ही ले" हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ऐसी दुआ करने से मना फ़रमाया है, और मौत की तमन्ना करने से भी मना फ़रमाया है। अरे तुम तो यह सोच कर मौत की दुआ कर रहे हो कि यहां (दुनिया में) हालात ख़राब हैं, जब वहां चले जायेंगे तो वहां अल्लाह मियां के पास सुकून मिल जायेगा। अरे यह तो जायज़ा लो कि तुमने वहां के लिये क्या तैयारी कर रखी है? क्या मालूम कि अगर उस वक़्त मौत आ जाये तो ख़ुदा जाने क्या हालात पेश आयें। इसलिये हमेशा यह

दुआ करनी चाहिये कि अल्लाह तआला आफ़ियत फ़रमाये, और जब तक अल्लाह तआला ने उम्र मुक़र्रर कर रखी है, उस वक़्त तक अल्लाह तआला अपनी रिज़ा के मुताबिक़ ज़िन्दगी गुज़ारने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए, आमीन।

ज़िन्दगी के बारे में हुज़ूरे अकरम सल्ल. की दुआ

चुनांचे हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम यह दुआ फ़रमाया करते थे:

"اَللّٰهُمَّ اَحْيِنِیْ مَا كَانَتِ الْحَيَاةُ خَيْرًا لِّیْ وَتَوَفَّنِیْ اِذَا كَانَتِ الْوَفَاةُ خَيْرًا لِّیْ" (مسند احمد ج۳)

ऐ अल्लाह! जब तक मेरे हक़ में ज़िन्दगी फ़ायदेमन्द है, उस वक़्त तक मुझे ज़िन्दगी अता फ़रमा, और जब मेरे हक़ में मौत फ़ायदे मन्द हो जाये, ऐ अल्लाह! मुझे मौत अता फ़रमा। इसलिये यह दुआ करना कि या अल्लाह! मेरी उम्र में इतना इज़ाफ़ा कर दीजिये कि आपकी रिज़ा के मुताबिक़ उसमें काम करने की तौफ़ीक़ हो जाये, यह दुआ करना दुरुस्त है, जो हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ही इस दुआ से मालूम होती है, कि ऐ अल्लाह! हमें रमज़ान तक पहुंचा दीजिये।

रमज़ान का इन्तिज़ार क्यों?

अब सवाल यह है कि हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को यह शौक़ और इन्तिज़ार क्यों हो रहा है कि रमज़ान मुबारक का महीना आ जाये, और हमें मिल जाए? वजह इसकी यह है कि अल्लाह तआला ने रमज़ान मुबारक को अपना महीना बनाया है, हम लोग चूंकि ज़ाहिरी निगाह रखने वाले लोग हैं इसलिय ज़ाहिरी तौर पर हम यह समझते हैं कि रमज़ान मुबारक की यह ख़ुसूसियत है कि यह रोज़ों का महीना है, इसमें रोज़े रखे जायेंगे और तरावीह पढ़ी जायेंगी और बस, लेकिन हक़ीक़त यह है कि बात यहां तक ख़त्म नहीं होती, बल्कि रोज़े हों या तरावीह हों या रमज़ान मुबारक की कोई और इबादत हो, ये सब इबादतें एक और बड़ी चीज़ की

अलामत हैं, वह यह कि अल्लाह तआला ने इस महीने को अपना महीना बनाया है, ताकि वे लोग जो ग्यारह महीने तक माल की दौड़ धूप में लगे रहे, और हम से दूर रहे, और अपने दुनियावी कारोबार में उलझे रहे, और ग़फ़लत की नींद में मुब्तला रहे, हम उन लोगों को एक महीना अपने कुर्ब (नज़्दीकी) का अता फ़रमाते हैं, उनसे कहते हैं कि तुम हम से बहुत दूर चले गये थे, और दुनिया के काम धन्धों में उलझ गये थे, तुम्हारी सोच, तुम्हारी फ़िक्र, तुम्हारा ख़्याल, तुम्हारे आमाल, तुम्हारे फ़ेल ये सब दुनिया के कामों में लगे हुए थे, अब हम तुम्हें एक महीना अता करते हैं, इस महीने में तुम हमारे पास आ जाओ और इसको ठीक ठीक गुज़ार लो, तो तुम्हें हमारा कुर्ब यानी निकटता हासिल हो जायेगी, क्योंकि यह हमारे कुर्ब (नज़्दीकी और निकटता) का महीना है।

इन्सान की पैदाइश का मक़सद

देखिये! इन्सान को अल्लाह तआला ने अपनी इबादत के लिये पैदा फ़रमाया है। चुनांचे अल्लाह तआला ने कुरआने करीम के अन्दर इर्शाद फ़रमायाः

"وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالْإِنْسَ إِلَّا لِيَعْبُدُوْنِ" (الذاريات:٥٦)

फ़रमायाः यानी मैंने जिन्नात और इन्सान को सिर्फ़ एक काम के लिये पैदा किया, कि वे मेरी इबादत करें। इन्सान की ज़िन्दगी का असल मक़सद और उसके दुनिया में आने और दुनिया में रहने का असल मक़सद यह है कि वह अल्लाह जल्ल शानुहू की इबादत करे।

क्या फ़रिश्ते इबादत के लिये काफ़ी नहीं थे?

अब अगर किसी के दिल में यह सवाल पैदा हो कि इस मक़सद के लिये तो अल्लाह तआला ने फ़रिश्तों को पहले ही पैदा फ़रमा दिया था, अब इस मक़सद के लिये दूसरी मख़्लूक़ यानी इन्सान को पैदा करने की क्या ज़रूरत थी? इसका जवाब यह है कि फ़रिश्ते अगरचे इबादत के लिये पैदा किये गये थे, लेकिन वे इसलिये पैदा

किये गये थे कि पैदाइशी तौर पर इबादत करने पर मजबूर थे, इसलिये कि उनकी फ़ितरत में सिर्फ़ इबादत का माद्दा रखा गया था, इबादत के अलावा गुनाह और ना फ़रमानी का माद्दा रखा ही नहीं गया था, लेकिन हज़रते इन्सान इस तरह पैदा किये गये कि उनके अन्दर ना फ़रमानी का माद्दा भी रखा गया, गुनाह का माद्दा भी रखा गया, और फिर हुक्म दिया गया कि इबादत करो। इसलिये फ़रिश्तों के लिये इबादत करना आसान था, लेकिन इन्सान के अन्दर ख़्वाहिशें हैं, जज़्बात हैं, मुहर्रिकात हैं, और ज़रूरियात हैं और गुनाह के तक़ाज़े हैं, और फिर हुक्म यह दिया गया कि गुनाहों के उन तक़ाज़ों से बचते हुए और उन जज़्बात को कन्ट्रोल करते हुए और गुनाहों की ख़्वाहिशों को कुचलते हुए अल्लाह तआला की इबादत करो।

इबादतों की दो क़िस्में

यहां एक बात और समझ लेनी चाहिये, जिसके न समझने की वजह से कभी कभी गुमराहियां पैदा हो जाती हैं, वह यह कि एक तरफ़ तो यह कहा जाता है कि मोमिन का हर काम इबादत है, यानी अगर मोमिन की नियत सही है और उसका तरीक़ा सही है और वह सुन्नत के मुताबिक़ ज़िन्दगी गुज़ार रहा है तो फिर उसका खाना भी इबादत है, उसका सोना भी इबादत है, उसका मिलना जुलना भी इबादत है, उसका कारोबार करना भी इबादत है, उसका बीवी बच्चों के साथ हंसना बोलना भी इबादत है। अब सवाल यह पैदा होता है कि जिस तरह एक मोमिन के ये सब काम इबादत हैं, इसी तरह नमाज़ भी इबादत है, तो फिर इन दोनों इबादतों में क्या फ़र्क़ है? इन दोनों के फ़र्क़ को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये, और इस फ़र्क़ को न समझने की वजह से बाज़ लोग गुमराही में मुब्तला हो जाते हैं।

पहली क़िस्म बराहे रास्त इबादत

इन दोनों इबादतों में फ़र्क़ यह है कि एक क़िस्म के आमाल वे

हैं जो बराहे रास्त इबादत हैं, और जिनका मक़सद अल्लाह तआला की बन्दगी के अलावा कोई दूसरा नहीं है, और वे आमाल सिर्फ़ अल्लाह तआला की बन्दगी के लिये ही मुक़र्रर किये गये हैं। जैसे नमाज़ है, इस नामज़ का मक़सद सिर्फ़ अल्लाह तआला की बन्दगी है, बन्दा इसके ज़रिये से अल्लाह तआला की इबादत करे और अल्लाह तआला के आगे सरे नियाज़ झुकाए। इस नमाज़ का कोई और मक़सद और मसरफ़ नहीं है, इसलिये यह नमाज़ असली इबादत और बराहे रास्त इबादत है, इसी तरह रोज़ा, ज़कात, ज़िक्र, तिलावत, सदक़ात, हज, उमरा ये सब आमाल ऐसे हैं कि इनको सिर्फ़ इबादत ही के लिये मुक़र्रर किया गया है, इनका कोई और मक़सद और मसरफ़ नहीं है, ये बराहे रास्त इबादतें हैं।

दूसरी क़िस्म, बिलवास्ता इबादत

इनके मुक़ाबले में कुछ आमाल वे हैं जिनका असल मक़सद तो कुछ और था जैसे अपनी दुनियावी ज़रूरतों और ख़्वाहिशों की तक्मील थी, लेकिन अल्लाह तआला ने अपने फ़ज़्ल से मोमिन से यह कह दिया कि अगर तुम अपने दुनियावी कामों को भी नेक नियती से हमारी मुक़र्रर की हुई हदों के अन्दर और हमारे नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत के मुताबिक़ अन्जाम दोगे तो हम तुम्हें उन कामों पर भी वैसा ही सवाब देंगे जैसे हम पहली क़िस्म की इबादत पर देते हैं। इसलिये ये इबादतें बराहे रास्त नहीं हैं बल्कि बिलवास्ता इबादत हैं, और यह इबादतों की दूसरी क़िस्म है।

''हलाल कमाना'' बिलवास्ता इबादत है

जैसे यह कह दिया कि अगर तुम बीवी बच्चों के हुक़ूक़ अदा करने के लिये जायज़ हदों के अन्दर रह कर कमाओगे और इस नियत के साथ हलाल रिज़्क़ कमाओगे कि मेरे ज़िम्मे मेरी बीवी के हुक़ूक़ हैं, मेरे ज़िम्मे मेरे बच्चों के हुक़ूक़ हैं, मेरे ज़िम्मे मेरे नफ़्स के हुक़ूक़ हैं। इन हुक़ूक़ को अदा करने के लिये काम रहा हूं, तो इस

कमाई करने को भी अल्लाह तआला इबादत बना देते हैं। लेकिन बुनियादी तौर पर यह कमाई करना इबादत के लिये नहीं बनाया गया, इसलिये यह कमाई करना बराहे रास्त (प्रत्यक्ष रूप से) इबादत नहीं बल्कि बिलवास्ता (अप्रत्यक्ष रूप से) इबादत है।

बराहे रास्त इबादत अफ़ज़ल है

इस तफ़सील से मालूम हुआ कि जो इबादत बराहे रास्त इबादत है वह ज़ाहिर है कि उस इबादत से अफ़ज़ल होगी जो बिलवास्ता इबादत है, और उसका दर्जा ज़्यादा होगा। इसलिये अल्लाह तआला ने यह जो फ़रमाया कि "मैंने जिन्नात और इन्सानों को सिर्फ़ इसलिये पैदा किया ताकि वे मेरी इबादत करें" इस से मुराद इबादत की पहली क़िस्म है, जो बराहे रास्त इबादत हैं। इबादत की दूसरी क़िस्म मुराद नहीं जो बिलवास्ता इबादत हैं।

एक डॉक्टर साहिब का वाक़िआ

चन्द दिन पहले एक औरत ने मुझ से पूछा कि मेरे शौहर डॉक्टर हैं, उन्होंने अपना एक क्लीनिक खोल रखा है, मरीज़ों को देखते हैं, और नमाज़ का वक़्त आता है तो वह वक़्त पर नमाज़ नहीं पढ़ते, और जब रात को क्लीनिक बन्द करके घर वापस आते हैं तो तीनों नमाज़ें एक साथ पढ़ लेते हैं। मैंने उनसे कहा कि आप घर आकर सारी नमाज़ें इकट्ठी क्यों पढ़ते हैं, वहीं क्लीनिक में वक़्त पर नमाज़ अदा कर लिया करें ताकि क़ज़ा न हों। जवाब में शौहर ने कहा कि मैं मरीज़ों का इलाज करता हूं, यह मख़्लूक़ की ख़िदमत का काम है और मख़्लूक़ की ख़िदमत बहुत बड़ी इबादत है, और उसका ताल्लुक़ बन्दों के हुक़ूक़ से है, इसलिये मैं उसको तरजीह देता हूं। और नमाज़ पढ़ना चूंकि मेरा ज़ाती मामला है, इसलिये मैं घर आकर इकट्ठी सारी नमाज़ें पढ़ लेता हूं। तो वह औरत मुझ से पूछ रही थी कि मैं अपने शौहर की इस दलील का क्या जवाब दूं?

नमाज़ किसी हाल में माफ़ नहीं

हकीकत में उनके शौहर को यहां ग़लत फ़हमी पैदा हुई कि इन दोनों किस्म की इबादतों के मरतबे में जो फ़र्क है उस फ़र्क को नहीं समझे। वह फ़र्क यह है कि नमाज़ की इबादत बराहे रास्त है, जिसके बारे में अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि अगर तुम जंग के मैदान में भी हो और दुश्मन मौजूद हो तब भी नमाज़ पढ़ो, अगरचे उस वक़्त नमाज़ के तरीक़े में आसानी पैदा फ़रमा दी, लेकिन नमाज़ की फ़रज़ियत उस वक़्त भी ख़त्म नहीं फ़रमाई। चुनांचे नमाज़ के बारे में अल्लाह तआला का हुक्म है कि:

"إِنَّ الصَّلٰوةَ كَانَتْ عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ كِتَابًا مَّوْقُوْتًا" (النسآء:١٠٣)

"बेशक नमाज़ अपने मुक़र्ररा वक़्त पर मोमिनों पर फ़र्ज़ है"।

अब बताइये कि जिहाद से बढ़ कर और क्या अमल होगा, लेकिन हुक्म यह दिया कि जिहाद में भी वक़्त पर नमाज़ पढ़ो।

मख़्लूक़ की ख़िदमत दूसरे दर्जे की इबादत है

यहां तक कि अगर एक इन्सान बीमार पड़ा हुआ है और इतना बीमार है कि वह कोई काम अन्जाम नहीं दे सकता, उस हालत में भी यह हुक्म है कि नमाज़ मत छोड़ो, नमाज़ तो ज़रूर पढ़ो, लेकिन हम तुम्हारे लिये यह आसानी कर देते हैं कि खड़े होकर नहीं पढ़ सकते तो बैठ कर पढ़ लो, बैठ कर नहीं पढ़ सकते तो लेट कर पढ़ लो, और इशारे से पढ़ लो। वुज़ू नहीं कर सकते तो तयम्मुम कर लो, लेकिन पढ़ो ज़रूर। यह नमाज़ किसी हाल में भी माफ़ नहीं फ़रमाई, इसलिये कि नमाज़ बराहे रास्त और अपनी ज़ात में मक़सूद इबादत है, और पहले दर्जे की इबादत है। और डॉ. साहिब जो मरीज़ों का इलाज करते हैं यह ख़िदमते ख़ल्क़ है, यह भी बहुत बड़ी इबादत है लेकिन यह दूसरे दर्जे की इबादत है, बराहे रास्त इबादत नहीं, इसलिये अगर इन दोनों किस्मों की इबादतों में टकराव और तक़ाबुल हो जाये तो उस सूरत में उस इबादत को तरजीह होगी जो बराहे

रास्त इबादत है। चूंकि उन डॉ. साहिब ने इन दोनों क़िस्म की इबादतों के दरमियान के फ़र्क़ को नहीं समझा, इसके नतीजे में इस ग़लती के अन्दर मुब्तला हो गये।

दूसरी ज़रूरतों के मुक़ाबले में नमाज़ ज़्यादा अहम है

देखिये जिस वक़्त आप दवाख़ाने में ख़िदमते ख़ल्क़ के लिये बैठते हैं, उस दौरान आपको दूसरी ज़रूरतों के लिये भी उठना पड़ता है। जैसे अगर लैट्रीन जाने की, या बाथरूम में जाने की ज़रूरत पेश आये तो आख़िर उस वक़्त भी तो आप मरीज़ों को छोड़ कर जायेंगे, इसी तरह अगर उस वक़्त भूख लगी हुई है और खाने का वक़्त आ गया है, उस वक़्त आप खाने के लिये वक़्फ़ा करेंगे या नहीं? जब इन कामों के लिये उठ कर जा सकते हैं तो अगर नमाज़ का वक़्त आने पर नमाज़ के लिये उठ कर जायेंगे तो उस वक़्त क्या दुश्वारी पेश आ जायेगी? और ख़िदमते ख़ल्क़ में कौन सी रुकावट पैदा हो जायेगी? जब कि दूसरी ज़रूरतों के मुक़ाबले में नमाज़ ज़्यादा अहम है। असल में दोनो इबादतों में फ़र्क़ न समझने की वजह से यह ग़लत फ़हमी पैदा हुई है। यों तो दूसरी क़िस्म की इबादत के लिहाज़ से एक मोमिन का हर काम इबादत बन सकता है। अगर एक मोमिन नेक नियती से सुन्नत के तरीक़े पर काम करे तो उसकी सारी ज़िन्दगी इबादत है, लेकिन वह दूसरे दर्जे की इबादत है, पहले दर्जे की इबादत नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात अल्लाह का ज़िक्र वग़ैरह, ये बराहे रास्त अल्लाह की इबादतें हैं, और असल में इन्सान को इसी इबादत के लिये पैदा किया गया है।

इन्सान का इम्तिहान लेना है

इन्सान को इस इबादत के लिये इसलिये पैदा फ़रमाया गया ताकि यह देखें कि यह इन्सान जिसके अन्दर हमने मुख़्तलिफ़ क़िस्म के तक़ाज़े और ख़्वाहिशें रखी हैं, हमने इसके अन्दर गुनाहों के जज़्बात और उनका शौक़ रखा है, इन तमाम चीज़ों के बावजूद यह

इन्सान हमारी तरफ आता है और हमें याद करता है या यह गुनाहों के तक़ाज़े की तरफ़ जाता है, और उन जज़्बात को अपने ऊपर ग़ालिब कर लेता है, इस मक़सद के लिये इन्सान को पैदा किया गया।

यह हुक्म भी ज़ुल्म न होता

जब यह बात सामने आ गई कि इन्सान की ज़िन्दगी का मक़सद इबादत है, इसलिये अगर अल्लाह तआला हमें और आपको यह हुक्म देते कि चूंकि तुम दुनिया के अन्दर इबादत के लिये आये हो और तुम्हारी ज़िन्दगी का मक़सद भी इबादत है, तो अब सुबह से शाम तक तुम्हारा और कोई काम नहीं, बस एक ही काम है, और वह यह कि तुम हमारे सामने हर वक़्त सज्दे में पड़े रहो और हमारा ज़िक्र करते रहो और जहां तक ज़िन्दगी की ज़रूरतों का ताल्लुक़ है तो चलो हम तुम्हें इतनी मोहलत देते हैं कि दरमियान में इतना वक़्फ़ा करने की इजाज़त है कि तुम दरमियान में दोपहर का खाना और शाम का खाना खा लिया करो, ताकि तुम ज़िन्दा रह सको, लेकिन बाक़ी सारा वक़्त हमारे सामने सज्दे में रहते हुए गुज़ार दो। और अगर अल्लाह तआला यह हुक्म जारी कर देते तो क्या हम पर कोई ज़ुल्म होता? हरगिज़ नहीं, इसलिये कि हमें पैदा ही इसी काम के लिये किया गया है।

हम और आप बिके हुए माल हैं

इसलिये एक तरफ़ तो इबादत के मक़सद से पैदा फ़रमाया और दूसरी तरफ़ अल्लाह तआला ने यह भी फ़रमा दियाः

"إِنَّ اللّٰهَ اشْتَرٰى مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ أَنْفُسَهُمْ وَأَمْوَالَهُمْ بِأَنَّ لَهُمُ الْجَنَّةَ. (التوبة:١١١)

यानी अल्लाह तआला ने तुम्हारी जानें और तुम्हारा माल ख़रीद लिया है, और उसकी क़ीमत जन्नत लगा दी है। इसलिये हम और आप तो बिके हुए माल हैं, हमारी जान भी बिकी हुई है और हमारा माल भी बिका हुआ है। अब अगर उनको ख़रीदने वाला जिसने

उनकी इतनी बड़ी कीमत लगाई है, यानी जन्नत, जिसकी चौड़ाई आसमान और ज़मीन के बराबर है, वह ख़रीदार अगर यह कह दे कि तुम्हें सिर्फ़ अपनी जान बचाने की हद तक खाने पीने की इजाज़त है और किसी काम की इजाज़त नहीं है, बस हमारे सामने सज्दे में पड़े रहो, तो उसे यह हुक्म देने का हक़ था, हम पर कोई ज़ुल्म न होता, लेकिन यह अजीब ख़रीदार है जिसने हमारी जान व माल को ख़रीद लिया और उसकी इतनी बड़ी क़ीमत भी लगा दी और साथ साथ यह भी कह दिया कि हमने तुम्हारी जान भी ख़रीद ली अब तुम्हें ही वापस कर देते हैं, तुम ही अपनी जान से फ़ायदा उठाओ और सारी ज़िन्दगी इस से काम लेते रहो। खाओ, कमाओ, तिजारत करो, नौकरी करो और दुनिया की दूसरी जायज़ ख़्वाहिशें पूरी करो, सब की तुम्हें इजाज़त है, बस इतनी बात है कि पांच वक़्त हमारे दरबार में आ जाया करो, और थोड़ी सी पाबन्दी लगाते हैं कि यह काम इस तरह करो और इस तरह न करो, बस इन कामों की पाबन्दी कर लो, बाक़ी तुम्हें खुली छूट है।

इन्सान अपनी ज़िन्दगी का मक़सद भूल गया

अब जब अल्लाह तआला ने हज़रते इन्सान को उसकी जान और उसका माल वापस दे दिया और यह कह दिया कि तुम्हारे लिये तिजारत भी जायज़, नौकरी भी जायज़, खेती भी जायज़ सब चीज़ें जायज़ कर दीं तो इसके बाद जब यह हज़रते इन्सान तिजारत करने के लिये और नौकरी करने के लिये, खेती करने और खाने कमाने के लिये निकले तो वह यह भूल गये कि हम इस दुनिया में क्यों भेजे गये थे? और हमारी ज़िन्दगी का मक़सद क्या था? किसने ख़रीदा था? और उस ख़रीदारी का क्या मक़सद था? उसने हम पर क्या पाबन्दियां लगाई थीं? और क्या अह्काम हमें दिये थे? ये सब बातें तो भूल गये और अब ख़ूब तिजारत हो रही है, ख़ूब पैसा कमाया जा रहा है, और आगे बढ़ने की दौड़ लगी हुई है, और इसी की फ़िक्र है और

इसी में दिन रात लगा हुआ है। और अगर किसी को नमाज़ की फ़िक्र हुई भी तो भाग दौड़ की हालत में मस्जिद में हाज़िर हो गया, अब दिल कहीं है, दिमाग़ कहीं है और जल्दी जल्दी जैसी तैसी नमाज़ अदा की और फिर वापस जाकर तिजारत में लग गया, और कभी मस्जिद में भी आने की तौफ़ीक़ नहीं हुई तो घर में पढ़ ली, और कभी नमाज़ ही न पढ़ी और क़ज़ा कर दी, इसका नतीजा यह हुआ कि यह दुनियावी और तिजारती सरगरमियां (गतिविधियां) इन्सान पर ग़ालिब आती चली गयीं।

इबादत की ख़ासियत

इबादत का ख़ास्सा यह है कि अल्लाह तआला के साथ इन्सान का रिश्ता जोड़ती है, उसके साथ ताल्लुक़ क़ायम करती है, जिसके नतीजे में इन्सान को हर वक़्त अल्लाह तआला का क़ुर्ब (निकटता) हासिल होता है।

दुनियावी कामों की ख़ासियत

दूसरी तरफ़ दुनियावी कामों की ख़ासियत यह है कि अगरचे इन्सान उनको सही दायरे में रह कर भी करे, मगर फिर भी ये दुनियावी काम धीरे धीरे इन्सान को गुनाह की तरफ़ ले जाते हैं, और रूहानियत से दूर करते हैं। अब जब ग्यारह महीने इसी दुनियावी कामों में गुज़र गये और इसमें माद्दियत का ग़लबा रहा और रुपये पैसे हासिल करने और ज़्यादा से ज़्यादा जमा करने का ग़लबा रहा तो उसके नतीजे में इन्सान पर माद्दियत ग़ालिब आ गयी, और इबादतों के ज़रिये जो रिश्ता अल्लाह तबारक व तआला के साथ क़ायम होना था, वह रिश्ता कमज़ोर हो गया, उसके अन्दर कमज़ोरी आ गयी। और जो नज़्दीकी हासिल होनी थी वह हासिल न हो सकी।

रहमत का ख़ास महीना

तो चूंकि अल्लाह तबारक व तआला जो इन्सान के ख़ालिक़ (पैदा करने वाले) हैं, वह जानते थे कि यह हज़रते इन्सान जब

दुनिया के काम धन्धे में लगेगा तो हमें भूल जायेगा, और फिर हमारी इबादतों की तरफ़ इसका इतना लगाव नहीं होगा जितना दुनियावी कामों के अन्दर इसको लगाव होगा, तो अल्लाह तआ़ला ने इस इन्सान से फ़रमाया कि हम तुम्हें एक मौक़ा और देते हैं और हर साल तुम्हें एक महीना देते हैं, ताकि जब तुम्हारे ग्यारह महीने इन दुनियावी काम धन्धों में गुज़र जायें और माद्दे के और रुपये पैसे के चक्कर में उलझे हुए गुज़र जायें तो अब हम तुम्हें रहमत का एक ख़ास महीना अ़ता करते हैं, उस एक महीने के अन्दर तुम हमारे पास आ जाओ ताकि ग्यारह महीनों के दौरान तुम्हारी रूहानियत में जो कमी आ गयी है, और हमारे साथ ताल्लुक़ और नज़्दीकी में जो कमी आ गयी है, इस मुबारक महीने में तुम उस कमी को दूर कर लो। और इस मक़सद के लिये हम तुम्हें यह हिदायत का महीना अ़ता करते हैं कि तुम्हारे दिलों पर जो ज़ंग लग गया है उसको दूर कर लो, और हमसे जो दूर चले गये हो अब क़रीब आ जाओ, और जो ग़फ़लत तुम्हारे अन्दर पैदा हो गयी है उसको दूर करके अपने दिलों को ज़िक्र से आबाद कर लो। इस मक़सद के लिये अल्लाह तआ़ला ने रमज़ान का महीना अ़ता फ़रमाया, इन मक़सदों के हासिल करने के लिये और अल्लाह तआ़ला की नज़्दीकी पैदा करने के लिये रोज़ा अहम तरीन उन्सुर है, रोज़े के अ़लावा और जो इबादतें इस मुबारक महीने में मश्रू की गयी हैं वे भी सब अल्लाह तआ़ला की निकटता के लिये अहम अ़नासिर हैं। अल्लाह तआ़ला का मक़सद यह है कि दूर भागे हुए इन्सान को इस महीने के ज़रिये अपनी नज़्दीकी अ़ता फ़रमायें।

अब निकटता हासिल कर लो

चुनांचे इर्शाद फ़रमायाः

"يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الصِّيَامُ كَمَا كُتِبَ عَلَى الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ۔ (البقرة:۱۸۳)

ऐ ईमान वालो! तुम पर रोज़े फ़र्ज़ किये गये, जिस तरह तुम से पहले लोगों पर फ़र्ज़ किये गये थे, ताकि तुम्हारे अन्दर तक़वा पैदा हो। ग्यारह महीनों तक तुम जिन कामों में मुब्तला रहे हो, उन कामों ने तुम्हारे तक़वा की ख़ासियत को कमज़ोर कर दिया, अब रोज़े के ज़रिये उस तक़वा की ख़ासियत को दोबारा ताक़तवर बना लो, इसलिये यह बात सिर्फ़ इस हद तक ख़त्म नहीं होती कि रोज़ा रख लिया और तरावीह पढ़ लीं, बल्कि पूरे रमज़ान को इस काम के लिये ख़ास करना है कि ग्यारह महीने हम लोग अपनी असल ज़िन्दगी के मक़सद से और इबादत से दूर चले गये थे, उस दूरी को ख़त्म करना है, और अल्लाह तआला का कुर्ब (निकटता) हासिल करना है। इसका तरीक़ा यह है कि रमज़ान के महीने को पहले ही से ज़्यादा से ज़्यादा इबादतों के लिये फ़ारिग़ किया जाये। इसलिये कि दूसरे काम धन्धे तो ग्यारह महीने तक चलते रहेंगे, लेकिन इस महीने के अन्दर उन कामों को जितना मुख़्तसर से मुख़्तसर कर सकते हो कर लो, और इस महीने को ख़ालिस इबादतों के कामों में ख़र्च कर लो।

रमज़ान का स्वागत

मेरे वालिद मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह्मतुल्लाहि अलैहि फ़रमाया करते थे, कि रमज़ान का स्वागत और उसकी तैयारी यह है कि इन्सान पहले से यह सोचे कि मैं अपने हर दिन के कामों में से, जैसे तिजारत, नौकरी, खेती वग़ैरह के कामों में से किन किन कामों को टाल सकता हूं, उनको टाल दे, और फिर उन कामों से जो वक़्त बचे उसको इबादत में लगाये।

रमज़ान में सालाना छुट्टियां क्यों?

हमारे दीनी मदरसों में एक ज़माने से यह रिवाज और तरीक़ा चला आ रहा है कि सलाना छुट्टियां हमेशा रमज़ान मुबारक के महीने में की जाती हैं। १५ शाबान को तालीमी साल ख़त्म हो जाता है और १५ शाबान से लेकर १५ शव्वाल तक दो महीने की सालाना छुट्टियां

हो जाती हैं। शव्वाल से नया तालीमी साल शुरू होता है, यह हमारे बुज़ुर्गों का जारी किया हुआ तरीक़ा है। इस तरीक़े पर लोग एतिराज़ करते हुए कहते हैं कि देखो ये मौलवी साहिबान रमज़ान में लोगों को इस बात का सबक़ देते हैं कि आदमी रमज़ान के महीने में बेकार हो कर बैठ जाये, हालांकि सहाबा-ए-किराम ने तो रमज़ान मुबारक में जिहाद किया और दूसरे काम किये, ख़ूब समझ लें कि अगर जिहाद का मौक़ा आ जाये तो बेशक आदमी जिहाद भी करे, चुनांचे ग़ज़वा-ए-बदर और फ़तहे मक्का रमज़ान मुबारक में हुए, लेकिन जब साल के किसी महीने में छुट्टी करनी ही है तो उसके लिये रमज़ान के महीने को इसलिये चुना ताकि उस महीने को ज़्यादा से ज़्यादा अल्लाह तआ़ला की बराहे रास्त इबादत के लिये फ़ारिग़ कर सकें।

अगरचे इन दीनी मदरसों में पूरे साल जो काम होते हैं वे भी सब के सब इबादत हैं। जैसे क़ुरआने करीम की तालीम, हदीस की तालीम, फ़िक़्ह की तालीम वग़ैरह, मगर ये सब बिलवास्ता इबादतें हैं, लेकिन रमज़ान मुबारक में अल्लाह तआ़ला यह चाहते हैं कि इस महीने को मेरी बराहे रास्त इबादतों के लिये फ़ारिग़ कर लो, इसलिये हमारे बुज़ुर्गों ने यह तरीक़ा इख़्तियार फ़रमाया है कि जब छुट्टी करनी ही है तो बजाए गर्मियों में छुट्टी करने के रमाज़ान में छुट्टी करो, ताकि रमज़ान का ज़्यादा से ज़्यादा वक़्त अल्लाह तआ़ला की बराहे रास्त इबादतों में लगाया जा सके, इसलिये रमज़ान मुबारक में छुट्टी करने का असल मन्शा यह है।

बहर हाल! रमज़ान मुबारक में छुट्टी करना जिनके इख़्तियार में हो वे हज़रात तो छुट्टी कर लें, और जिन हज़रात के इख़्तियार में न हो वे कम से कम अपने औक़ात (समय) को इस तरह तरतीब दें कि उसका ज़्यादा से ज़्यादा वक़्त अल्लाह तआ़ला की बराहे रास्त इबादत में गुज़र जाये। और हक़ीक़त में रमज़ान का मक़सद भी यही है।

हुज़ूर सल्ल. को इबादाते मक़सूदा का हुक्म

मेरे वालिद माजिद रहमतुल्लाहि अलैहि ने एक बार फ़रमाया कि देखो कुरआने करीम की सूरः 'अलम नशरह' में अल्लाह तआला ने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से ख़िताब करते हुए इर्शाद फ़रमाया:

"فَإِذَا فَرَغْتَ فَانْصَبْ، وَإِلَىٰ رَبِّكَ فَارْغَبْ" (سورة الم نشرح)

यानी जब आप (दूसरे कामों से जिनमें आप मश्गूल हैं) फ़ारिग़ हो जायें तो अल्लाह तआला की इबादत में थकिये। किस काम के करने में थकिये? नमाज़ पढ़ने में, अल्लाह तआला के सामने खड़े होने में, अल्लाह तआला के समाने सज्दा करने में थकिये, और अपने रब की तरफ़ रग़बत का इज़हार कीजिये। मेरे वालिद माजिद रहमतुल्लाहि अलैहि फ़रमाया करते थे कि तुम ज़रा सोचो तो सही कि यह ख़िताबा किस ज़ात से हो रहा है? यह ख़िताब हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से हो रहा है, और आप से यह कहा जा रहा है कि जब आप फ़ारिग़ हो जायें, यह तो देखो कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम किन कामों में लगे हुए थे, जिन से फ़राग़त के बाद थकने का हुक्म दिया जा रहा है? क्या हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम दुनियावी कामों में लगे हुए थे? नहीं, बल्कि आपका तो एक एक काम इबादत ही था, या तो आपका काम तालीम देना था, या तब्लीग़ करना था, या जिहाद करना था, या तर्बियत और लोगों को पाक करना था, तो आपका तो अल्लाह तआला के दीन की ख़िदमत के अलावा कोई काम नहीं था, लेकिन इसके बावजूद आप से कहा जा रहा है कि जब आप उन कामों से फ़ारिग़ हो जायें तो अब आप हमारे सामने खड़े होकर थकिये। चुनांचे इसी हुक्म की तामील में जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम सारी सारी रात नामज़ के अन्दर इस तरह खड़े होते कि आपके पांव पर सूजन आ जाती थी। इस से मालूम हुआ कि जिन कामों में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम मश्गूल थे, वे

बिलवास्ता इबादत थी, और जिस इबादत की तरफ़ इस आयत में आपको बुलाया जा रहा था, वह बराहे रास्त इबादत थी।

मौलवी का शैतान भी मौलवी

हमारे वालिद साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि फ़रमाया करते थे कि मौलवी का शैतान भी मौलवी होता है, यानी शैतान मौलवियों को इल्मी अन्दाज़ से धोखा देता है। चुनांचे मौलवी का शैतान मौलवी साहिब से कहता है कि यह जो कहा जा रहा है कि तुम ग्यारह महीने तक दुनियावी कामों में लगे रहे, यह उन लोगों से कहा जा रहा है जो तिजारत और कारोबार में लगे रहे, और रोज़ी रोज़गार के कामों में और दुनियावी धन्धों में और नौकरियों में लगे रहे, लेकिन तुम तो ग्यारह महीने तक दीन की ख़िदमत में लगे रहे, तुम तो तालीम देते रहे, तब्लीग़ करते रहे, वाज़ करते रहे, किताबें लिखते रहे, फ़तवे के कामों में लगे रहे, और ये सब दीन के काम हैं। हक़ीक़त में यह शैतान का धोखा होता है। इसलिये कि ग्यारह महीने तक तुम जिन इबादतों में मश्गूल थे, वह इबादत बिलवास्ता थी, और अब रमज़ान मुबारक बराहे रास्त इबादत का महीना है। यानी वह इबादत करनी है जो बराहे रास्ता इबादत के काम हैं। उस इबादत के लिये यह महीना आ रहा है। अल्लाह तआला इस महीने को उस इबादत में इस्तेमाल करने की हम सब को तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

नज़्दीकी के चालीस दर्जे हासिल करें

अब आप अपना एक टाईम टेबल बनायें कि किस तरह यह महीना गुज़ारना है। चुनांचे जितने कामों को टाल सकते हैं उनको टाल दो। और रोज़ा तो रखना ही है और तरावीह भी इन्शा अल्लाह अदा करनी ही है। इन तरावीह के बारे में हज़रत डॉ. अब्दुल हई साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि बड़े मज़े की बात फ़रमाया करते थे, कि यह तरावीह बड़ी अजीब चीज़ है, कि इसके ज़रिये अल्लाह तआला ने

हर इन्सान को रोज़ाना आम दिनों के मुकाबले में ज़्यादा मकामाते कुर्ब (नज़्दीकी के दर्जे) अता फ़रमाये हैं। इसलिये कि तरावीह की बीस रक्अतें हैं, जिनमें चालीस सज्दे किये जाते हैं और हर सज्दा अल्लाह तआला के कुर्ब (नज़्दीकी) का आला तरीन मकाम है, कि उससे ज़्यादा आला मकाम कोई और नहीं हो सकता। जब इन्सान अल्लाह तआला के सामने सज्दा करता है और अपनी मुअज़्ज़ज़ पेशानी ज़मीन पर टेकता है और ज़बान पर "सुब्हा–न रब्बियल आला" के अल्फ़ाज़ होते हैं तो यह अल्लाह की नज़्दीकी का वह आला तरीन मकाम होता है कि जो किसी और सूरत में नसीब नहीं हो सकता।

एक मोमिन की मेराज

यही नज़्दीकी का मकाम हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम मेराज के मौके पर लाये थे, जब मेराज के मौके पर आपको इतना ऊंचा मकाम बख़्शा गया तो हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने सोचा कि मैं अपनी उम्मत के लिये क्या तोहफ़ा लेकर जाऊं, तो अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि उम्मत के लिये ये "सज्दे" ले जाओ, इनमें से हर सज्दा मोमिन की मेराज है। फ़रमायाः

"الصلوة معراج المؤمنين"

यानी जिस वक्त कोई मोमिन बन्दा अपनी पेशानी (माथा) अल्लाह तआला की बारगाह में ज़मीन पर रख देगा तो उसको मेराज हासिल हो जायेगी। इसलिये यह सज्दा अल्लाह की नज़्दीकी का मकाम है।

सज्दे में अल्लाह की निकटता

सूरः इक्रा में अल्लाह तआला ने कितना प्यारा जुम्ला इर्शाद फ़रमायाः (यह सज्दे की आयत भी है, इसलिये तमाम हज़रात सज्दा भी कर लें) फ़रमायाः

"وَاسْجُدْ وَاقْتَرِبْ" (سورة علق:١٩)

सज्दा करो और हमारे पास आ जाओ। मालूम हुआ कि हर सज्दा अल्लाह के साथ कुर्ब (निकटता) का एक ख़ास मर्तबा रखता है, और रमज़ान के महीने में अल्लाह तआला ने हमें चालीस सज्दे और अता फ़रमा दिये, जिसका मतलब यह है कि चालीस अपनी निकटता के मक़ाम हर बन्दे को रोज़ाना अता किये जा रहे हैं। ये इसलिये दिये कि ग्यारह महीने तक तुम जिन कामों में लगे रहे, उन कामों की वजह से हमारे और तुम्हारे दरमियान कुछ दूरी पैदा हो गयी है, उस दूरी को ख़त्म करने के लिये रोज़ाना चालीस नज़्दीकी के मक़ामात देकर हम तुम्हें क़रीब कर रहे हैं, और वह है 'तरावीह'। इसलिये इस तरावीह को मामूली मत समझो, बाज़ लोग कहते हैं कि हम तो आठ रकअत तरावीह पढ़ेंगे, बीस नहीं पढ़ेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि अल्लाह तआला तो यह फ़रमा रहे हैं कि हम तुम्हें चालीस मक़ामाते नज़्दीकी अता फ़रमाते हैं, लेकिन ये हज़रात कहते हैं कि नहीं साहिब, हमें तो सिर्फ़ सोलह ही काफ़ी हैं चालीस की ज़रूरत नहीं। हक़ीक़त यह है कि उन लोगों ने इन अल्लाह की नज़्दीकी के मक़ामात की क़द्र नहीं पहचानी, तभी तो ऐसी बातें कर रहे हैं।

क़ुरआने करीम की तिलावत ख़ूब ज़्यादा करें

बहर हाल, रोज़ा तो रखना ही है और तरावीह तो पढ़नी ही है इसके अलावा भी जितना वक़्त हो सके इबादतों में लगाओ, जैसे क़ुरआने करीम की तिलावत का ख़ास एहतिमाम करो, क्योंकि इस रमज़ान के महीने को क़ुरआने करीम से ख़ास मुनासबत है, इसलिये इसमें ज़्यादा से ज़्यादा तिलावत करो। हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा रह्मतुल्लाहि अलैहि रमज़ान मुबारक में रोज़ाना एक क़ुरआने करीम दिन में ख़त्म किया करते थे और एक क़ुरआने करीम रात में ख़त्म किया करते थे, और एक क़ुरआने करीम तरावीह में ख़त्म फ़रमाते थे, इस तरह पूरे रमज़ान में इकसठ क़ुरआने करीम ख़त्म किया करते थे। बड़े बड़े बुज़ुर्गों के मामूलात में तिलवाते क़ुरआन करीम दाख़िल

रही है, इसलिये हम भी रमज़ान मुबारक में आम दिनों की मिकदार (मात्रा) के मुकाबले में तिलावत की मिकदार (मात्रा) को ज़्यादा करें।

नवाफ़िल की ज़्यादती करें

दूसरे दिनों में जिन नवाफ़िल को पढ़ने की तौफ़ीक नहीं होती, उनको रमज़ान मुबारक में पढ़ने की कोशिश करें, जैसे तहज्जुद की नमाज़ पढ़ने की आम दिनों में तौफ़ीक नहीं होती लेकिन रमज़ान मुबारक में रात के आख़री हिस्से में सहरी खाने के लिये उठना होता ही है, थोड़ी देर पहले उठ जायें और उसी वक़्त तहज्जुद की नमाज़ पढ़ लें, इसके अलावा इश्राक़ के नवाफ़िल, चाश्त के नवाफ़िल, अव्वाबीन के नवाफ़िल, आम दिनों में अगर नहीं पढ़े जाते तो कम से कम रमज़ान मुबारक में तो पढ़ लें।

सदकों की ज़्यादती करें

रमज़ान मुबारक में ज़कात के अलावा नफ़्ली सदके भी ज़्यादा से ज़्यादा देने की कोशिश करें। हदीस शरीफ़ में आता है कि हुज़ूर नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सख़ावत का दरिया वैसे तो सारे साल ही जारी रहता था, लेकिन रमज़ान मुबारक में आपकी सख़ावत ऐसी होती थी कि जैसे झोंके मारती हुई हवाएं चलती रहती हैं, जो आपके पास आया उसको नवाज़ दिया, इसलिये हम भी रमज़ान मुबारक में सदके ख़ूब करें।

अल्लाह के ज़िक्र की ज़्यादती करें

इसके अलावा चलते फिरते, उठते बैठते, अल्लाह तआला का ज़िक्र कसरत से करें, हाथों से काम करते रहें और ज़बान पर अल्लाह तआला का ज़िक्र जारी रहे:

"سُبْحَانَ اللهِ، وَالْحَمْدُ لِلّٰهِ وَلَآ اِلٰهَ اِلَّا اللهُ وَاللهُ اَكْبَرُ۔ سُبْحَانَ اللهِ وَبِحَمْدِهٖ

سُبْحَانَ اللهِ الْعَظِيْمِ۔ وَلَا حَوْلَ وَلَا قُوَّةَ اِلَّا بِاللهِ الْعَلِيِّ الْعَظِيْمِ۔

(सुब्हानल्लाहि वल्हम्दु लिल्लाहि वला इला-ह इल्लल्लाहु वल्लाहु अक्बरु, सुब्हानल्लाहि व बिहम्दिही सुब्हानल्लाहिल अज़ीम, ला हौ-ल

वला कुव्व–त इल्ला बिल्लाहिल अलिय्यिल अज़ीम)

इनके अलावा दुरूद शरीफ़ और इस्तिग़फ़ार की कसरत करें और उनके अलावा जो ज़िक्र भी ज़बान पर आ जाये, बस चलते फिरते, उठते बैठते अल्लाह तआला का ज़िक्र करते रहें।

गुनाहों से बचने की पाबन्दी करें

और रमज़ान मुबारक में ख़ास तौर पर गुनाहों से बचें और उस से बचने की फ़िक्र करें। यह तय कर लें कि रमज़ान के महीने में यह आंख गलत जगह पर नहीं उठेगी, इन्शा अल्लाह। यह तय कर लें कि रमज़ान मुबारक में इस ज़बान से ग़लत बात नहीं निकलेगी, इन्शा अल्लाह। झूठ, ग़ीबत या किसी का दिल दुखाने वाली कोई बात नहीं निकलेगी। रमज़ान मुबारक के महीने में इस ज़बान पर ताला डाल लो, यह क्या बात हुई कि रोज़ा रख कर हलाल चीज़ों के खाने से तो परहेज़ कर लिया, लेकिन रमज़ान में मुर्दा भाई का गोश्त खा रहे हो। इसलिये कि ग़ीबत करने को कुरआने करीम ने मुर्दा भाई के गोश्त खाने के बराबर क़रार दिया है। इसलिये ग़ीबत से बचने की पाबन्दी करें। झूठ से बचने की पाबन्दी करें और फ़ुज़ूल कामों से, फ़ुज़ूल मज्लिसों से और फ़ुज़ूल बातों से बचने की पाबन्दी करें, इस तरह यह रमज़ान का महीना गुज़ारा जाये।

ख़ूब दुआएं करें

इसके अलावा इस महीने में अल्लाह तआला के सामने दुआ की ख़ूब कसरत करें। रहमत के दरवाज़े खुले हुए हैं। रहमत की घटायें झूम झूम कर बरस रही हैं, मग़फ़िरत के बहाने ढूंढे जा रहे हैं, अल्लाह तआला की तरफ़ से आवाज़ दी जा रही है कि है कोई मुझ से मांगने वाला जिसकी दुआयें क़बूल करूं। इसलिये सुबह का वक़्त हो या शाम का वक़्त हो या रात का वक़्त हो, हर वक़्त मांगो। वह तो यह फ़रमा रहे हैं कि इफ़तार के वक़्त मांग लो, हम क़बूल कर लेंगे, रात को मांग लो हम क़बूल कर लेंगे, रात के आख़री हिस्से में

मांग लो हम कबूल कर लेंगे। अल्लाह तआला ने ऐलान फरमा दिया है कि हर वक़्त तुम्हारी दुआयें क़बूल करने के लिये दरवाज़े खुले हुए हैं, इसलिये ख़ूब मांगो। हमारे हज़रत डॉ. साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि फरमाया करते थे कि यह मांगने का महीना है, इसलिये उनका मामूल यह था कि रमज़ान मुबारक में असर की नमाज़ के बाद मग़रिब तक मस्जिद ही में बैठ जाते थे और उस वक़्त कुछ तिलावत कर ली, कुछ तस्बीहात और मुनाजाते मक़बूल पढ़ ली, और उसके बाद बाक़ी सारा वक़्त इफ़तार तक दुआ में गुज़ारते थे, और ख़ूब दुआयें किया करते थे। इसलिये जितना हो सके अल्लाह तआला से ख़ूब दुआयें करने की पाबन्दी करो। अपने लिये, अपने अज़ीज़ों और दोस्तों के लिये, और अपने मुताल्लिक़ीन के लिये, अपने मुल्क व मिल्लत के लिये, पूरी इस्लामी दुनिया के लिये दुआयें मांगो। अल्लाह तआला ज़रूर क़बूल फ़रमायेंगे। अल्लाह तआला हम सब को अपनी रहमत से इन बातों पर अमल करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, और इस रमज़ान की क़द्र करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये और इसके औक़ात (समय) को सही तौर पर ख़र्च करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

وآخر دعوانا ان الحمد لله رب العالمين

दोस्ती और दुश्मनी में दर्मियानी रास्ता इख़्तियार करें

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَا وَسَنَدَنَا وَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

"عن ابی هريرة رضی الله تعالیٰ عنه قال: قال رسول الله صلی الله عليه وسلم، احبب حبيبك هونا ما عسیٰ ان يكون بغيضك يوما ما وابغض بغيضك هونا ما عسیٰ ان يكون حبيبك يوما" (ترمذی شريف)

दोस्ती करने का क़ीमती उसूल

यह हदीस हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत की गयी है और सनद के एतिबार से सही हदीस है। यह बड़ी अ़जीब हदीस है, और इसमें बड़ा अ़जीब सबक़ दिया है, और इसमें हमारी पूरी ज़िन्दगी के लिये क़ीमती और सुनेहरा उसूल बयान फ़रमाया है, वह यह कि हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु रिवायत करते हैं कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमायाः अपने दोस्त से धीरे धीरे मुहब्बत करो, यानी एतिदाल (दर्मियानी तरीक़े) से करो, क्योंकि हो सकता है कि तुम्हारा दोस्त किसी दिन तुम्हारा दुश्मन बन जाये और ना पसन्दीदा बन जाये, और जिस शख़्स से तुम्हें दुश्मनी और बुग़्ज़ है उसके साथ बुग़्ज़ और दुश्मनी भी धीरे धीरे करो, क्या पता वह दुश्मन किसी दिन तुम्हारा महबूब और दोस्त बन जाये।

इस हदीस में यह अ़जीब तालीम इर्शाद फ़रमाई कि दोस्त से दोस्ती और मुहब्बत भी एतिदाल के साथ करो, और जिस से दुश्मनी हो तो उसके साथ दुश्मनी भी एतिदाल के साथ हो। याद रखो दुनिया की दोस्तियां और मुहब्बतें भी पायदार नहीं होतीं, और दुनिया की दुश्मनियां और बुग्ज़ भी पायदार नहीं होता, हो सकता है किसी वक़्त वह दोस्ती दुश्मनी में तब्दील हो जाये, और यह भी हो सकता है कि किसी वक़्त वह दुश्मनी दोस्ती में तब्दील हो जाये, इसलिये एतिदाल और हद से आगे न बढ़ो।

हमारी दोस्ती का हाल

इस हदीस में उन लोगों को ख़ास तौर पर सुनेहरी तालीम अ़ता फ़रमाई जिनका यह हाल होता है कि जब उनकी दोस्ती किसी से हो जाती है या किसी से ताल्लुक़ हो जाता है और मुहब्बत हो जाती है तो उस दोस्ती और मुहब्बत में बे धड़क आगे बढ़ते चले जाते हैं, कि फिर उनको किसी हद की परवाह नहीं होती। बस जिन से मुहब्बत और ताल्लुक़ क़ायम हो गया अब उनके अन्दर कोई ऐब नज़र नहीं आता, और अब दिन रात खाना पीना उनके साथ है, उठना बैठना उनके साथ है, चलना फिरना उनके साथ है, हर काम उनके साथ है और दिन रात उनका साथ और सोहबत हासिल है, और उनकी तारीफ़ के गुन गाये जा रहे हैं। लेकिन अचानक मालूम हुआ कि दोस्ती टूट गयी, अब वह दोस्ती ऐसी टूटी कि अब एक दूसरे की शक्ल व सूरत देखने के रवादार नहीं। एक दूसरे का नाम सुनने के रवादार नहीं, अब उनके अन्दर एक अच्छाई भी नज़र नहीं आती बल्कि अब उनकी बुराईयां शुरू हो गयीं। यह इन्तिहा पसन्दी और यह एतिदाल से बाहर हो जाना शरीअ़त का तक़ाज़ा नहीं। हुज़ूर नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस से मना फ़रमाया है, बल्कि यह तालीम दी है कि मुहब्बत भी एतिदाल से करो और अगर बुग्ज़ है तो वह भी एतिदाल से रखो। किसी चीज़ को हद से आगे न बढ़ाओ।

दोस्ती के लायक़ एक ज़ात

याद रखो, पहले तो दोस्ती और मुहब्बत जिस चीज़ का नाम है, यह दुनिया की मख़्लूक़ में हक़ीक़ी और सही मायने में तो है ही नहीं, असल दोस्ती और मुहब्बत के लायक़ तो सिर्फ़ एक ही ज़ात है, और वह अल्लाह जल्ल जलालुहू की ज़ात है, दिल में बिठाने के लायक़, कि जिसकी मुहब्बत दिल में घुस जाये वह तो एक ही ज़ात है, इसलिये कि अल्लाह तआला ने इन्सान के जिस्म में जो दिल बनाया है वह सिर्फ़ अपने लिये ही बनाया है, यह उन्हीं की तजल्लीगाह है, और उन्हीं के लिये बना है। अब उस दिल में किसी और को इस तरह बिठाना कि वह दिल पर क़ब्ज़ा जमा ले, यह किसी मोमिन के लिये मुनासिब नहीं, क्योंकि दोस्ती के लायक़ तो एक ही ज़ात है।

हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ि., एक सच्चे दोस्त

अगर इस कायनात में कोई शख़्स किसी का सच्चा दोस्त हो सकता था तो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के लिये हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अन्हु से बढ़ कर और कौन हो सकता था। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के साथ दोस्ती का ताल्लुक़ जिस तरह हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अन्हु ने निभाया उसकी मिसाल दुनिया में नहीं मिल सकती, कोई दूसरा शख़्स यह दावा ही नहीं कर सकता कि मैं उन जैसी दोस्ती कर सकता हूं। हर हर मर्हले पर आपको आज़माया गया मगर आप खरे निकले, पहले ही दिन से, जब आप हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर आमन्ना व सद्दक़्ना कह कर ईमान लाये, सारी उम्र इस तस्दीक़ और ईमान में ज़र्रा बराबर कभी फ़र्क़ नहीं आया।

ग़ारे सौर का वाक़िआ

ग़ारे सौर में आप नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के साथ थे, जिसको क़ुरआने करीम में इस तरह बयान फ़रमाया:

"اِذْهُمَا فِى الْغَارِ اِذْيَقُوْلُ لِصَاحِبِهٖ لَا تَحْزَنْ اِنَّ اللّٰهَ مَعَنَا

यानी वे दोनों ग़ार में थे, तो वह अपने साथी से फ़रमा रहे थे कि आप ग़म न करें, बेशक अल्लाह हमारे साथ हैं। जब ग़ार के अन्दर दाख़िल होने लगे तो हज़रत सिद्दीक़ अकबर रज़ियल्लाहु अन्हु पहले दाख़िल हुए ताकि ग़ार को साफ़ फ़रमायें और ग़ार के अन्दर सांप बिच्छू और ज़हरीले जानवरों के जो बिल हैं उनको बन्द फ़रमायें। चुनांचे आपने कपड़े काट कर उन सुराख़ों को बन्द फ़रमाया और जब कपड़े ख़त्म हो गये और सुराख़ बाक़ी रह गये तो आपने पांव की ऐड़ी से सुराख़ों को बन्द फ़रमाया।

हिजरत का एक वाक़िआ

हदीस शरीफ़ में आता है कि जब हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हिजरत के सफ़र में थे तो हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने आपके मुबारक चेहरे पर भूख के आसार देखे, आप कहीं से दूध ले आये और आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में लाकर पेश किया, हालांकि उस वक़्त आप ख़ुद भी भूख से थे। रिवायतों में आता है कि जब हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने दूध पी लिया तो हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने बाद में उसको बयान करते हुए फ़रमाया कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस तरह दूध पिया कि मैं सैराब हो गया। यानी दूध तो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने पिया लेकिन सैराब मैं हो गया। इसलिये दोस्ती और ईसार व कुरबानी का जो मक़ाम हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने पेश किया वह दुनिया में कोई दूसरा शख़्स पेश नहीं कर सकता।

दोस्ती अल्लाह के साथ ख़ास है

लेकिन इसके बावजूद सरकारे दो आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम फ़रमाते हैं कि:

"لوكنت متخذًا خليلًا لاتخذت ابابكرًا خليلًا" (بخاری شریف)

यानी अगर मैं इस दुनिया में किसी को सच्चा दोस्त बनाता तो

"अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु" को बनाता। मतलब यह है कि उनको भी दोस्त बनाया नहीं, इसलिये कि इस दुनिया में हक़ीक़ी मायने का दोस्त बनने के लायक़ कोई नहीं है। यह दोस्ती तो सिर्फ़ अल्लाह जल्ल शानुहू के साथ मख़्सूस है, क्योंकि ऐसी दोस्ती जो इन्सान के दिल पर क़ब्ज़ा जमा ले कि जो वह कहे वह करे और फिर इन्सान का दिल उसके ताबे हो जाये, यह दोस्ती अल्लाह के सिवा किसी और के साथ मुनासिब नहीं।

दोस्ती, अल्लाह की दोस्ती के ताबे होनी चाहिये

लेकिन दुनिया के अन्दर जो दोस्ती होगी वह अल्लाह की मुहब्बत और दोस्ती के ताबे होगी, चुनांचे दोस्त के कहने की वजह से गुनाह नहीं किया जायेगा। दोस्ती की मद में मासियत और ना फ़रमानी नहीं होगी। इसलिये पहली बात तो यह है कि इस दुनिया में तमाम दोस्तियां अल्लाह तआला की मुहब्बत और दोस्ती के ताबे होनी चाहियें।

मुख़्लिस दोस्त नहीं मिलते

दूसरी बात यह है कि इस दुनिया में ऐसा दोस्त मिलता ही कहां है जिसकी दोस्ती अल्लाह की दोस्ती के ताबे हो, तलाश करने और ढूंढने के बावजूद भी ऐसा दोस्त नहीं मिलता, जिसको सही मायने में दोस्त कह सकें और जिसकी दोस्ती अल्लाह की दोस्ती के ताबे हो, और जो कड़ी आज़ामइश के वक़्त पक्का निकले। ऐसा दोस्त बड़ी मुश्किल से मिलता है, क़िस्मत वाले को ही ऐसा दोस्त मिलता है। मेरे वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि के सामने जब मेरे दूसरे बड़े भाई साहिबान अपने दोस्तों का ज़िक्र करते तो वालिद साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि उनसे फ़रमाते कि तुम्हारे दुनिया में बहुत दोस्त हैं, साठ साल की उम्र हो गयी हमें तो कोई दोस्त नहीं मिला, सारी उम्र में सिर्फ़ डेढ़ दोस्त मिला, एक पूरा एक आधा, मगर तुम्हें बहुत दोस्त मिल जाते हैं।

इसलिये दोस्ती के मेयार पर पूरा उतरने वाला, जो कठिन आजमाइश में भी पक्का और खरा साबित हो, ऐसा दोस्त बहुत कम मिलता है।

बहर हाल! अगर किसी को अल्लाह तआला के ताबे बनाकर भी दोस्त बनाओ तो उस दोस्ती के अन्दर भी इस बात का एहतिमाम करो कि वह दोस्ती हदों से आगे न बढ़े। बस दोस्ती एक हद के अन्दर रहे, यह न हो कि जब दोस्ती हो गयी तो सुबह से लेकर शाम तक हर वक़्त उसी के साथ उठना बैठना है, और उसी के साथ खाना पीना है, और अब अपने राज़ भी उस पर ज़ाहिर किये जा रहे हैं, अपनी हर बात उस से कही जा रही है, अगर कल को दोस्ती ख़त्म हो गयी तो चूंकि तुमने अपने सारे राज़ उस पर ज़ाहिर कर दिये हैं, अब वह तुम्हारे राज़ हर जगह उछालेगा और तुम्हारे लिये नुक़सान देह साबित होगा। इसलिये दोस्ती एतिदाल के साथ होनी चाहिये, यह न हो कि आदमी हदों से आगे बढ़ जाए।

दुश्मनी में दर्मियानी रास्ता

इसी तरह अगर किसी के साथ दुश्मनी है और किसी से ताल्लुक़ात अच्छे नहीं हैं तो यह न हो कि उसके साथ ताल्लुक़ात अच्छे न होने की वजह से उसके अन्दर हर वक़्त कीड़े निकाले जा रहे हैं, उसके हर काम में ऐब तलाश किये जा रहे हैं। अरे भाई! अगर कोई आदमी बुरा होगा तो अल्लाह तआला ने उसके अन्दर अच्छाई भी रखी होगी। ऐसा न हो कि दुश्मनी की वजह से तुम उसकी अच्छाईयों को भी नज़र अन्दाज़ करते चले जाओ। क़ुरआने करीम में अल्लाह तआला ने इर्शाद फ़रमाया:

"لَا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَاٰنُ قَوْمٍ عَلٰٓى اَلَّا تَعْدِلُوْا" (سورة المائدة:٨)

यानी किसी क़ौम के साथ अदावत और दुश्मनी तुम्हें इस बात पर आमादा न करे कि तुम उसके साथ इन्साफ़ न करो, बेशक उसके साथ तुम्हारी दुश्मनी है लेकिन उस दुश्मनी का यह मतलब नहीं है कि अब उसकी अच्छाई का भी एतिराफ़ न किया जाये, बल्कि अगर

वह कोई अच्छा काम करे तो उसकी अच्छाई का एतिराफ़ करना चाहिये। लेकिन चूंकि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का यह इर्शाद आ़म तौर पर हमारे पेशे नज़र नहीं रहता इसलिये मुहब्बतों में भी हदों से बढ़ जाते हैं और बुग़्ज़ व अ़दावत में भी हदों से निकल जाते हैं।

हज्जाज बिन यूसुफ़ की ग़ीबत

आज हज्जाज बिन यूसुफ़ को कौन मुसलमान नहीं जानता, जिसने बेशुमार ज़ुल्म किये, कितने उलमा को शहीद किया, कितने हाफ़िज़ों को क़त्ल किया, यहां तक कि उसने काबा शरीफ़ पर हमला कर दिया। ये सारे बुरे काम किये, और जो मुसलमान भी उसके इन बुरे कामों को पढ़ता है तो उसके दिल में उसकी तरफ़ से कराहियत पैदा होती है, लेकिन एक बार एक शख़्स ने हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उम्र रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा के सामने हज्जाज बिन यूसुफ़ की बुराई शुरू कर दी, और उस बुराई के अन्दर उसकी ग़ीबत की, तो हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उम्र रज़ियल्लाहु अ़न्हुमा ने फ़ौरन टोका और फ़रमाया कि यह मत समझना कि अगर हज्जाज बिन यूसुफ़ ज़ालिम है तो अब उसकी ग़ीबत हलाल हो गयी, या उस पर बोहतान बांधना हलाल हो गया, याद रखो, जब अल्लाह तआ़ला क़ियामत के दिन हज्जाज बिन यूसुफ़ से उसके नाहक़ क़त्ल और ज़ुल्म और ख़ून का बदला लेंगे तो तुम जो उसकी ग़ीबत कर रहे हो या बोहतान बांध रहे हो तो इसका बदला अल्लाह तआ़ला तुम से लेंगे। यह नहीं कि जो शख़्स बदनाम हो गया तो उसकी बदनामी के नतीजे में उस पर जो चाहो इल्ज़ाम लगाते चले जाओ। इसलिये अ़दावत और दुश्मनी भी एतिदाल के साथ करो और मुहब्बत भी एतिदाल के साथ करो।

हमारे मुल्क की सियासी फ़िज़ा का हाल

आजकल हमारे यहां जो सियासी फ़िज़ा है, इस सियासी फ़िज़ा का हाल यह है कि अगर किसी के साथ ताल्लुक़ हो गया और उसके

साथ सियासी जोड़ हो गया तो उसको इस तरह बांस पर चढ़ाते हैं कि अब उसके अन्दर कोई ऐब नज़र नहीं आता, और अगर दूसरा शख़्स कोई ऐब बयान करे तो उसका सुनना गवारा नहीं होता। उसके बारे में यह राय कायम कर ली जाती है कि यह गुनाह और गलती से पाक है, और जब उस से सियासी दुश्मनी हो जाती है तो अब उसके अन्दर कोई अच्छाई ही नज़र नहीं आती, दोनों जगहों पर हदों से आगे निकला जा रहा है, इस तरीक़े से हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने मना फ़रमाया है, जैसा कि मैं बार बार अर्ज़ करता रहा हूं कि सिर्फ़ नमाज़ रोज़े का नाम दीन नहीं है बल्कि यह भी दीन का हिस्सा है कि मुहब्बत करो तो एतिदाल के साथ और बुग्ज़ करो तो एतिदाल के साथ रखो। जो अल्लाह के बन्दे हैं वे इन बातों को समझते हैं। ये हाकिम लोग, ये सियासी लीडर और रहनुमा जो हैं, इनके साथ ताल्लुक़ भी बा इज़्ज़त फ़ासले के साथ हो, यह न हो कि जब उनके साथ ताल्लुक़ हो गया तो आदमी हद से निकल रहा है।

क़ाज़ी बक्कार बिन कुतैबा का सबक़ लेने वाला वाक़िआ

एक क़ाज़ी गुज़रे हैं क़ाज़ी बक्कार बिन कुतैबा रह्मतुल्लाहि अलैहि, यह बड़े दर्जे के मुहद्दिसीन में से हैं, दीनी मदरसों में हदीस की किताब "तहावी शरीफ़" पढ़ाई जाती है, उसके मुसन्निफ़ इमाम तहावी रह्मतुल्लाहि अलैहि हैं, यह उनके उस्ताद हैं, उनके ज़माने में जो बादशाह था वह उन पर मेहरबान हो गया और ऐसा मेहरबान हो गया कि हर मामले में उनसे सलाह व मश्विरा हो रहा है, हर मामले में उनको बुलाया जा रहा है, हर दावत में उनको बुलाया जा रहा है। यहां तक कि उनको पूरे मुल्क का क़ाज़ी बना दिया, और अब सारे फ़ैसले उनके पास आ रहे हैं, दिन रात बादशाह के साथ उठना बैठना है, जो सिफ़ारिश करते हैं बादशाह उनकी सिफ़ारिश को क़बूल कर लेता है। एक ज़माने तक यह सिलसिला चलता रहा, यह अपना

फ़ैसले करने का काम भी करते रहे और जो मुनासिब मश्विरा होता वह बादशाह को दे दिया करते थे।

चूंकि वह तो आलिम और काज़ी थे, बादशाह के गुलाम तो नहीं थे। एक बार बादशाह ने गलत काम कर दिया, काज़ी साहिब ने फ़तवा दे दिया कि बादशाह का यह काम ग़लत है और दुरुस्त नहीं है, और यह काम शरीअत के ख़िलाफ़ है। अब बादशाह सलामत नाराज़ हो गये कि हम इतनी मुद्दत तक उनको खिलाते पिलाते रहे, उनको हदिये तोहफ़े देते रहे, और उनकी सिफ़ारिश क़बूल करते रहे और अब उन्होंने हमारे ही ख़िलाफ़ फ़तवा दे दिया। चुनांचे फ़ौरन उनको क़ाज़ी के ओहदे से हटा दिया।

ये दुनियावी बादशाह बड़े तंग ज़र्फ़ होते हैं, देखने में बड़े सख़ी नज़र आते हैं लेकिन तंग ज़र्फ़ होते हैं। तो सिर्फ़ यह नहीं किया कि उनको क़ाज़ी के ओहदे से माज़ूल कर दिया बल्कि उनके पास अपना क़ासिद भेजा कि जाकर उनसे कहो कि हमने आज तक जितने तुम्हें हदिये तोहफ़े दिये हैं वे सब वापस करो। इसलिये कि अब तुमने हमारी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ काम शुरू कर दिया है।

अब आप अन्दाज़ा करें कि कई सालों के वे हदिये, कभी कुछ दिया होगा, कभी कुछ भेजा होगा, लेकिन बादशाह का वह आदमी आया तो आप उस आदमी को अपने घर के अन्दर एक कमरे में ले गये और एक अलमारी का ताला खोला, तो वह पूरी अलमारी थेलियों से भरी हुई थी, आपने उस क़ासिद से कहा कि तुम्हारे बादशाह के पास से जो तोहफ़े की थैलियां आती थीं वे सब इस अलमारी के अन्दर रखी हुई हैं। और उन पर मुहर भी लगी थी, वह मुहर भी अभी तक नहीं टूटी, ये सारी थैलियां उठा कर ले जाओ। इसलिये कि जिस दिन बादशाह से ताल्लुक़ क़ायम हुआ अल्हम्दु लिल्लाह उसी दिन हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का यह इर्शाद ज़ेहन में था कि:

"احبب حبيبك هونا ماعسیٰ ان يكون بغيضك يوما ما"

यानी अपने दोस्त से धीरे धीरे मुहब्बत करो, यानी एतिदाल से करो, क्योंकि हो सकता है कि तुम्हारा वह दोस्त किसी दिन तुम्हारा दुश्मन हो जाए।

और मुझे अन्दाज़ा था कि शायद कोई वक़्त ऐसा आयेगा कि मुझे ये सारे तोहफ़े वापस करने पड़ेंगे, अल्हम्दु लिल्लाह बादशाह के दिये हुए हदिये और तोहफ़ों में से एक ज़र्रा भी आज तक अपने इस्तेमाल में नहीं लाया। यह है हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के इर्शाद पर अमल का सही नमूना। यह नहीं कि जब दोस्ती हो गयी तो अब हर तरह का फ़ायदा उठाया जा रहा है, और जब दुश्मनी हुई तो अब परेशानी और शर्मिन्दगी हो रही है। अल्लाह तआ़ला हमें इस से महफ़ूज़ रखे, आमीन।

यह दुआ़ करते रहो

अव्वल तो सही मायने में सिर्फ़ अल्लाह जल्ल शानुहू से होनी चाहिये, इसी लिये हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह दुआ़ तल्क़ीन फ़रमाई, जो हर मुसलमान को हमेशा मांगनी चाहिये।

"اللّٰهم اجعل حبّك احبّ الاشياء الیّ" (کنز العمال)

ऐ अल्लाह अपनी मुहब्बत तमाम मुहब्बतों पर ग़ालिब फ़रमा। अब इन्सान चूंकि कमज़ोर है और उसके साथ इन्सानी तक़ाज़े लगे हुए हैं, इसलिये इन्सान को दूसरों से भी मुहब्बत होती है। जैसे बीवी से मुहब्बत, औलाद से मुहब्बत, दोस्तों से मुहब्बत, मां बाप से मुहब्बत, अज़ीज़ों और रिश्तेदारों से मुहब्बत, ये सारी मुहब्बतें इन्सान के साथ लगी हुई हैं। ये मुहब्बतें इन्सान के साथ रहेंगी और कभी ख़त्म नहीं होंगी, लेकिन असल बात यह है कि आदमी यह दुआ़ करे कि या अल्लाह! ये सारी मुहब्बतें आपकी मुहब्बत के ताबे हो जायें और आपकी मुहब्बत इन तमाम मुहब्बतों पर ग़ालिब आ जाये।

अगर मुहब्बत हद से बढ़ जाये तो यह दुआ़ करें

अगर किसी से मुहब्बत हो और यह महसूस हो कि यह मुहब्बत

हद से बढ़ रही है तो फ़ौरन अल्लाह की तरफ़ रुजू करो कि या अल्लाह! यह मुहब्बत आपने मेरे दिल में डाली है, लेकिन यह मुहब्बत बढ़ती जा रही है, ऐ अल्लाह! कहीं ऐसा न हो कि मैं किसी फ़ितने में मुब्तला हो जाऊं। ऐ अल्लाह! अपनी रहमत से मुझे फ़ितने में मुब्तला होने से महफ़ूज़ रखिये। और फिर अपने इख़्तियारी तर्ज़े अमल में भी हमेशा एहतियात से काम लो। जो आजका दोस्त है वह कल का दुश्मन भी हो सकता है, कल तक तो हर वक़्त साथ उठना बैठना था, साथ खाना पीना था और आज यह नौबत आ गयी कि सूरत देखने के रवादार नहीं। यह नौबत नहीं आनी चाहिये, और अगर आये तो उसकी तरफ़ से आये, तुम्हारी तरफ़ से न आये।

बहर हाल! दोस्ती के बारे में यह हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तल्क़ीन है, और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की एक एक तल्क़ीन ऐसी है कि अगर हम उनको पल्ले बांध लें तो हमारी दुनिया व आख़िरत संवर जाए।

दोस्ती के नतीजे में गुनाह

कभी कभी इन दोस्तियों के नतीजे में गुनाह के अन्दर मुब्तला हो जाते हैं, और यह सोचते हैं कि चूंकि यह दोस्त है अगर इसकी बात न मानी तो इसका दिल टूटेगा, लेकिन अगर उसके दिल टूटने के नतीजे में शरीअ़त टूट जाये तो उसकी कोई परवाह नहीं, हालांकि शरीअ़त को टूटने से बचाना दिल को टूटने से बचाने से मुक़द्दम है, बशर्ते कि शरीअ़त में गुन्जाइश न हो। लेकिन अगर शरीअ़त के अन्दर गुन्जाइश हो तो उस सूरत में बेशक यह हुक्म है कि मुसलमान का दिल रखना चाहिये और जहां तक मुम्किन हो दिल न तोड़ना चाहिये, क्योंकि यह भी इबादत है।

"गुलू" से बचें

हज़रत हकीमुल उम्मत मौलाना अशरफ़ अ़ली साहिब थानवी रहमतुल्लाहि अ़लैहि इस हदीस को नक़ल करने के बाद इर्शाद

फ़रमाते हैं कि इस हदीस में मामलात के अन्दर "ग़ुलू" करने की मनाही है, किसी भी मामले में ग़ुलू न हो, न ताल्लुक़ात में और न ही मामलात में। और ग़ुलू के मायने हैं "हद से बढ़ना" किसी भी मामले में इनसान हद से न बढ़े, बल्कि मुनासिब हद के अन्दर रहे। अल्लाह तआ़ला मुझे और आप सब को इस हदीस पर अ़मल करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, आमीन।

واخر دعوانا ان الحمد لله رب العالمين

ताल्लुक़ात को निभाएं

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَا وَسَنَدَنَا وَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

فَاَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنَ الشَّيْطٰنِ الرَّجِيْمِ، بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ۔

عن عائشة رضي الله عنها قالت، جاء ت عجوز الى النبى صلى الله عليه وسلم فقال: كيف انتم، كيف حالكم، كيف كنتم بعدنا؟ قالت بخير بابى انت وامى يا رسول الله! فلما خرجت قلت يا رسول الله! تقبل هذه العجوز هذا الاقبال؟ فقال يا عائشة! انها كانت تأتينا زمان خديجة وان حسن العهد من الايمان۔ (بيهقى، شعب الايمان)

हदीस का ख़ुलासा

हज़रत आयशा सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु अन्हा फ़रमाती हैं कि एक बार हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में एक उम्र रसीदा (बड़ी अम्र की) ख़ातून आईं, आं हज़रत सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उनका बड़ा इकराम और इस्तिक़बाल (स्वागत) किया, और उनको इज़्ज़त के साथ बिठाया, उनकी बड़ी ख़ातिर तवाज़ो की और उनकी ख़ैरियत दरियाफ़्त की, जब वह ख़ातून चली गईं तो हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा ने पूछा: या रसूलल्लाह! सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम, आपने उन ख़ातून के लिये बहुत इकराम और एहतिमाम फ़रमाया, यह कौन थीं? जवाब में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया:

"انها كانت تأتينا زمان خديجة"

यह ख़ातून उस वक़्त हमारे घर आया करती थीं जब हज़रत ख़दीजा रज़ियल्लाहु अन्हा ज़िन्दा थीं। हज़रत ख़दीजा रज़ियल्लाहु अन्हा से उनका ताल्लुक़ था, गोया कि यह उनकी सहेली थीं, इस लिये मैंने उनका इकराम किया, फिर फ़रमायाः

ان حسن العهد من الايمان

यानी किसी के साथ अच्छी तरह निबाह करना भी ईमान का एक हिस्सा है।

ताल्लुक़ात निभाने की कोशिश करे

यानी मोमिन का काम यह है कि जब उसका किसी के साथ ताल्लुक़ क़ायम हो तो अब जहां तक मुम्किन हो अपनी तरफ़ से उस ताल्लुक़ को न तोड़े, बल्कि उसको निभाता रहे, चाहे तबीयत पर निभाने की वजह से बोझ भी हो, लेकिन फिर भी उसको निभाता रहे और उस ताल्लुक़ को बद मज़गी पर ख़त्म न करे, ज़्यादा से ज़्यादा यह करे कि अगर किसी के साथ तुम्हारी मुनासबत नहीं है तो उसके साथ उठना बैठना ज़्यादा न करे, लेकिन ऐसा ताल्लुक़ ख़त्म करना कि अब बोल चाल भी बन्द और अलै सलैक भी ख़त्म, मिलना जुलना भी ख़त्म, एक मोमिन के लिये मुनासिब नहीं।

अपने गुज़रे हुए अज़ीज़ों के मुताल्लिक़ीन से निबाह

इस हदीस में हमारे लिये दो सबक़ हैं, पहला सबक़ यह है कि न सिर्फ़ यह कि अपने ताल्लुक़ वालों से निबाह करना चाहिये बल्कि अपने वे अज़ीज़ पहले गुज़र चुके हैं, जैसे मां बाप हैं, या बीवी है, तो उनके ताल्लुक़ वालों से भी निबाह करना चाहिये। हदीस शरीफ़ में आता है कि एक साहिब हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए और आकर अर्ज़ कियाः हुज़ूर! मेरे वालिद साहिब का इन्तिक़ाल हो चुका है, और मेरी तबीयत पर इस बात का असर है कि मैं ज़िन्दगी में उनकी ख़िदमत नहीं कर सका, और उनकी क़द्र न कर सका, और जैसे हुक़ूक़ अदा करने चाहियें थे इस

तरह हुकूक़ अदा न कर सका। (जो लोग ज़िन्दगी में मां बाप की ख़िदतम नहीं करते, अकसर उनके दिलों में इस क़िस्म की हसरत पैदा होती है, इसी तरह उन साहिब के दिल में भी उसकी बहुत ज़्यादा हसरत थी, इसलिये अर्ज़ किया कि मेरे दिल में इस की बहुत हसरत है और असर है) अब मैं क्या करूं?

जवाब में आं हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि अब तुम यह करो कि तुम्हारे वालिद के जो दोस्त अहबाब हैं और जो उनके ताल्लुक़ वाले और उनके रिश्तेदार हैं, तुम उनके साथ अच्छा सुलूक करो, उसके नतीजे में तुम्हारे वालिद की रूह ख़ुश होगी, और तुमने अपने वालिद के इकराम और अच्छा सुलूक करने में जो कोताही की है, इन्शा अल्लाह, अल्लाह तआ़ला किसी न किसी दर्जे में उसकी तलाफ़ी फ़रमा देंगे। इसलिये मां बाप और अहले ताल्लुक़ात के इन्तिक़ाल के बाद उनके ताल्लुक़ वालों से निबाह करना और उनके साथ अच्छा सुलूक करना और उनसे मिलते जुलते रहना यह भी ईमान का एक हिस्सा है। यह नहीं कि जो आदमी मर गया तो वह अपने ताल्लुक़ वालों को भी साथ ले गया, बल्कि उसके ताल्लुक़ वाले तो दुनिया में मौजूद हैं, तुम उनके साथ अच्छा सुलूक करो। देखिये! हज़रत ख़दीजा रज़ियल्लाहु अ़न्हा का इन्तिक़ाल हुए बहुत वक़्त गुज़र चुका था लेकिन इसके बावजूद हुज़ूरे अक़्दस सल्ल. ने उस औरत का इकराम फ़रमाया। इसके अ़लावा बाज़ हदीसों में आता है कि आप हज़रत ख़दीजा रज़ियल्लाहु अ़न्हा की सहेलियों के पास हदिये तोहफ़े भेजा करते थे। सिर्फ़ इस वजह से कि उनका ताल्लुक़ हज़रत ख़दीजा रज़ियल्लाहु अ़न्हु से था और ये उनकी सहेलियां थीं।

ताल्लुक़ का निभाना सुन्नत है

इस हदीस से दूसरा सबक़ वह मिलता है जो हदीस के अल्फ़ाज़ "हुस्नुल अ़हद" से मालूम हो रहा है "हुस्नुल अ़हद" के मायने हैं अच्छी तरह निबाह करना, यानी एक बार किसी से ताल्लुक़ क़ायम हो

गया तो जहां तक मुम्किन हो उस ताल्लुक़ को निभाओ, और जब तक हो सके अपनी तरफ़ से उसको तोड़ने से परहेज़ करो। फ़र्ज़ करें अगर उसकी तरफ़ से तुम्हें तक्लीफ़ें भी पहुंच रही हैं तो यह समझो कि दूसरे के साथ ताल्लुक़ को निभाना हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत है, फिर सुन्नत और इबादत समझ कर उस ताल्लुक़ को निभाएं।

ख़ुद मेरा एक वाक़िआ

मेरे वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह्मतुल्लाहि अ़लैहि के ताल्लुक़ात वालों में एक साहिब थे, वैसे तो बड़े नेक आदमी थे, लेकिन बाज़ लोगों की एतिराज़ करने की तबीयत होती है, वह जब भी किसी से मिलेंगे तो उस पर कोई न कोई एतिराज़ कर देंगे और कोई ताना मार देंगे, कोई शिकायत कर देंगे। बाज़ लोगों का ऐसा मिज़ाज होता है। उन साहिब का भी ऐसा ही मिज़ाज था। चुनांचे लोग इस मामले में उनसे परेशान रहते थे, एक बार उन्होंने अपनी इस आ़दत के मुताबिक़ ख़ुद मेरे साथ ऐसी बात की कि वह मेरी बर्दाश्त से बाहर हो गयी, वह बात मेरे लिये ना क़ाबिले बर्दाश्त थी, उस वक़्त तो मैं उस बात को पी गया। मेरे दिमाग़ में उस वक़्त यह बात आई कि यह साहिब कुछ अपने मर्तबे और कुछ अपने माल व दौलत के घमण्ड में दूसरों को हक़ीर समझते हैं और इसी वजह से इन्होंने मुझ से ऐसी बात की है। चुनांचे घर वापस आकर मैंने एक तेज़ ख़त लिखा और उस ख़त में यह बात भी लिख दी कि आपके मिज़ाज में यह बात है, जिसके नतीजे में लोगों को आप से शिकायतें रहती हैं, और आज आपने मेरे साथ जो रवैया इख़्तियार किया, यह मेरे लिये ना क़ाबिले बर्दाश्त है, इसलिये अब आइन्दा मैं आप से ताल्लुक़ नहीं रखना चाहता, यह ख़त लिखा।

अपनी तरफ़ से ताल्लुक़ मत तोड़ो

लेकिन चूंकि अल्हम्दु लिल्लाह मेरी आ़दत यह थी कि जब कभी

कोई ऐसी बात सामने आती तो हज़रत वालिद साहिब रह्मतुल्लाहि अलैहि की ख़िदमत में ज़रूर पेश कर दिया करता था, चुनांचे वह ख़त लिख कर हज़रत वालिद साहिब रह्मतुल्लाहि अलैहि की ख़िदमत में पेश किया और उनको सारा किस्सा भी सुनाया, कि यह बात हुई और उन्होंने यह रवैया इख़्तियार किया, और यह बात मेरी बर्दाश्त से बाहर हो गयी है, चूंकि उस वक़्त मेरी तबीयत में हैजान और इश्तिआल (उत्तेजना) था इसलिये वालिद साहिब ने उस वक़्त तो वह ख़त लेकर रख लिया और फ़रमाया कि अच्छा फिर किसी वक़्त बात करेंगे। यह कह कर टला दिया? जब पूरा एक दिन गुज़र गया तो हज़रत वालिद साहिब ने मुझे बुलाया और फ़रमाया कि तुम्हारा ख़त रखा हुआ है, और मैंने पढ़ लिया है, इस ख़त से तुम्हारा क्या मक़सद है? मैंने कहा कि मेरा मक़सद यह है कि अब यह ख़त उनको भेज कर ताल्लुक़ात ख़त्म कर दें।

उस वक़्त हज़रत वालिद साहिब ने एक जुम्ला इर्शाद फ़रमाया कि देखो किसी से ताल्लुक़ तोड़ना ऐसा काम है कि जब चाहो कर लो, इसमें किसी इन्तिज़ार की या वक़्त की ज़रूरत नहीं, इसमें कोई लम्बा चौड़ा काम नहीं करना पड़ता, लेकिन ताल्लुक़ जोड़ना ऐसा काम है जो हर वक़्त नहीं किया जा सकता, इसलिये तुम्हें इसकी जल्दी क्या है, कि यह ख़त अभी भेजना है, अभी कुछ दिन और इन्तिज़ार कर लो और देख लो, लेकिन अगर उनसे मिलने का दिल नहीं चाहता तो उनके पास मत जाओ, लेकिन इस तरह ख़त लिख कर बा क़ायदा ताल्लुक़ तोड़ना तो यह अपनी तरफ़ से ताल्लुक़ ख़त्म करने की बात हुई।

ताल्लुक़ तोड़ना आसान है, जोड़ना मुश्किल है

फिर फ़रमाया कि ताल्लुक़ ऐसी चीज़ है कि एक बार क़ायम हो जाये तो जहां तक मुम्किन हो उस ताल्लुक़ को निभाओ, ताल्लुक़ को तोड़ना आसान है जोड़ना मुश्किल है। अगर तुम्हारी तबीयत उनके साथ नहीं मिलती तो यह ज़रूरी नहीं कि तुम सुबह व शाम उनके

पास जाया करो, बल्कि तबीयत नहीं मिलती तो मत जाओ, लेकिन जब ताल्लुक़ क़ायम है तो अपनी तरफ़ से तोड़ने की कोशिश न करो। फिर एक दूसरा ख़त निकाल कर दिखाया जो ख़ुद लिखा था और फ़रमाया कि अब मैंने यह दूसरा ख़त लिखा है, इस ख़त को पढ़ो और अपने ख़त को पढ़ो, तुम्हारा ख़त ताल्लुक़ात को ख़त्म करने वाला है, और मेरा ख़त पढ़ो, मेरे ख़त के अन्दर भी शिकायत और नाराज़गी का इज़हार हो गया, और यह बात भी इसमें आ गयी कि उनका यह तरीक़ा और रवैया तुम्हें नागवार हुआ, मामले की पूरी बात आ गयी, लेकिन इस ख़त ने ताल्लुक़ात को ख़त्म नहीं किया। चुनांचे वह ख़त लेकर मैंने पढ़ा तो मेरे ख़त में और हज़रत के ख़त में ज़मीन व आसमान का फ़र्क़ था, हमने अपने जज़्बात और ग़ुस्से में आकर वह ख़त लिख दिया था, और उन्होंने नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत के मुताबिक़ बात निभाने के लिये इस तरह ख़त लिखा कि शिकायत अपनी जगह हो गयी और उनके जिस तरीक़े और रवैए से नागवारी हुई थी, उसका भी इज़हार हो गया, कि आपकी यह बात पसन्द नहीं आई, लेकिन आइन्दा के लिये ताल्लुक़ तोड़ने की जो बात थी वह उसमें से काट दी।

फिर फ़रमायाः देखो यह पुराने ताल्लुक़ात हैं और उन साहिब से ताल्लुक़ मेरा अपना ज़ाती ताल्लुक़ नहीं है बल्कि हमारे वालिद साहिब के वक़्त से यह ताल्लुक़ चला आ रहा है, उनके वालिद साहिब से हमारे वालिद साहिब का ताल्लुक़ था, अब इतने पुराने ताल्लुक़ को एक लम्हे में काट कर ख़त्म कर देना कोई अच्छी बात नहीं।

इमारत ढाना आसान है

बहर हाल, हज़रत वालिद साहिब ने यह जुम्ला जो इर्शाद फ़रमाया था कि ताल्लुक़ात को तोड़ना आसान है जोड़ना मुश्किल है, यह ऐसा जुम्ला फ़रमा दिया कि आज यह जुम्ला दिल पर नक़्श है। एक इमारत खड़ी हुई है, उस इमारत को कुल्हाड़े से ढा दो, वह

इमारत दो दिन के अन्दर ख़त्म हो जायेगी, लेकिन जब तामीर करने लगोगे तो उसमें कई साल ख़र्च हो जायेंगे। इसलिये कोई भी ताल्लुक़ हो उसको तोड़ना आसान है जोड़ना मुश्किल है। इसलिये ताल्लुक़ तोड़ने के लिये पहले हज़ार बार सोचो, इसलिये कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

"ان حسن العهد من الايمان"

यानी अच्छी तरह निभाव करना यह ईमान का तक़ाज़ा है।

अगर ताल्लुक़ात से तक्लीफ़ पहुंचे तो?

मान लीजिए कि अगर आपको ताल्लुक़ की वजह से दूसरे से तक्लीफ़ भी पहुंच रही है तो यह सोचो कि तुम्हें जितनी तक्लीफ़ें पहुंचेंगी, तुम्हारे दर्जे में उतना ही इज़ाफ़ा होगा, तुम्हारे सवाब में इज़ाफ़ा होगा। इसलिये कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया है कि अगर किसी मोमिन को एक कांटा भी चुभता है तो वह कांटा उसके सवाब और उसके दर्जों में इज़ाफ़ा करता है। इसलिये अगर किसी से तुम्हें तक्लीफ़ पहुंच रही है और तुम उस पर सब्र कर रहे हो तो उस सब्र का सवाब तुम्हें मिल रहा है। और अगर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इस इर्शादः

"ان حسن العهد من الايمان"

पर अ़मल करने की नियत है तो उस सूरत में इत्तिबा–ए–सुन्नत का और ज़्यादा सवाब तुम्हें मिल रहा है।

तक्लीफ़ों पर सब्र करने का बदला

इसलिये यहां जो तक्लीफ़ें तुम्हें पहुंच रही हैं, वे इस दुनिया में रह जायेंगी, ये तो थोड़ी देर और थोड़े वक़्त की हैं, लेकिन उसका जो अज्र व सवाब तुम अपनी क़ब्र में समेट कर ले जाओगे और जो अज्र व सवाब अल्लाह तुम्हें आख़िरत में अ़ता फ़रमायेंगे वह अज्र व सवाब इन्शा अल्लाह उन तक्लीफ़ों के मुक़ाबले में इतना ज़्यादा होगा

कि उसके सामने इन तक्लीफ़ों की कोई हक़ीक़त नहीं होगी। एक हदीस में नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमया कि जब अल्लाह तआला कियामत के दिन सब्र करने वालों को अपनी रहमतों से नवाज़ेंगे, और उनका सब्र का सिला अ़ता फ़रमायेंगे तो जो लोग दुनिया में आराम और राहत से रह रहे हैं वे तमन्ना करेंगे कि काश दुनिया में हमारी खालों को क़ैंचियों से काटा गया होता, और उस पर हम सब्र करते, और हमें भी इतना ही सवाब मिलता जितना इन लोगों को मिल रहा है। इस तरह लोग हसरत करेंगे। इसलिये जो ये तक्लीफ़ें थोड़ी बहुत पहुंच रही हैं इनको बर्दाश्त कर लो।

ताल्लुक़ को निभाने का मतलब

लेकिन निबाह करने के मायने समझ लेना चाहिये। निबाह करने के मायने यह हैं कि उसके हुकूक़ अदा करते रहो और उस से ताल्लुक़ ख़त्म न करो।

लेकिन निबाह करने के लिये दिल में मुनासबत का पैदा होना, उसके साथ दिल का लगना और तबीयत में किसी किस्म की उलझन का बाक़ी न रहना ज़रूरी नहीं। और न यह ज़रूरी है कि दिन रात उनके साथ उठना बैठना बाक़ी रहे, और उनके साथ हंसना बोलना और मिलना जुलना बाक़ी रहे। निबाह के लिये इन चीज़ों का बाक़ी रखना ज़रूरी नहीं, बल्कि ताल्लुक़ात को बाक़ी रखने के लिये शरई हुकूक़ की अदायगी काफ़ी है।

इसलिये आपको इस बात पर कोई मजबूर नहीं करता कि आपका दिल तो फ़लां के साथ नहीं लगता, लेकिन आप ज़बरदस्ती उसके साथ जाकर मुलाक़ात करें। या आपकी उनके साथ मुनासबत नहीं है, तो अब कोई इस पर मजबूर नहीं करता कि आप तबीयत के ख़िलाफ़ उनके पास जाकर बैठें। बस सिर्फ़ उनके हुकूक़ अदा करते रहें और ताल्लुक़ न तोड़ें। बस "अच्छी तरह निभाव करना ईमान का तक़ाज़ा है" के यही मायने हैं।

यह सुन्नत छोड़ने का नतीजा है

बहर हाल, हमारे आपस के ताल्लुक़ात में दिन रात लड़ाईयां और झगड़े उठते रहते हैं, वे हक़ीक़त में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की इस सुन्नत को छोड़ने और आपकी हिदायतों और तालीमात को नज़र अन्दाज़ करने का नतीजा है।

अगर एक वह हदीस जो पिछले बयान में पढ़ी थी, और एक यह हदीस जो आज पढ़ी है, हक़ीक़त यह है कि अगर हम इन दोनों हदीसों को पल्ले बांध लें और इनकी हक़ीक़त समझ लें और इन पर अ़मल कर लें तो हमारे समाज के बेशुमार झगड़े ख़त्म हो जायें, वह यह कि मुहब्बत करो तो एतिदाल से करो, और दुश्मनी करो तो एतिदाल से करो।

शरीअ़त की सारी तालीम यह है कि एतिदाल (यानी दरमियानी तरीक़े) से काम लो और कहीं भी हद से आगे न बढ़ जाओ। और यह कि जब किसी से ताल्लुक़ क़ायम हो जाये तो उस ताल्लुक़ को निभाने की कोशिश करो। अल्लाह तआ़ला अपनी रहमत से और अपने फ़ज़्ल व करम से मुझे और आप सब को इन इर्शादों पर अ़मल करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, आमीन।

واٰخر دعوانا ان الحمد لله رب العالمين

मरने वालों की बुराई न करें

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

"عن المغيرة بن شعبة رضى الله تعالىٰ عنه قال: قال رسول الله صلى الله عليه وسلم: لا تسبوا الاموات فتؤذوا الاحياء" (ترمذی شريف)

मरने वालों को बुरा मत कहो

हज़रत मुग़ीरा बिन शोबा रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमाया कि जिन लोगों का इन्तिक़ाल हो चुका है, उनको बुरा मत कहो, इसलिये कि मुर्दों को बुरा कहने से ज़िन्दा लोगों को तक्लीफ़ होगी।

एक और हदीस जो हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत की गई है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इशार्द फ़रमायाः

"اذكروا محاسن موتكم وكفوا عن مساويهم" (ابوداؤد شريف)

यानी अपने मुर्दों की अच्छाईयां ज़िक्र करो और उनकी बुराईयां ज़िक्र करने से बाज़ रहो।

ये दो हदीसें हैं, दोनों का मज़मून तक़रीबन एक जैसा है, कि जब किसी का इन्तिक़ाल हो जाये तो इन्तिक़ाल के बाद अगर उसका ज़िक्र करना है तो अच्छाई से ज़िक्र करो, बुराई से ज़िक्र मत करो,

चाहे बज़ाहिर उसके आमाल कितने भी ख़राब रहे हों, लेकिन तुम उसकी अच्छाई का ज़िक्र करो और बुराई का ज़िक्र मत करो।

मरने वालों से माफ़ कराना मुम्किन नहीं

यहां सवाल यह पैदा होता है कि यह हुक्म तो ज़िन्दों के लिये भी है कि ज़िन्दों का उनके पीछे बुराई से तज़्किरा करना जायज़ नहीं, बल्कि ज़िन्दों का तज़्किरा भी अच्छाई से करना चाहिये, अगर बुराई से ज़िक्र करेंगे तो ग़ीबत हो जायेगी और ग़ीबत हराम है, फिर इन हदीसों में ख़ास तौर पर मुर्दों के बारे में यह क्यों फ़रमाया कि मुर्दों का ज़िक्र बुराई से मत करो?

इसका जवाब यह है कि अगरचे ज़िन्दा आदमी की ग़ीबत भी हराम है लेकिन मुर्दा आदमी की ग़ीबत डबल हराम है, उसकी हुर्मत कहीं ज़्यादा है, इसकी कई वजह हैं।

एक वजह यह है कि अगर कोई शख़्स ज़िन्दा आदमी की ग़ीबत करे तो उम्मीद यह है कि जब उस से किसी वक़्त मुलाक़ात होगी तो उस से माफ़ी मांग लेगा और वह माफ़ कर देगा, इस तरह ग़ीबत करने का गुनाह ख़त्म हो जायेगा। क्योंकि ग़ीबत बन्दों के हुक़ूक़ में से है। और बन्दों के हुक़ूक़ का मामला यह है कि अगर हक़ वाला माफ़ कर दे तो माफ़ हो जाता है, लेकिन जिस शख़्स का इन्तिक़ाल हो गया, उस से माफ़ी मांगने का कोई रास्ता नहीं, वह तो अल्लाह तआला के यहां जा चुका, इस वजह से वह गुनाह माफ़ हो ही नहीं सकता, इसलिये यह गुनाह डबल हो गया।

अल्लाह के फ़ैसले पर एतिराज़

मरने वाले की ग़ीबत मना होने की दूसरी वजह यह है कि अब तो वह अल्लाह तआला के पास पहुंच चुका है, और तुम उसकी जिस बुराई का ज़िक्र कर रहे हो, हो सकता है कि अल्लाह तआला ने उसकी उस बुराई को माफ़ कर दिया हो और उसकी मग़फ़िरत कर दी हो, तो उस सूरत में अल्लाह तआला ने माफ़ कर दिया, और तुम

उसकी बुराई लिये बैठे हो, जिसका मतलब यह है कि अल्लाह तआला के फ़ैसले पर एतिराज़ हो रहा है, कि या अल्लाह! आपने तो उस बन्दे को माफ़ कर दिया, लेकिन मैं माफ़ नहीं करता, वह तो बहुत बुरा था, अस्तग़फ़िरुल्लाह, यह और बड़ा गुनाह है।

ज़िन्दा और मुर्दा में फ़र्क़

तीसरी वजह यह है कि ज़िन्दा आदमी की "ग़ीबत" में बाज़ सूरतें ऐसी होती हैं कि जो जायज़ होती हैं। जैसे एक आदमी की आदत ख़राब है, उसकी आदत ख़राब होने की वजह से अन्देशा यह है कि लोग उस से धोखे में मुब्तला हो जायेंगे, या वह किसी को तक्लीफ़ पहुंचायेगा, अब अगर उसके बारे में किसी को बता देना कि देखो उस से होशियार रहना उसकी यह आदत है, यह ग़ीबत जायज़ है, इसलिये कि उसका मक़सद दूसरे को नुक़सान से बचाना है, लेकिन जिस आदमी का इन्तिक़ाल हो गया है, वह अब किसी दूसरे को न तो तक्लीफ़ पहुंचा सकता है और न दूसरे को धोखा दे सकता है, इसलिये उसकी ग़ीबत किसी भी वक़्त हलाल नहीं हो सकती, इस वजह से ख़ास तौर पर फ़रमाया कि मरने वालों की ग़ीबत मत करो, और न बुराई से उनका तज़्किरा करो।

उसकी ग़ीबत से ज़िन्दों को तक्लीफ़

चौथी वजह ख़ुद हदीस शरीफ़ में जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने बयान फ़रमा दी, वह यह कि तुमने यह सोच कर मुर्दे की ग़ीबत की कि वह मुर्दा तो अब अल्लाह तआला के यहां जा चुका है, मेरे बुराई करने से उसको न तो तक्लीफ़ पहुंचेगी, और न ही उसको इत्तिला होगी, लेकिन तुमने यह न सोचा कि आख़िर उस मुर्दे के कुछ चाहने वाले भी तो दुनिया में होंगे, जब उनको यह पता चलेगा कि हमारे फ़लां मरने वाले क़रीबी अज़ीज़ की बुराई बयान की गयी है तो उसकी वजह से उनको तक्लीफ़ होगी।

फ़र्ज़ करें कि आपने किसी ज़िन्दा आदमी की ग़ीबत कर ली है

तो आपके लिये यह आसान है कि जाकर उसी से माफ़ी मांग लें, वह माफ़ कर देगा तो बात ख़त्म हो जायेगी, लेकिन अगर आपने किसी मुर्दा आदमी की ग़ीबत कर ली तो उस ग़ीबत से उसके जितने अज़ीज़ व करीबी लोग, दोस्त व अहबाब हैं, उन सब को तक्लीफ़ होगी, अब तुम कहां कहां जाकर उसके अज़ीज़ व अक़ारिब को तलाश करोगे, और यह तहक़ीक़ करोगे कि किस किस को तक्लीफ़ पहुंची है, और फिर किस किस से जाकर माफ़ी मांगोगे, इसलिये मुर्दे की ग़ीबत करने की बुराई बहुत ज़्यादा सख़्त है।

इसलिये ज़िन्दा आदमी की ग़ीबत तो हराम है ही, लेकिन मरने वाले की ग़ीबत उसके मुक़ाबले में ज़्यादा हराम है, और उसकी माफ़ी भी बहुत मुश्किल है। इसलिये हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मुर्दों की बुराई बयान न करो, सिर्फ़ अच्छाई बयान करो।

मुर्दे की ग़ीबत जायज़ होने की सूरत

सिर्फ़ एक सूरत में मुर्दे की बुराई बयान करना जायज़ है, वह यह है कि कोई शख़्स गुमराही की बातें किताबों में लिख कर दुनिंया से रुख़्सत हो गया, अब उसकी किताबें हर जगह फैल रही हैं, हर आदमी उसकी किताबें पढ़ रहा है, इसलिये उस शख़्स के बारे में लोगों को यह बताना कि उस शख़्स ने अ़क़ीदों के बारे में जो बातें लिखी हैं, वे ग़लत हैं और गुमराही की बातें हैं, ताकि लोग उसकी किताबें पढ़ कर गुमराही में मुब्तला न हों, बस इस हद तक उसकी बुराई बयान करने की इजाज़त है। इसमें यह भी ज़रूरी है कि इस हद तक उसके बारे में लोगों को बताया जाये जिस हद तक ज़रूरत हो, लेकिन उस शख़्स को बुरा भला कहना या उसके लिये ऐसे अल्फ़ाज़ इस्तेमाल करना जो गाली में दाख़िल हो जायें, यह अ़मल फिर भी जायज़ न होगा, इसलिये कि अगरचे वह अपनी किताबों में गुमराही की बातें लिख गया, लेकिन क्या मालूम कि मर्ते वक़्त उसको अल्लाह तआ़ला ने तौबा की तौफ़ीक़ दे दी हो, और उस तौबा की

वजह से अल्लाह तआला ने उसको माफ़ फ़रमा दिया हो, इसलिये उसके लिये बुरे अल्फ़ाज़ इस्तेमाल करना, जैसे यह कहना कि वह तो जहन्नमी था, वग़ैरह, 'अल्लाह अपनी पनाह में रखे' यह किसी तरह जायज़ नहीं। क्योंकि किसी के जहन्नमी होने या न होने का फ़ैसला सिर्फ़ एक ज़ात के इख़्तियार में है, वही फ़ैसला करता है कि कौन जन्नती है? और कौन जहन्नमी है। इसलिये तुम उसके ऊपर जहन्नमी होने का फ़ैसला करने वाले कौन हो? और तुमने उसके बारे में यह कैसे फ़ैसला कर लिया कि वह मर्दूद था। इस क़िस्म के अल्फ़ाज़ उसके बारे में इस्तेमाल करना किसी तरह भी जायज़ नहीं, लेकिन उसने जो गुमराही फैलाई है, उसकी तरदीद करो कि ये उसके अक़ीदे गुमराही वाले थे, और कोई शख़्स इन अक़ीदों से धोखे में न आये।

अच्छे तज़्किरे से मुर्दे का फ़ायदा

इसलिये जो बात हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमाई, यह याद रखने की है कि मरने वालों की अच्छाईयों का ज़िक्र करो और उनकी बुराईयों का ज़िक्र करने से परहेज़ करो।

इस हदीस शरीफ़ में सिर्फ़ बुराईयों से परहेज़ करने का ज़िक्र नहीं किया, बल्कि साथ में यह भी फ़रमा दिया कि उसकी अच्छाईयां ज़िक्र करो, उसकी अच्छाईयां ज़िक्र करने की तरग़ीब दी, मैंने अपने बाज़ बुज़ुर्गों से इसकी हिक्मत यह सुनी है कि जब कोई मुसलमान किसी मरने वाले की कोई अच्छाई ज़िक्र करता है, या उसकी नेकी का तज़्किरा करता है तो यह उस मरने वाले के हक़ में एक गवाही होती है, और इस गवाही की बुनियाद पर कभी कभी अल्लाह तआला उस मरने वाले पर फ़ज़्ल फ़रमा देते हैं, कि मेरे नेक बन्दे तुम्हारे बारे में अच्छाई की गवाही दे रहे हैं, चलो हम तुम्हें माफ़ करते हैं। इसलिये अच्छाई का ज़िक्र करना मरने वाले के हक़ में भी फ़ायदे मन्द है, और जब तुम्हारी गवाही के नतीजे में उसको फ़ायदा पहुंच गया तो क्या बईद है कि अल्लाह तआला उसके नतीजे में तुम्हारी भी

मग़फ़िरत फ़रमा दें, और यह फ़रमा दें कि तुमने मेरे एक बन्दे को फ़ायदा पहुंचाया, इसलिये हम तुम्हें भी फ़ायदा पहुंचाते हैं और तुम्हें भी बख़्श देते हैं।

इसलिये फ़रमाया कि सिर्फ़ यह नहीं कि मरने वाले का बुराई के साथ तज़्किरा मत करो बल्कि फ़रमाया कि उसकी अच्छाईयां ज़िक्र करो, उस से इन्शा अल्लाह उनको भी फ़ायदा पहुंचेगा और तुम्हें भी फ़ायदा पहुंचेगा।

मरने वालों के लिये दुआएं करो

एक और हदीस भी इसी मज़्मून की है लेकिन अल्फ़ाज़ दूसरे हैं, वह यह है कि हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा से रिवायत है कि:

"لا تذكروا هلكاكم الابخير" (نسائی شریف)

यानी अपने मरने वालों का ज़िक्र मत करो मगर अच्छाई के साथ, और अच्छाई के साथ ज़िक्र में यह बात भी दाख़िल है कि जब उसकी अच्छाई ज़िक्र कर रहे हो तो उसके हक़ में यह दुआ करो कि अल्लाह तआला उसकी मग़फ़िरत फ़रमाये और उस पर अपना फ़ज़्ल फ़रमाये। अल्लाह तआला उसको अपने अज़ाब से महफ़ूज़ फ़रमाये। ये दुआएं डबल फ़ायदा देंगी, एक तो दुआ करना बज़ाते ख़ुद इबादत और सवाब है, चाहे वह किसी काम के लिये भी करे।

दूसरे किसी मुसलमान को फ़ायदा पहुंचाने का अज्र व सवाब भी हासिल हो जायेगा, इसलिये उसके हक़ में दुआ करने में आपका भी फ़ायदा है और उसका भी फ़ायदा है। अल्लाह तआला अपने फ़ज़्ल व करम से हम सब को इस पर अमल करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

واخر دعوانا ان الحمدلله رب العالمين

बहस व मुबाहसा और झूठ को छोड़ दीजिए

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

"عن ابی هريرة رضی الله عنه قال: قال رسول الله صلى الله عليه وسلم لا يؤمن العبد الايمان كله حتى يترك الكذب فی المزاحة ويترك المراء وان كان صادقاً" (مسنداحمدج۲)

कामिल ईमान की दो निशानियां

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमायाः कोई बन्दा उस वक़्त तक कामिल मोमिन नहीं हो सकता जब तक कि वह मज़ाक़ में भी झूठ बोलना न छोड़े, और बहस व मुबाहसा न छोड़े, चाहे वह हक़ पर हो। इस हदीस में दो चीज़ें बयान फ़रमाई हैं कि जब तक आदमी इन दो चीज़ों को नहीं छोड़ेगा उस वक़्त तक आदमी सही तौर पर मोमिन नहीं हो सकता, एक यह कि मज़ाक़ में भी झूठ न बोले और दूसरे यह कि हक़ पर होने के बावजूद बहस व मुबाहसे में न पड़े।

मज़ाक़ में झूठ बोलना

पहली चीज़ जिसका इस हदीस में हुक्म दिया, वह है झूठ

छोडना और उसमें भी खास तौर पर मजाक में झूठ बोलने का जिक्र फ़रमाया, इसलिये कि बहुत से लोग यह समझते हैं कि झूठ उसी वक़्त ना जायज़ और हराम है जब वह सन्दजीदगी से बोला जाये, और मज़ाक में झूठ बोलना जायज़ है। चुनांचे अगर किसी से कहा जाये कि तुमने फ़लां मौके पर यह बात कही थी, वह तो ऐसे नहीं थी, तो जवाब में वह कहता है कि मैं तो मज़ाक में यह बात कह रहा था, गोया कि मज़ाक में झूठ बोलना कोई बुरी बात ही नहीं, हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मोमिन ऐसा होना चाहिये कि उसकी ज़बान से ख़िलाफ़े वाक़िआ बात निकले ही नहीं, यहां तक कि मज़ाक में भी न निकले, अगर मज़ाक और दिल्लगी हद के अन्दर हो तो उसमें कोई हर्ज नहीं, शरीअत ने दिल्लगी और मज़ाक को जायज़ क़रार दिया है, बल्कि उसकी थोड़ी सी तरग़ीब भी दी है, हर वक़्त आदमी ख़ुश्क और सन्जीदा होकर बैठा रहे कि उसके मुंह पर कभी तबस्सुम और मुस्कुराहट ही न आये, यह बात पसन्दीदा नहीं, ख़ुद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का मज़ाक करना सबित है, लेकिन ऐसा लतीफ़ मज़ाक और ऐसी दिल्लगी की बातें आप से नक़ल की गयी हैं जो लतीफ़ भी हैं, और उनमें कोई बात हकीक़त के ख़िलाफ़ भी नहीं।

हुज़ूरे अक़्दस सल्ल. के मज़ाक़ का एक वाक़िआ

हदीस शरीफ में है कि एक आदमी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में आये और अर्ज़ किया कि या रसूलल्लह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम मुझे एक ऊंट दे दीजिये, उस ज़माने में ऊंट सब से बड़ी दौलत होती थी और मालदारी की अलामत समझी जाती थी, जिसके पास जितने ज़्यादा ऊंट होते थे वह उतना ही बड़ा मालदार होता था, तो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मैं तुम्हें ऊंटनी का बच्चा दूंगा, उन साहिब ने कहा या रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम! मैं

ऊंटनी का बच्चा लेकर क्या करूंगा, मुझे तो ऊंट चाहिये, जो मुझे सवारी के काम आ सके, आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि अरे जो भी ऊंट होगा वह भी तो ऊंटनी का बच्चा ही होगा। (मिश्कात शरीफ़)

देखिये! आपने दिल्लगी फ़रमाई और मज़ाक़ की बात फ़रमाई लेकिन हक़ बात कही कोई झूठ और हक़ीक़त के ख़िलाफ़ बात नहीं कही।

हुज़ूर सल्ल. के मज़ाक़ का दूसरा वाक़िआ

एक और हदीस में है कि एक औरत हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में आई, और अर्ज़ किया कि या रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम मेरे लिये दुआ फ़रमायें कि अल्लाह तआला मुझे जन्नत में दाख़िल फ़रमा दें, आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि कोई बूढ़ी औरत जन्नत में नहीं जायेगी, जब आपने देखा कि वह परेशान हो रही हैं, तो आपने फ़रमाया कि मेरा मतलब यह है कि कोई औरत बुढ़ापे की हालत में जन्नत में नहीं जायेगी बल्कि जवान होकर जायेगी। (मिश्कात शरीफ़)

देखिये आपने मज़ाक़ फ़रमाया और दिल्लगी की बात की, लेकिन उसमें कोई झूठ और ग़लत बयानी का पहलू नहीं था, यह मज़ाक़ करना भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सुन्नत है, इसलिये जब कोई शख़्स इत्तिबा-ए-सुन्नत की नियत से मज़ाक़ करेगा तो इन्शा अल्लाह उस पर सवाब की भी उम्मीद है, हमारे जितने बुज़ुर्ग गुज़रे हैं उन सब का हाल यह था कि उनमें से कोई भी ख़ुश्क नहीं था, ऐसा ख़ुश्क कि बुत बने बैठे हैं और ज़बान पर दिल्लगी की बात नहीं आती, बल्कि ये हज़रात अपने साथियों से मज़ाक़ दिल्लगी की बातें भी किया करते थे, और बाज़ बुज़ुर्ग तो इस बारे में मशहूर थे, लेकिन उस दिल्लगी और मज़ाक़ में झूठ नहीं होता था, और जब अल्लाह तआला किसी पर अपना फ़ज़्ल फ़रमाते हैं तो उसकी ज़बान इस तरह कर देते हैं कि उस ज़बान पर कभी झूठ की

कोई बात आती ही नहीं, न मज़ाक़ में न ही सन्जीदगी में।

हज़रत हाफ़िज़ ज़ामिन शहीद रह. और दिल्लगी

थाना भवन के तीन कुतब मश्हूर हुए हैं, उनमें से एक हज़रत हाफ़िज़ ज़ामिन शहीद रहमतुल्लाहि अलैहि थे, बड़े दर्जे के औलिया अल्लाह में से थे। उनके बारे में बाज़ बुज़ुर्गों का यह कश्फ़ है कि 1857 में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ जो जिहाद हुआ था वह इसी दूल्हा की बरात सजाने के लिये अल्लाह तआला ने मुक़द्दर किया था। लेकिन उनका यह हाल था कि अगर कोई उनकी मज्लिस में जाकर बैठता तो देखता कि वहां तो हंसी मज़ाक़ और दिल्लगी हो रही है। जब कोई शख़्स उनके पास जाता तो फ़रमाते कि भाई! अगर फ़तवा लेना हो तो देखो सामने मौलाना शैख़ मुहम्मद थानवी साहिब बैठे हैं, उनके पास चले जाओ, अगर ज़िक्र व अज़कार सीखना हो और बैअत होना हो तो हज़रत हाजी इम्दादुल्लाह साहिब तश्रीफ़ फ़रमा हैं, उनसे जाकर ताल्लुक़ क़ायम कर लो, और अगर हुक़्क़ा पीना हो तो यारों के पास आ जाओ। इस तरह की दिल्लगी की बातें करते थे, लेकिन उस दिल्लगी के पर्दे में अपने बातिन के बुलन्द मक़ाम को छुपाया हुआ था।

हज़रत मुहम्मद बिन सीरीन रह. और क़हक़हे

हज़रत मुहम्मद बिन सीरीन रहमतुल्लाहि अलैहि जो बड़े दर्जे के ताबिईन में से हैं, उनके हालात में उनके बारे में किसी ने लिखा है कि:

"كنا نسمع ضحكة فى النهار وبكاء بالليل"

यानी दिन के वक़्त हम उनके हंसने की आवाज़ें सुना करते थे औ उनकी मज्लिस में क़हक़हे गूंजते थे, और रात के वक़्त उनके रोने की आवाज़ें आया करती थीं। अल्लाह तआला के सामने जब सज्दे में पड़े होते तो रोते रहते थे।

हदीस में मज़ाक़ दिल्लगी की तरग़ीब

बहर हाल! यह मज़ाक़ अपनी ज़ात में बुरा नहीं बशर्ते कि हदों के अन्दर हो, और आदमी हर वक़्त ही मज़ाक़ न करता रहे, बल्कि कभी कभी मज़ाक़ और दिल्लगी करनी चाहिये। एक हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इसकी तरग़ीब देते हुए फ़रमायाः

"روحوا القلوب ساعة فساعة"

यानी अपने दिलों को थोड़े थोड़े वक़्फ़े से आराम दिया करो।

इसका मतलब यह है कि आदमी सन्जीदा कामों में लगा हुआ है तो थोड़ा वक़्त वह ऐसा भी निकाले जिसमें आज़ादी से हंसी मज़ाक़ की बातें भी कर ले। गोया कि यह भी मतलूब है और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत है, लेकिन इसका ख़्याल रहे कि किसी भी वक़्त मुंह से ग़लत बात न निकाले।

बहर हाल! जब मज़ाक़ में झूठ बोलने को मना किया गया है तो सन्जीदगी में झूठ बोलना कितनी बुरी बात होगी। और मोमिन की बुनियादी अ़लामतों में से एक अ़लामत (निशानी) यह है कि उसके मुंह से ग़लत बात नहीं निकलती, यहां तक कि जान पर मुसीबत आ जाती है उस वक़्त भी मोमिन झूठ से बचता है, हांलाकि शरीअ़त ने इसकी इजाज़त दी है कि जान बचाने की ख़ातिर अगर कोई शख़्स झूठ बोले तो इसकी इजाज़त है, लेकिन जो अल्लाह के नेक बन्दे होते हैं, उस वक़्त भी उनके मुंह पर खुला झूठ जारी नहीं होता।

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ि. और झूठ से परहेज़

हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु हिजरत के सफ़र में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ जा रहे थे, मक्का मुकर्रमा के काफ़िरों ने आपको पकड़ने के लिये हरकारे दौड़ाये हुए थे, और यह ऐलान किया हुआ था कि जो शख़्स आप (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) को पकड़ कर लायेगा उसको सौ ऊंट इनाम में

दिये जायेंगे, आप अन्दाजा लगायें कि कितना बडा इनाम था, आज भी सौ ऊंट की क़ीमत लाखों तक पहुंच जायेगी और सारा मक्का इस फ़िक्र में था कि आप (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) को कहीं से पकड़ लायें, उस हालत में एक शख़्स आप तक पहुंच गया, वह शख़्स हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु को जानता था, लेकिन आप (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम) से वाक़िफ़ नहीं था, उसने पूछा कि यह आपके साथ कौन हैं? आप अगर सही बताते हैं तो जान का ख़तरा, और नहीं बताते हैं तो ग़लत बयानी और झूठ होता है, जो लोग सच बोलने का एहतिमाम करते हैं, ऐसे मौक़े पर अल्लाह तआ़ला उनकी मदद फ़रमाते हैं, आप तो "सिद्दीक़" (रज़ियल्लाहु अ़न्हु) थे, चुनांचे उस शख़्स के सवाल के जवाब में आपके मुंह से यह निकला कि 'हादिन यहदीनिस्सबील" यह रहनुमा हैं और मुझे रास्ता दिखलाते हैं। अब देखिये कि आपने एक ऐसा जुम्ला बोल दिया जिसमें झूठ का शायबा भी नहीं था, इसलिये कि आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम वाक़ई रहनुमा थे और दीन का रास्ता दिखलाते थे, और जान भी बच गयी। देखिये! जान पर बनी हुई है, मगर उस वक़्त भी ज़बान पर खुला झूठ नहीं आ रहा है, हालांकि ऐसे मौक़े पर जब कि जान का ख़तरा हो, शरीअ़त ने झूठ बोलने की गुन्जाइश दे दी है, लेकिन सिद्दीक़े अकबर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने ज़बान से झूठ का कलिमा नहीं निकाला।

मौलाना मुहम्मद क़ासिम नानौतवी रह. और झूठ से परहेज़

हज़रत मौलाना मुहम्मद क़ासिम साहिब नानौतवी रह्मतुल्लाहि अ़लैहि जो दारुल उलूम देवबन्द के बानी (संसाथापक) थे, 1857 के आज़ादी के जिहाद के मौक़े पर उनकी गिरफ़्तारी के वारन्ट निकले हुए थे, उस वक़्त यह आ़लम था कि चौराहों पर फांसियों के तख़्ते लटके हुए थे, और जब किसी के बारे में पता लगता कि यह जिहाद में शरीक है, उसको फ़ौरन पकड़ कर चौराहे पर फांसी दे दी जाती

थी। उस हालत में हज़रत मौलाना मुहम्मद कासिम साहिब नानौतवी रहमतुल्लाहि अलैहि देवबन्द में छत्ते की मस्जिद में तशरीफ़ फ़रमा थे, आप बिल्कुल सादा रहते थे और आम तौर पर आप तहबन्द और मामूली कुर्ता पहने रहते थे। देखने में पता नहीं चलता था कि आप इतने बड़े आलिम होंगे। एक दिन आपको गिरफ़्तार करने के लिये पुलिस मस्जिद के अन्दर पहुंच गयी, अन्दर जाकर देखा तो कोई नज़र न आया, पुलिस वालों के ज़ेहन में यह था कि मौलाना मुहम्मद कासिम साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि बहुत बड़े आलिम होंगे, और जुब्बा और पगड़ी पहने हुए शान व शौकत के साथ बैठे होंगे, लेकिन अन्दर मस्जिद में देखा कि एक आदमी लुंगी और मामूली कुर्ता पहने हुए है, पुलिस वाले यह समझे कि यह मस्जिद का कोई ख़ादिम है, उनसे पूछा कि मौलाना मुहम्मद कासिम साहिब नानौतवी कहां हैं? अब अगर यह जवाब देते हैं कि मैं ही हूं तो पकड़े जाते हैं, और अगर कोई और बात कहते हैं तो झूठ हो जाता है, आपने यह किया कि जिस जगह पर खड़े थे उस जगह से ज़रा से पीछे हट गये और फिर कहा कि अभी थोड़ी देर पहले तो यहीं थे। यह जवाब दिया, आप देखें कि ऐसे वक़्त में जब कि फांसी दिए जाने का ख़तरा आंखों के सामने है, और मौत आंखों के सामने नाच रही है, उस वक़्त भी खुला झूठ ज़बान से नहीं निकला, उसी की बर्कत से अल्लाह तआला ने बचा लिया, और उस पुलिस के दिल में यह बात आ गयी कि हो सकता है कि थोड़ी देर पहले यहां होंगे और अब कहीं निकल गये। बहर हाल! झूठ ऐसी चीज़ है कि एक मोमिन सूली के तख़्ते पर भी उसको कभी गवारा नहीं करता।

आज समाज में फैले हुए झूठ

इसलिये जहां तक हो सके इन्सान झूठ न बोले, जब शरीअत ने सच बोलने की इतनी ताकीद फ़रमाई है और झूठ बोलने की मनाही फ़रमाई है तो आम हालात में झूठ की इजाज़त कैसे होगी? आजकल

हमारा समाज झूठ बोलने से भर गया है, अच्छे ख़ासे पढ़े लिखे दीनदार और अल्लाह वालों से ताल्लुक़ रखने वाले, सोहबत याफ़्ता लोग भी खुले झूठ का जुर्म करते हैं, जैसे छुट्टी लेने के लिये झूठे मैडिकल सर्टीफ़िकिट बनवा रहे हैं, और दिल में ज़रा सा यह ख़्याल भी नहीं गुज़रता कि हमने झूठ का जुर्म किया है, तिजारत में, उधोग में, कारोबार में झूठे सर्टीफ़िकिट, झूठे बयानात, झूठी गवाहियां हो रही हैं, यहां तक नौबत आ गयी है कि अब कहने वाले यह कहते हैं, "इस दुनिया में सच के साथ गुज़ारा नहीं हो सकता," अल्लाह की पनाह, यानी सच बोलने वाला ज़िन्दा नहीं रह सकता, और जब तक झूठ नहीं बोलेगा उस वक़्त तक काम नहीं चलेगा, हालांकि अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने तो फ़रमाया है किः

"الصدق ينجی والكذب يهلك"

"सच्चाई नजात दिलाने वाली चीज़ है और झूठ हलाकत में डालने वाला है"

बज़ाहिर वक़्ती तौर पर झूठ बोलने से कोई नफ़ा हासिल हो जाये, लेकिन अन्जाम कार झूठ में फ़लाह और कामयाबी नहीं, सच्चाई में फ़लाह है, अल्लाह के हुक्म मानने में फ़लाह है।

इसलिये सच्चाई का एहतिमाम करना चाहिये, और फिर इस बारे में बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जिनको हर एक जानता है कि यह झूठ है, लेकिन हमारे समाज में आजकल झूठ की हज़ारों क़िस्में निकल आयी हैं। ये झूठे सर्टीफ़िकिट, झूठे बयानात वग़ैरह, यह झूठ की बदतरीन क़िस्म है, इसमें अच्छे ख़ासे पढ़े लिखे लोग भी मुब्तला हो जाते हैं, अल्लाह तआ़ला हम सब को इस से महफ़ूज़ रहने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, आमीन।

बहर हाल! इस हदीस में एक बात तो यह बयान फ़रमाई कि बन्दे के मुकम्मल मोमिन होने के लिये यह ज़रूरी है कि वह मज़ाक़ में भी झूठ न बोले।

बहस व मुबाहसे से परहेज़ करें

दूसरी बात यह इर्शाद फ़रमाई कि हक़ पर होने के बावजूद बहस व मुबाहसे से परहेज़ करे। हमारी ज़बान की आफ़तों में से एक बड़ी आफ़त "बहस व मुबाहसा" भी है। लोगों को इसका बड़ा ज़ौक़ है, जहां चन्द अफ़राद की मज्लिस जमी कोई मौज़ू निकला, बस फिर उस मौज़ू पर बहस व मुबाहसा शुरू हो गया। वह मुबाहसा भी ऐसी फ़ुज़ूल बातों का जिनका न तो दुनिया में कोई फ़ायदा है और न आख़िरत में कोई फ़ायदा। याद रखिये! यह बहस व मुबाहसा ऐसी चीज़ है जो इन्सान के बातिन को तबाह कर देता है, हज़रत इमाम मालिक रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं:

"المراء يذهب بنور العلم"

"बहस व मुबाहसा इल्म के नूर को तबाह कर देता है"

बहस व मुबाहसे की आदत आ़लिमों में ज़्यादा होती है, इसलिये कि हर आ़लिम यह समझता है कि मैं ज़्यादा जानता हूं, अगर दूसरे ने कोई बात कह दी तो उस से बहस व मुबाहसा करने को तैयार, और उस मुबाहसे में घन्टों ख़र्च हो रहे हैं, चाहे वह मुबाहसा ज़बानी हो या लिखित में हो, बस उसी में वक़्त ख़र्च हो रहा है।

अपनी राय बयान करके अलग हो जाएं

सीधी सी बात यह है कि अगर तुम्हारी राय दूसरे की राय से अलग है तो तुम अपनी राय बयान कर दो, कि मेरी राय यह है, और दूसरे की बात सुन लो, अगर समझ में आती है तो क़बूल कर लो और अगर समझ में नहीं आती तो बस यह कह दो कि तुम्हारी बात समझ में नहीं आई, तुम्हारी समझ में जो कुछ आ रहा है तुम उस पर अ़मल कर लो, और मेरी समझ में जो आ रहा है मैं उस पर अ़मल करूंगा, बहस करने से कुछ हासिल नहीं, इसलिये कि बहस व मुबाहसे में हर शख़्स यह चाहता है कि मैं दूसरे पर ग़ालिब आ जाऊं, मेरी बात ऊंची रहे, और दूसरे को नीचा दिखाने की फ़िक्र में रहता

है, उसके नतीजे में फिर हक व बातिल में फर्क बाकी नहीं रहता, बल्कि यह फ़िक्र सवार होती है कि जिस तरह भी हो बस दूसरे को नीचा दिखाना है। हुजूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इस हदीस में यह फ़रमा दिया कि अगर तुम हक़ पर हो और सही बात कह रहे हो और दूसरा शख़्स ग़लत बात कह रहा है, फिर भी बहस व मुबाहसा मत करो, बस अपना सही मौक़फ़ (स्टैन्ड) बयान रक दो और उस से कह दो कि तुम्हारी समझ में आये तो क़बूल कर लो, और अगर समझ में न आये तो तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। तो इस हदीस में हक़ बात पर भी बहस व मुबाहसा से मुमानअत (मनाही) फ़रमा दी।

सूरः काफ़िरून के नाज़िल होने का मक़सद

सूरः "कुल या अय्युहल काफ़िरून" जिसको हम और आप नमाज़ में पढ़ते हैं, यह इसी मक़सद को बताने के लिये नाज़िल हुई है, वह इस तरह कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने अपना तौहीद का पैग़ाम मक्का के काफ़िरों के सामने वज़ाहत के साथ बयान फ़रमा दिया, उसकी दलीलें बयान फ़रमा दीं, लेकिन बयान करने के बाद जब बहस व मुबाहसे की नौबत आ गयी तो उस वक़्त यह सूरः नाज़िल हुई:

"قُلْ يَآ اَيُّهَا الْكٰفِرُوْنَ، لَآ اَعْبُدُ مَا تَعْبُدُوْنَ، وَلَآ اَنْتُمْ عٰبِدُوْنَ مَآ اَعْبُدُ، وَلَآ اَنَا عَابِدٌ مَّا عَبَدْتُّمْ، وَلَآ اَنْتُمْ عٰبِدُوْنَ مَآ اَعْبُدُ، لَكُمْ دِيْنُكُمْ وَلِيَ دِيْنِ۔ (سورة الكافرون)

"आप फ़रमा दीजिये! ऐ काफ़िरो! तुम जिसकी इबादत करते हो, मैं उसकी इबादत नहीं करता, और तुम उसकी इबादत नहीं करते जिसकी मैं इबादत करता हूं, और न मैं इबादत करने वाला हूं जिसकी तुम इबादत करते हो, और न तुम इबादत करने वाले हो जिसकी मैं इबादत करता हूं, तुम्हारा दीन तुम्हारे साथ और मेरा दीन मेरे साथ"

मतलब यह है कि मैं बहस व मुबाहसा करना नहीं चाहता, जो

हक़ की दलीलें थीं वे खोल कर बता दीं, समझा दीं, अगर क़बूल करना हो तो अपनी फ़लाह और कामयाबी की ख़ातिर क़बूल कर लो, आगे फ़ुज़ूल बहस व मुबाहसे में वक़्त ज़ाया करना न तुम्हारे हक़ में मुफ़ीद है और न मेरे हक़ में मुफ़ीद है। "लकुम दीनुकुम व लि-य दीन" तुम्हारे लिये तुम्हारा दीन और मेरे लिये मेरा दीन।

दूसरे की बात क़बूल कर लो, वर्ना छोड़ दो

देखिये, ख़ालिस कुफ़्र और इस्लाम के मामले में भी अल्लाह तआ़ला ने यह फ़रमा दिया कि यह कह दो कि मैं झगड़ा नहीं करता और बहस व मुबाहसे में नहीं पड़ता। जब कुफ़्र और इस्लाम के मामले में यह हुक्म है तो और दूसरे मसाइल में इस से ज़्यादा बचने की ज़रूरत है, लेकिन हमारी हालत यह है कि हर वक़्त हमारे दरमियान बहस व मुबाहसे का सिलसिला चलता रहता है, यह बातिन को ख़राब करने वाली चीज़ है। अगर किसी से किसी मसले पर कोई बात करनी हो तो हक़ की तलब के साथ बात करो, और हक़ पहुंचाने के लिये बात करो, अपना मौक़फ़ बयान करो, दूसरे का मौक़फ़ सुन लो, समझ में आये तो क़बलू कर लो, समझ में न आये तो छोड़ दो, बस, लेकिन बहस न करो।

एक ख़त्म न होने वाला सिलसिला जारी हो जाएगा

मेरे पास बेशुमार लोग ख़तों के अन्दर लखते रहते हैं कि फ़लां साहिब से इस मसले में बहस हुई, वह यह दलील पेश करते हैं हम उनका क्या जवाब दें?

अब बताइये कि अगर यह सिलसिला इसी तरह जारी रहे कि वह एक दलील पेश करें और आप मुझ से पूछें कि इसका क्या जवाब दें? मैं उसका जवाब बता दूं, फिर वह कोई दूसरी दलील पेश करें तो फिर तुम मुझ से पूछोगे कि इस दलील का क्या जवाब दें, तो इस तरह एक ख़त्म न होने वाला सिलसिला जारी हो जायेगा। सीधी बात यह है कि बहस व मुबाहसा ही मत करो, बल्कि अपना

मस्लक बयान कर दो कि मेरे नज़्दीक यह हक है, मैं इस पर अमल करता हूं, सामने वाला क़बूल कर ले तो ठीक, नहीं क़बूल करता है तो उस से यह कह दो कि तुम जानो तुम्हारा काम जाने, मैं जिस रास्ते पर हूं उसी पर क़ायम रहूंगा, इस से ज़्यादा आगे बढ़ने की ज़रूरत नहीं। हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की तालीम तो यही है कि अगर तुम सच्चे और हक़ पर हो, फिर भी बहस व मुबाहसे में मत पड़ो।

मुनाज़रा मुफ़ीद नहीं

आजकल, "मुनाज़रा" करना और उस मुनाज़रे में दूसरे को शिकस्त देना एक हुनर बन गया है, हकीमुल उम्मत हज़रत मौलाना अशरफ़ अली साहिब थानवी रह्मतुल्लाहि अलैहि जब नये नये दारुल उलूम देवबन्द से फ़ारिग़ हुए तो उस वक़्त हज़रते वाला को बातिल फ़िर्क़ों से मुनाज़रा करने का बहुत शौक़ था, चुनांचे फ़ारिग़ होने के बाद कुछ मुद्दत तक मुनाज़रों का सिलसिला जारी रखा, और जब भी किसी से मुनाज़रा करते तो दूसरे को ज़ेर ही कर देते थे, अल्लाह तआला ने बयान की कुव्वत ख़ूब अता फ़रमाई थी, लेकिन हज़रत ख़ुद फ़रमाते हैं कि कुछ दिन के बाद उस मुनाज़रे के काम से ऐसा दिल हटा कि अब मैं किसी तरह से मुनाज़रा करने को तैयार नहीं। फ़रमाया कि जब मैं मुनाज़रा करता था तो दिल में एक अंधेरा महसूस होता था, फिर बाद में सारी उम्र कभी मुनाज़रा नहीं किया, बल्कि दूसरों को भी मना करते थे कि यह कुछ फ़ायदे मन्द नहीं। कहीं वाक़ई ज़रूरत पेश आ जाये और हक़ की वज़ाहत मक़सूद हो तो और बात है, वर्ना इसको अपना मश्ग़ला बनाना अच्छी बात नहीं। जब उलमा-ए-किराम के लिये यह अच्छी बात नहीं तो आम आदमी के लिये दीन के मसलों पर बहस करना फ़ुज़ूल बात है।

फ़ालतू अक़्ल वाले बहस व मुबाहसा करते हैं

अकबर इलाहाबादी मरहूम जो उर्दू के मशहूर शायर हैं, उन्होंने

इस बहस व मुबाहसे के बारे में बड़ा अच्छा शेर कहा है, वह यह है कि:

मज़हबी बहस मैंने की ही नहीं
फ़ालतू अक़्ल मुझ में थी ही नहीं

यानी मज़हबी बहस वह करे जिसमें फ़ालतू अक़्ल हो, हर आदमी को इस पर अमल करना चाहिये। लेकिन अगर कोई मसला मालूम नहीं तो किसी जानने वाले से पूछ लो, कोई बात समझ में नहीं आ रही है तो पूछ लो, हक़ के तालिब बन कर मालूम कर लो, लेकिन बहस व मुबाहसे में कुछ नहीं रखा।

बहस व मुबाहसे से अंधेरी पैदा होती है

इस हदीस की तश्रीह में हज़रत थानवी रहमतुल्लाहि अलैहि फ़रमाते हैं कि:

"इस से मालूम होता है कि बहस व मुबाहसे से ज़ुल्मत (दिल में अंधेरी) पैदा होती है, क्योंकि ईमान का कामिल न होना ज़ुल्मत है, और इसी लिये तुम अहले तरीक़त (सूफ़ी हज़रात और अल्लाह वालों) को देखोगे कि वे बहस व मुबाहसे से सख़्त नफ़रत करते हैं"।

यानी तसव्वुफ़ और सुलूक के रास्ते पर चलने वाले औलिया अल्लाह बहस व मुबाहसे से सख़्त नफ़रत करते हैं।

जनाब मौदूदी साहिब से मुबाहसे का एक वाक़िआ

हमारे एक बुज़ुर्ग थे, बाबा नजम अह्सन साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि जो हज़रत थानवी रहमतुल्लाहि अलैहि के सोहबत याफ़्ता थे और बड़े अजीब बुज़ुर्ग थे। एक बार उन्होंने मुझ से फ़रमाया कि:

"जनाब मौदूदी साहिब ने अपनी किताब "ख़िलाफ़त व मुलूकियत" में बाज़ सहाबा-ए-किराम पर बड़े ग़लत अन्दाज़ में गुफ़्तगू की है, तुम उसके ऊपर कुछ लिखो"।

चुनांचे मैंने उस पर मज़्मून लिख दिया, उस मज़्मून पर फिर मौदूदी साहिब की तरफ़ से जवाब आया, उस पर फिर मैंने एक

मज़मून बतौर जवाब के लिख दिया, इस तरह दो बार जवाब लिखा। जब हज़रत बाबा नज्म अहसन साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि ने मेरा दूसरा जवाब पढ़ा, तो मुझे एक पर्चा लिखा, वह पर्चा आज भी मेरे पास महफ़ूज़ है, उसमें यह लिखा कि:

"मैंने तुम्हारा यह मज़्मून पढ़ा और पढ़ कर बड़ा दिल खुश हुआ और दुआएं निकलीं, अल्लाह तआला इसको क़बूल फ़रमाये। फिर लिखा कि:

"अब इस मुर्दा बहसा बहसी को दफ़ना दीजिये"।

यानी अब यह आख़री बार लिख दिया, और जो हक़ वाज़ेह करना था वह कर दिया; अब इसके बाद अगर वहां से कोई जवाब भी आये तब भी तुम उसके जवाब में कुछ मत लिखना, इसलिये कि फिर तो बहस व मुबाहसे का दरवाज़ा खुल जायेगा। बहर हाल यह औलिया अल्लाह इस बहस व मुबाहसे से सख़्त नफ़रत करते हैं, क्योंकि इसका कोई फ़ायदा नहीं होता, आज तक आपने नहीं देखा होगा कि किसी मुनाज़रे के नतीजे में हक़ क़बूल करने की तौफ़ीक़ हुई हो, सिवाए वक़्त ज़ाया करने के कुछ हासिल नहीं।

ये अल्लाह वाले बहस व मुबाहसे से नफ़रत क्यों न करें जब कि नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमा दिया कि: "मोमिन की अलामत (पहचान और निशानी) यह है कि वह बहस व मुबाहसे में नहीं पड़ता"।

अल्लाह तआला हम सब को बहस व मुबाहसे और झूठ से बचने की हिम्मत और तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

واخردعوانا ان الحمد لله رب العالمين

दीन सीखने और सिखाने का तरीक़ा

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

"عن ابی قلابة قال حدثنا مالك رضی الله تعالیٰ عنه قال اتینا النبی صلی الله علیه وسلم ونحن شببة متقاربون فاقمنا عنده عشرین یومًا ولیلة وکان رسول الله صلی الله علیه وسلم رحیمًا رفیقًا، فلما ظن انّا قد اشتهینا اهلنا، سألناعمن ترکنا بعد نا فاخبرناه فقال ارجعوا الیٰ اهلیکم فاقیموا فیهم وعلموهم و مروهم، وصلوا کما رأیتمونی اصلی، فاذا حضرت الصلوٰة فلیؤذن احدکم ولیؤمکم اکبرکم" (بخاری شریف)

हदीस का तर्जुमा

हज़रत मालिक बिन हवीरस रज़ियल्लाहु अन्हु एक सहाबी हैं जो क़बीला–ए–बनू लैस के एक फ़र्द थे, उनका क़बीला मदीना मुनव्वरा से काफ़ी दूर एक बस्ती में आबाद था, अल्लाह तबारक व तआला ने उनको ईमान की तौफ़ीक़ अता फ़रमाई, ये लोग मुसलमान होने के बाद अपने गांव से सफ़र करके मदीना मुनव्वरा में हुज़ूरे अक़्दस

सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए, वह अपनी हाज़री का वाक़िआ इस लम्बी हदीस में बयान फ़रमा रहे हैं कि हम हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में मदीना मुनव्वरा हाज़िर हुए और हम लोग सब नौजवान और हमउम्र थे, और हमने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में बीस दिन कि़याम किया, बीस दिन के बाद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को ख़्याल हुआ कि शायद हमें अपने घर वालों के पास जाने की ख़्वाहिश पैदा हो रही है, चुनांचे आपने हम से पूछा कि तुम अपने घर में किस किसको छोड़ कर आये हो? यानी तुम्हारे घर में कौन कौन तुम्हारे रिश्तेदार हैं? हमने आपको बता दिया कि फ़लां फ़लां रिश्तेदार हैं। नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम हर इन्सान पर बड़े ही मेहरबान और बड़े ही नर्म आदत वाले थे। चुनांचे आपने हम से फ़रमाया कि अब तुम अपने घर वालों के पास जाओ, और जाकर उनको दीन सिखाओ और उनको हुक्म दो कि वे दीन पर अमल करें, और जिस तरह तुमने मुझे नमाज़ पढ़ते हुए देखा है, उसी तरह तुम भी नमाज़ पढ़ो और जब नमाज़ का वक़्त आ जाये तो तुम में से एक आदमी अज़ान दिया करे, और तुम में जो उम्र में बड़ा हो वह इमाम बने, ये हिदायतें देकर आपने हमें रुख़्सत फ़रमा दिया।

दीन सीखने का तरीक़ा, सोहबत

यह एक लम्बी हदीस है, इसमें हमारे लिये हिदायत के अनेक सबक़ हैं, सब से पहली बात जो हज़रत मालिक बिन हवीरस रज़ियल्लाहु अन्हु ने बयान फ़रमाई वह यह थी कि हम नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में आये और हम नौजवान थे, और तक़रीबन बीस दिन हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में रहे, हक़ीक़त में दीन सीखने का यही तरीक़ा था, उस ज़माने में न कोई बाक़ायदा मदरसा था और न कोई यूनिवर्सिटी थी, न कोई कॉलेज था और न किताबें थीं, बस दीन

सीखने का यह तरीक़ा था कि जिसको दीन सीखना होता वह हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सोहबत में आ जाता, और आकर आपको देखता कि आप किस तरह ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं? सुबह से लेकर शाम तक आपके मामूलात क्या हैं? लोगों के साथ आपका रवैया कैसा है? आप घर में किस तरह रहते हैं? बाहर वालों के साथ किस तरह रहते हैं? ये सब चीज़ें अपनी आंखों से देख देख कर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सीरते तैयबा को मालूम करते और इसी से उनको दीन समझ में आता।

"सोहबत" का मतलब

अल्लाह तआ़ला ने दीन सीखने का जो असल तरीक़ा मुक़र्रर फ़रमाया है वह यही सोहबत है, इसलिये कि किताब और मदरसे से दीन सीखना तो उन लोगों के लिये है जो पढ़े लिखे हों, और फिर तन्हा किताब से पूरा दीन भी हासिल नहीं हो सकता, अल्लाह तआ़ला ने इन्सान की ऐसी फ़ितरत बनाई है कि सिर्फ़ किताब पढ़ लेने से उसको कोई इल्म व हुनर नहीं आता। दुनिया का कोई इल्म सिर्फ़ किताब के ज़रिये हासिल नहीं हो सकता, बल्कि इल्म व हुनर के लिये सोहबत की ज़रूरत होती है। सोहबत का मतलब यह है कि किसी जानने वाले के पास कुछ दिन रहना और उसके तर्ज़े अ़मल का मुशाहदा करना, इसी का नाम सोहबत है, और यही सोहबत इन्सान को कोई इल्म व हुनर और कोई फ़न सिखाती है। जैसे अगर किसी को डॉक्टर बनना है तो उसको किसी डॉक्टर की सोहबत में रहना होगा, अगर किसी को इन्जीनियर बनना है तो उसको किसी इन्जीनियर की सोहबत में रहना होगा। यहां तक कि अगर किसी को खाना पकाना सीखना है तो उसको भी कुछ वक़्त बावर्ची की सोहबत में गुज़ारना होगा और उस से सीखना पड़ेगा। इसी तरह अल्लाह तआ़ला ने दीन का मामला रखा है कि यह दीन सोहबत के बग़ैर हासिल नहीं होता।

सहाबा रज़ि. ने किस तरह दीन सीखा?

इसी वजह से अल्लाह तआला ने जब कभी कोई आसमानी किताब दुनिया में भेजी तो उसके साथ एक रसूल ज़रूर भेजा, वर्ना अगर अल्लाह तआला चाहते तो बराहे रास्त किताब नाज़िल फ़रमा देते, लेकिन बराहे रास्त किताब नाज़िल करने के बजाये हमेशा किसी रसूल और पैग़म्बर के ज़रिये किताब भेजी, ताकि वह रसूल और पैग़म्बर उस किताब पर अमल करने का तरीक़ा लोगों को बताये और उस रसूल की सोहबत और उसकी ज़िन्दगी के तर्ज़े अमल से लोग यह सीखें कि उस किताब पर किस तरह अमल किया जाता है। हज़राते सहाबा रज़ि. से पूछिये कि उन्होंने किस यूनीवर्सिटी में तालीम पाई? वे हज़रात कौन से मदरसे से पढ़ कर फ़ारिग़ हुए थे? उन्होंने कौन सी किताबें पढ़ी थीं? सही बात यह है कि उनके लिये न तो ज़ाहिरी तौर पर कोई मदरसा था, न ही उनके लिये कोर्स मुक़र्रर था, न कोई निसाबे तालीम था, न किताबें थीं, लेकिन एक सहाबी के तर्ज़े अमल पर हज़ार मदरसे और हज़ार किताबें क़ुरबान हैं, इसलिये कि उस सहाबी ने नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सोहबत उठाई और सोहबत के नतीज़े में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की एक एक अदा को देखा, और फिर उस अदा को अपनी ज़िन्दगी में अपनाने की कोशिश की और इस तरह वह सहाबी बन गये।

अच्छी सोहबत इख़्तियार करो

बहर हाल! यह सोहबत ऐसी चीज़ है जो इन्सान को कीमिया बना देती है, इसी लिये हमारे तमाम बुज़ुर्गों का कहना यह है कि अगर दीन सीखना है तो फिर अपनी सोहबत दुरुस्त करो, और ऐसे लोगों के साथ उठो बैठो और ऐसे लोगों के पास जाओ जो दीन के हामिल (उठाने वाले और उसको अपनाए हुए) हैं। वह सोहबत धीरे धीरे तुम्हारे अन्दर भी दीन की बड़ाई, मुहब्बत और उसकी फ़िक्र पैदा

करेगी, और ग़लत सोहबत में बैठोगे तो फिर ग़लत सोहबत के असरात तुम पर ज़ाहिर होंगे, और यह दीन हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के वक़्त से इसी तरह चला आ रहा है। हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सोहबत से सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम तैयार हुए और सहाबा-ए-किराम की सोहबत से ताबिईन तैयार हुए, और ताबिईन की सोहबत से तबए ताबिईन तैयार हुए, यह सारे दीन का सिलसिला उस वक़्त से लेकर आज तक इसी तरह चला आ रहा है।

दो सिलसिले

मेरे वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह्मतुल्लाहि अलैहि "मआरिफ़ुल कुरआन" में लिखते हैं कि अल्लाह तबारक व तआला ने इन्सान की हिदायत के लिये दो सिलसिले जारी फ़रमा दिये हैं, एक अल्लाह की किताब का सिलसिला, और दूसरा रिजालुल्लाह का सिलसिला। एक अल्लाह की किताब और दूसरे अल्लाह के आदमी। यानी अल्लाह तआला ने ऐसे रिजाल पैदा फ़रमाये हैं जो इस किताब पर अमल का नमूना हैं, इसलिये अगर कोई शख़्स दोनों सिलसिलों को लेकर चले तो उस वक़्त दीन की हकीकत समझ में आती है, लेकिन अगर सिर्फ़ किताब लेकर बैठ जाये और रिजालुल्लाह (अल्लाह वालों) से ग़ाफ़िल हो जाये तो भी गुमराही में मुब्तला हो सकता है, और अगर तन्हा रिजालुल्लाह की तरफ़ देखे और किताबुल्लाह से ग़ाफ़िल हो जाये तो भी गुमराही में मुब्तला हो सकता है, इसलिये दोनों चीज़ों को साथ लेकर चलने की ज़रूरत है।

इसी लिये हमारे बुज़ुर्गों ने फ़रमाया कि इस वक़्त दीन को हासिल करने और उस पर अमल करने का आसान तरीक़ा यह है कि आदमी अल्लाह वालों की सोहबत इख़्तियार करे, और ऐसे लोगों की सोहबत इख़्तियार करे जो अल्लाह तआला के दीन की समझ रखते

हैं, और दीन पर अमल पैरा हैं, जो शख़्स जितनी सोहबत इख़्तियार करेगा वह उतना ही दीन के अन्दर तरक़्क़ी करेगा।

बहर हाल! यह हज़राते सहाबा-ए-किराम चूंकि नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से दूर रहते थे, इसी लिये ये हज़रात बीस दिन निकाल कर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में रहे और उन बीस दिनों में दीन की जो बुनियादी तालीमात थीं वे हासिल कर लीं, दीन का तरीक़ा सीख लिया और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सोहबत से फ़ैज़ हासिल करने वाले बन गये।

अपने छोटों का ख़्याल

फिर ख़ुद ही हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के दिल में यह ख़्याल आया कि ये नौजवान लो हैं, ये अपने घर बार छोड़ कर आये हैं, इसलिये इनको अपने घर वालों की याद आती होगी, और इनको अपने घर वालों से मिलने की ख़्वाहिश होगी, तो ख़ुद ही हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उनसे पूछा कि तुम अपने घर में किस किसको छोड़ कर आये हो?

उनमें से कुछ ऐसे नौजवान थे जो नये शादी शुदा थे। जब उन्होंने बताया कि हम फ़लां फ़लां को छोड़ कर आये हैं, तो आपने उनसे फ़रमाया कि अब तुम अपने घरों को वापस जाओ।

घर से दूरे रहने का उसूल

इस हदीस के तहत उलमा-ए-किराम ने यह मसला लिखा है कि जो आदमी शादी शुदा हो, उसको किसी सख़्त ज़रूरत के बग़ैर अपने घर से ज़्यादा समय तक दूर न रहना चाहिये, इसमें ख़ुद अपनी भी हिफ़ाज़त है और घर वालों की भी हिफ़ाज़त है। क्योंकि अल्लाह तआला ने हमें ऐसा दीन अता फ़रमाया है जिसमें तमाम सिम्तों और तमाम जानिबों की रियायत है, यह नहीं कि एक तरफ़ को झुकाव हो गया और दूसरे पहलू निगाहों से ओझल हो गये, बल्कि

इस दीने इस्लाम के अन्दर एतिदाल है, और इसी लिये इसको "दरमियानी उम्मत" से ताबीर फ़रमाया। इसलिये एक तरफ़ तो यह फ़रमा दिया कि दीन सीखने के लिये अच्छी सोहबत उठाओ, लेकिन दूसरी तरफ़ यह बता दिया कि ऐसा न हो कि अच्छी सोहबत उठाने के नतीजे में दूसरों के जो हुकूक़ तुम्हारे ज़िम्मे हैं वे पामाल होने लगें, बल्कि दोनों बातों की रियायत करनी चाहिये। चुनांचे उन हज़रात से फ़रमाया कि बीस दिन तक यहां क़ियाम कर लिया और ज़रूरी बातें तुमने इन दिनों के अन्दर सीख लीं, अब तुम्हारे ज़िम्मे तुम्हारे घर वालों के हुकूक़ हैं, और ख़ुद तुम्हारे अपने हुकूक़ हैं इसलिये तुम अपने घरों को वापस जाओ।

दूसरे हुकूक़ की अदायगी की तरफ़ तवज्जोह

अब आप ग़ौर करें कि उन्होंने बीस दिन में दीन की तमाम तफ़सीलात तो हासिल नहीं कर ली होंगी, और न ही दीन का सारा इल्म सीखा होगा। अगर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम चाहते तो उनसे फ़रमा देते कि अभी और क़ुरबानी दो और कुछ दिन और यहां रहो, ताकि तुम्हें दीन की सारी तफ़सीलात मालूम हो जायें, लेकिन हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने जब यह देखा कि उन्होंने दीन की ज़रूरी बातें सीख ली हैं, अब उनको दूसरे हुकूक़ की अदायगी के लिये भेजना चाहिये।

इतना इल्म सीखना लाज़मी फ़र्ज़ है

यहां यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि दीन के इल्म की दो क़िस्में हैं, पहली क़िस्म यह है कि दीन का इतना इल्म सीखना जो इन्सान को अपने फ़राइज़ और वाजिबात अदा करने के लिये ज़रूरी है, जैसे यह कि नमाज़ कैसे पढ़ी जाती है? नमाज़ों में रक्अतों की तायदाद कितनी है? नमाज़ में कितने फ़राइज़ और वाजिबात हैं? रोज़ा कैसे रखा जाता है, और किस वक़्त फ़र्ज़ होता है? ज़कात कब फ़र्ज़ होती है, और कितनी मिक़दार (मात्रा) में किन अफ़राद को अदा

की जाती है? और हज कब फ़र्ज़ होता है? और यह कि कौन सी चीज़ हलाल है और कौन सी चीज़ हराम है? जैसे झूठ बोलना हराम है, ग़ीबत करना हराम है, शराब पीना हराम है, सुअर खाना हराम है, यह हलाल व हराम की बुनियादी मोटी मोटी बातें सीखना, इसलिये इतनी मालूमात हासिल करना जिसके ज़रिये इन्सान अपने फ़राइज़ और वाजिबात अदा कर सके, और हराम से अपने आपको बचा सके, हर मुसलमान मर्द और औरत के ज़िम्मे लाज़मी फ़र्ज़ है। यह जो हदीस शरीफ़ में आया है कि:

"طلب العلم فريضة على كل مسلم ومسلمة"

यानी इल्म का तलब करना हर मुसलमान मर्द और औरत के ज़िम्मे फ़र्ज़ है। इस से मुराद यही इल्म है।

इतना इल्म हासिल करने के लिये जितनी भी कुरबानी देनी पड़े कुरबानी दे, जैसे मां बाप को छोड़ना पड़े तो छोड़े, बीवी को और बहन भाईयों को छोड़ना पड़े तो छोड़े, इसलिये कि इतना इल्म हासिल करना फ़र्ज़ है। अगर कोई यह इल्म हासिल करने से रोके, जैसे मां बाप रोकें, बीवी रोके, या बीवी को शौहर रोके तो उनकी बात मानना जायज़ नहीं।

यह इल्म फ़र्ज़े किफ़ाया है

इल्म की दूसरी क़िस्म यह है कि आदमी दीन के इल्म की बाक़ायदा पूरी तफ़सीलात हासिल करे और बाक़ायदा आलिम बने, यह हर इन्सान के ज़िम्मे फ़र्ज़े ऐन (लाज़मी फ़र्ज़) नहीं है, बल्कि यह इल्म फ़र्ज़े किफ़ाया है। अगर कुछ लोग आलिम बन जायें तो बाक़ी लोगों का फ़रीज़ा भी अदा हो जाता है। जैसे एक बस्ती में एक आलिम है और दीन की तमाम ज़रूरतों के लिये काफ़ी है, तो एक आदमी के आलिम बन जाने से बाक़ी लोगों का फ़रीज़ा भी साक़ित हो जायेगा, और अगर कोई बड़ी बस्ती हो या शहर हो तो उसके लिये जितने आलिमों की ज़रूरत हो, उस ज़रूरत के मुताबिक़ उतने

लोग आलिम बन जायें तो बाक़ी लोगों का फ़रीज़ा साक़ित हो जायेगा।

दीन की बातें घर वालों को सिखाओ

बहर हाल! जब हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने यह महसूस किया कि इन हज़रात ने फ़र्ज़े ऐन के लायक़ जो इल्म था वह बीस दिन में हासिल कर लिया है, और अब उनको और यहां रोकने में यह अन्देशा है कि उनके घर वालों की हक़ तल्फ़ी न हो। इसलिये आपने उन हज़रात से फ़रमाया कि अब आप अपने घरों को वापस जाओ, लेकिन साथ ही यह तंबीह भी फ़रमा दी कि यह न हो कि घर वालों के पास जाकर ग़फ़लत के साथ ज़िन्दगी गुज़ारना शुरू कर दो, बल्कि आपने फ़रमाया कि जो कुछ तुमने यहां रह कर इल्म हासिल किया और जो कुछ दीन की बातें यहां सीखीं वे बातें अपने घर वालों को जाकर सिखाओ। इस से पता चला कि हर इन्सान के ज़िम्मे यह भी फ़र्ज़ है कि वह जिस तरह ख़ुद दीन की बातें सीखता है, अपने घर वालों को भी सिखाये, उनको इतनी दीन की बातें सिखाना जिनके ज़रिये वे सही मायनों में मुसलमान बन सकें और मुसलमान रह सकें, यह तालीम देना भी हर मुसलमान के ज़िम्मे फ़र्ज़े ऐन है। और यह ऐसा ही फ़र्ज़ है जैसे नमाज़ पढ़ना फ़र्ज़ है, जैसे रमज़ान में रोज़े रखना फ़र्ज़ है, ज़कात अदा करना और हज अदा करना फ़र्ज़ है, ये काम जितने ज़रूरी हैं, इतना ही घर वालों को दीन सिखाना भी ज़रूरी है।

औलाद की तरफ़ से ग़फ़लत

हमारे समाज में इस बारे में बड़ी कोताही पाई जाती है, अच्छे ख़ासे पढ़े लिखे, समझदार और बज़ाहिर दीनदार लोग भी अपनी औलाद को दीनी तालीम देने की फ़िक्र नहीं करते। औलाद को न तो कुरआने करीम सही तरीक़े से पढ़ना आता है, न उनको नमाज़ों का सही तरीक़ा आता है, और न ही उनको दीन की बुनियादी मालूमात

हासिल हैं। दुनियावी तालीम आला दर्जे की हासिल करने के बावजूद उनको यह पता नहीं होता कि फ़र्ज़ और सुन्नत में क्या फ़र्क़ होता है, इसलिये औलाद को दीन सिखाने का इतना ही एहतिमाम करना चाहिये जितना खुद नमाज़ पढ़ने का एहतिमाम करते हैं। और आगे आपने फ़रमाया कि जाकर घर वालों को हुक्म दो, यानी उनको दीन की बातों का और फ़राइज़ पर अ़मल करने का हुक्म दो।

किस तरह नमाज़ पढ़नी चाहिए

फिर फ़रमायाः

"صَلُّوا كَمَا رَأَيْتُمُونِي أُصَلِّي"

यानी अपने वतन जाकर इसी तरह नमाज़ पढ़ना जिस तरह तुमने मुझे नमाज़ पढ़ते हुए दखा है, अब यह देखिये कि आपने उनसे सिर्फ़ यह नहीं फ़रमाया कि नमाज़ पढ़ते रहना, बल्कि यह फ़रमाया कि नमाज़ इस तरह पढ़ना जिस तरह तुमने मुझे पढ़ते हुए देखा है। यानी यह नमाज़ दीन का सतून है, इसलिये इसको ठीक इसी तरह अदा करने की कोशिश करनी चाहिए जिस तरह हुज़ूर नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से साबित और मन्कूल है, यह मसला भी हमारे समाज में बड़ी तवज्जोह का तालिब है, अल्लाह तआ़ला के फ़ज़्ल व करम से बहुत से लोग नमाज़ पढ़ते तो हैं, लेकिन वह पढ़ना ऐसा होता है जैसे सर से एक बोझ उतार दिया, न इसकी फ़िक्र कि क़ियाम सही हुआ या नहीं? रुकू सही हुआ या नहीं? सज्दा सही हुआ या नहीं? और यह अर्कान सुन्नत के मुताबिक़ अदा हुए या नहीं?

बस जल्दी जल्दी नमाज़ पढ़ कर फ़ारिग़ हो गये और सर से फ़रीज़ा उतार दिया, हालांकि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम यह फ़रमा रहे हैं किः

"صَلُّوا كَمَا رَأَيْتُمُونِي أُصَلِّي"

यानी जिस तरह मुझे नमाज़ पढ़ते हुए देखा है, इसी तरह नमाज़

पढ़ो।

नमाज़ सुन्नत के मुताबिक़ पढ़िये

देखिये! अगर नमाज़ सुन्नत के मुताबिक़ इस तरह पढ़ी जाये जिस तरह नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से साबित है, तो इसमें कोई ज़्यादा वक़्त ख़र्च नहीं होता, न ही ज़्यादा मेहनत लगती है, बल्कि उतना ही वक़्त ख़र्च होगा और उतनी ही मेहनत ख़र्च होगी जितनी कि इस तरीक़े से पढ़ने में लगती है जिस तरीक़े से हम पढ़ते हैं, लेकिन अगर थोड़ा सा ध्यान और तवज्जोह कर ली जाये कि जो नमाज़ मैं पढ़ रहा हूं वह सुन्नत के मुताबिक़ हो जाये, तो उस तवज्जोह के नतीजे में वही नमाज़ सुन्नत के नूर से मुनव्वर और रोशन हो जायेगी, और ग़फ़लत से अपने तरीक़े से पढ़ते रहोगे तो फ़रीज़ा तो अदा हो जायेगा और नमाज़ छोड़ने का गुनाह भी न होगा, लेकिन सुन्नत का जो नूर है, जो उसकी बर्कत है और उसके जो फ़ायदे हैं वे हासिल न होंगे।

एक बार मैंने इसी मज्लिस में तफ़सील से अर्ज़ किया था कि सुन्नत के मुताबिक़ किस तरह नमाज़ पढ़ी जाती है, वह बयान किताब की शक्ल में छप चुका है, जिसका नाम "नमाज़ें सुन्नत के मुताबिक़ पढ़िये" है, यह एक छोटा सा रिसाला है और आम तौर पर लोग नमाज़ में जो ग़लतियां करते हैं उसमें उनकी निशान देही कर दी है, आप उस रिसाले को पढ़ें और फिर अपनी नमाज़ का जायज़ा लें, और यह देखें कि जिस तरीक़े से आप नमाज़ पढ़ते हैं उसमें और जो तरीक़ा उस रिसाले में लिखा है उसमें क्या फ़र्क़ है? आप अन्दाज़ा लगायेंगे कि उस रिसाले के मुताबिक़ नमाज़ पढ़ने में कोई ज़्यादा वक़्त ख़र्च नहीं होगा, ज़्यादा मेहनत नहीं लगेगी, लेकिन सुन्नत का नूर हासिल हो जायेगा। इसलिये हर मुसलमान को इसकी फ़िक्र करनी चाहिये।

हज़रत मुफ़्ती साहिब रह. का नमाज़ की दुरुस्ती का ख़्याल

मेरे वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह्मतुल्लाहि अलैहि की तिरासी (८३) साल की उम्र में वफ़ात हुई, बचपन से दीन ही पढ़ना शुरू किया, सारी उम्र दीन ही की तालीम दी और फ़तवे लिखे, यहां तक कि हिन्दुस्तान में दारुल उलूम देवबन्द के मुफ़्ती–ए–आज़म क़रार पाये, फिर जब पाकिस्तान तशरीफ़ लाये तो यहां पर भी "मुफ़्ती–ए–आज़म" के लक़ब से मश्हूर हुए, और बिला मुबालगा लाखों फ़तवों के जवाब ज़बानी और लिखित रूप में दिये, और सारी उम्र पढ़ने पढ़ाने में गुज़ारी। एक बार फ़रमाने लगे कि मेरी सारी उम्र फ़िक़ा (मसाइल वग़ैरह) पढ़ने पढ़ाने में गुज़री, लेकिन अब भी कभी कभी नमाज़ पढ़ते हुए ऐसी सूरते हाल पैदा हो जाती है कि समझ में नहीं आता कि अब क्या करूं। चुनांचे नमाज़ पढ़ने के बाद किताब देख कर यह पता लगाता हूं कि मेरी नमाज़ दुरुस्त हुई या नहीं? लेकिन मैं लोगों को देखता हूं कि किसी के दिल में यह ख़्याल ही पैदा नहीं होता कि नमाज़ दुरुस्त हुई या नहीं? बस पढ ली और सुन्नत के मुताबिक़ होने या न होने का ख़्याल तो बहुत दूर की बात है।

नमाज़ फ़ासिद हो जायेगी

नमाज़ की सफ़ों में रोज़ाना यह मन्ज़र नज़र आता है कि लोग आराम से बिल्कुल बेपरवाह होकर नमाज़ में खड़े सर खुजला रहे हैं, या दोनों हाथ चेहरे पर फेर रहे हैं। याद रखिये! इस तरह अगर दोनों हाथों से कोई काम कर लिया और उस हालत में इतना वक़्त गुज़र गया कि जितनी देर में तीन बार "सुब्हा–न रब्बियल आला" की तस्बीह पढ़ी जा सके तो बस नमाज़ टूट गयी, फ़ासिद हो गयी, फ़रीज़ा ही अदा न हुआ। लेकिन लोगों को इसकी कोई परवाह नहीं, कभी कभी दोनों हाथों से कपडे दुरुस्त कर रहे हैं, या दोनों हाथों से पसीना साफ़ कर रहे हैं, हालांकि इस तरह करने में ज़्यादा वक़्त लग जाये तो नमाज़ ही फ़ासिद हो जाती है। याद रखिये! नमाज़ में ऐसी

हैअत (शक्ल व सूरत) इख़्तियार करना जिस से देखने वाला यह समझे कि शायद यह नमाज़ नहीं पढ़ रहा है, तो ऐसी हैअत से नमाज़ फ़ासिद हो जाती है। और अगर कोई शख़्स नमाज़ में एक हाथ से काम करे, उसके बारे में फ़ुक़हा–ए–किराम ने यह मसला लिखा है कि अगर कोई शख़्स एक रुक्न में बराबर तीन बार एक हाथ से कोई काम करे कि देखने वाला उसे नमाज़ में न समझे तो नमाज़ फ़ासिद हो जायेगी। इसी तरह सज्दा करते वक़्त पेशानी (माथा) तो ज़मीन पर टिकी हुई है, लेकिन दोनों पांव ज़मीन से उठे हुए हैं, अगर पूरे सज्दे में दोनों पांव पूरे उठे रहे और ज़रा सी देर के लिये भी ज़मीन पर न टिके तो सज्दा अदा न हुआ, और जब सज्दा अदा न हुआ तो नमाज़ भी दुरुस्त न हुई।

सिर्फ़ नियत का दुरुस्त कर लेना काफ़ी नहीं

ये चन्द बातें मिसाल के तौर पर अर्ज़ कर दीं, इनकी तरफ़ तवज्जोह और ध्यान नहीं, और इनकी इस्लाह और दुरुस्ती (सुधार) की फ़िक्र नहीं, बल्कि उनकी तरफ़ से ग़फ़लत है। वक़्त भी ख़र्च कर रहे हैं, नमाज़ भी पढ़ रहे हैं, लेकिन उसको सही तरीक़े से अदा करने की फ़िक्र नहीं, इसका नतीजा यह है कि करी कराई मेहनत अकारत जा रही है। और अब तो यह हाल है कि अगर किसी को बताया जाये कि भाई! नमाज़ में ऐसी हर्कत नहीं करनी चाहिये तो एक टक्साली जवाब हर शख़्स को याद है, बस वह जवाब दे दिया जाता है, वह यह कि: "अल आमालु बिन्नियात" यह ऐसा जवाब है कि जो हर जगह जाकर फ़िट हो जाता है। यानी हमारी नियत तो दुरुस्त है, और अल्लाह मियां नियत को देखने वाले हैं। अरे भाई! अगर नियत ही काफ़ी थी तो यह सब तकल्लुफ़ करने की क्या ज़रूरत थी, बस घर में बैठ कर नियत कर लेते कि हम अल्लाह मियां की नमाज़ पढ़ रहे हैं, बस नमाज़ अदा हो जाती। अरे भाई! नियत के मुताबिक़ अमल भी तो चाहिये। जैसे आपने यह नियत तो कर ली कि मैं लाहौर जा रहा हूं, और कोयटा वाली गाड़ी में बैठ गये तो क्या ख़ाली यह नियत करने से कि मैं लाहौर जा रहा हूं, क्या तुम

लाहौर पहुंच जाओगे? इसी तरह अगर नियत कर ली कि मैं नमाज़ पढ़ रहा हूं, लेकिन नमाज़ पढ़ने का सही तरीक़ा इख़्तियार नहीं किया, तो सिर्फ़ नियत करने से नमाज़ किस तरह दुरुस्त होगी? जब वह तरीक़ा इख़्तियार नहीं किया तो सिर्फ़ नियत करने से नमाज़ किस तरह दुरुस्त होगी? जब वह तरीक़ा इख़्तियार न किया हो जो जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने बयान फ़रमाया है। इसी लिये आपने उन नौजवानों को रुख़्सत करते हुए इर्शाद फ़रमाया कि इस तरह नमाज़ पढ़ो जिस तरह तुमने मुझे नमाज़ पढ़ते हुए देखा है। अल्लाह तआ़ला हम सबको सुन्नत के मुताबिक़ नमाज़ पढ़ने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, आमीन।

अज़ान की अहमियत

फिर आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उनसे फ़रमायाः

"فاذا حضرت الصلوٰۃ فلیؤذن لکم احدکم"

यानी जब नमाज़ का वक़्त आ जाये तो तुम में से एक शख़्स अज़ान दे, यह अज़ान देना मसनून है। अगर फ़र्ज़ करें कोई शख़्स मस्जिद में नमाज़ नहीं पढ़ रहा है बल्कि जंगल या बयाबान में नमाज़ पढ़ रहा है तो उस वक़्त भी सुन्नत यह है कि अज़ान दे, यहां तक कि अगर आदमी अकेला है तब भी हुक्म यह है कि अज़ान देकर नमाज़ पढ़े। क्योंकि अज़ान अल्लाह के दीन का एक शिआ़र और निशानी है, इसलिये हर नमाज़ के वक़्त अज़ान का हुक्म है। बाज़ उलमा-ए-किराम से सवाल किया गया कि जंगल और बयाबान में अज़ान देने से क्या फ़ायदा है? जब कि किसी और इन्सान के सुनने और सुनकर नमाज़ के लिये आने की कोई उम्मीद नहीं है। या जैसे ग़ैर मुस्लिमों का इलाक़ा है, तो फिर अज़ान देने से क्या फ़ायदा? इसलिये कि अज़ान की आवाज़ सुनकर कौन नमाज़ के लिये आयेगा? तो उलमा-ए-किराम ने जवाब में फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला की मख़्लूक़ बेशुमार हैं, हो सकता है कि इन्सान उस आवाज़ को न सुनें, लेकिन हो सकता है कि जिन्नात अज़ान की आवाज़ सुनकर आ

जायें, या फ़रिश्ते आ जायें और वे तुम्हारी नमाज़ में शरीक हो जायें। बहर हाल! हुक्म यह है कि नमाज़ से पहले अज़ान दो, चाहे तुम अकेले ही हो।

बड़े को इमाम बनायें

फिर आपने फ़रमाया किः

"وليؤمكم اكبركم"

यानी तुम में से जो शख़्स उम्र में बड़ा हो वह इमामत करे। असल हुक्म यह है कि जमाअत के वक़्त बहुत से लोग मौजूद हैं तो उनमें जो शख़्स इल्म में ज़्यादा हो, उसको इमामत के लिये आगे करना चाहिये, लेकिन यहां पर चूंकि इल्म के एतिबार से ये हज़रात बराबर थे, सब इकट्ठे हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में आये थे। जो इल्म एक ने सीखा वही इल्म दूसरे ने भी सीखा, और हुक्म यह है कि जब इल्म में सब बराबर हों तो फिर ज़ो शख़्स उम्र में बड़ा हो उसको आगे करना चाहिए, यह अल्लाह तआला ने बड़े आदमी का एक ऐज़ाज़ और सम्मान रखा है कि जिसको अल्लाह तआला ने उम्र में बड़ा बनाया है, छोटों को चाहिये कि उसको बड़ा मानें और बड़ा मान कर उसको आगे करें।

बड़े को बड़ाई देना इस्लामी अदब है

हदीस शरीफ़ में आता है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के ज़माने में ख़ैबर, जो यहूदियों की बस्ती थी, वहां पर एक मुसलमान को यहूदियों ने क़त्ल कर दिया, जिन साहिब को क़त्ल किया गया था उनके एक भाई थे, जो उस क़त्ल होने वाले आदमी के वली थे, वारिस थे। वह भाई अपने चचा को लेकर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के पास यह बताने आये कि हमारा भाई क़त्ल कर दिया गया, अब उसके बदला लेने का क्या तरीक़ा होना चाहिये। चूंकि यह भाई थे, यह रिश्ते के एतिबार से क़त्ल होने वाले शख़्स के ज़्यादा क़रीबी थे, और दूसरे चचा थे। ये दोनों हुज़ूरे

अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में पहुंचे और क़त्ल होने वाले के भाई ने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से बात करनी शुरू कर दी और चचा ख़ामोश बैठे थे, तो उस वक़्त हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने क़त्ल होने वाले के भाई से फ़रमाया कि: "बड़े को बड़ाई दो" यानी जब एक बड़ा तुम्हारे साथ मौजूद है तो फिर तुम्हें गुफ़्तगू की शुरूआत न करनी चाहिये, बल्कि तुम्हें अपने चचा को कहना चाहिये कि गुफ़्तगू की शुरूआत करें, फिर जब ज़रूरत हो तो तुम भी दरमियान में गुफ़्तगू कर लेना, लेकिन बड़े को बड़ाई दो, यह भी इस्लामी आदाब का एक तक़ाज़ा है कि जो उम्र में बड़ा हो उसको आगे किया जाये, अगरचे उसको दूसरी कोई फ़ज़ीलत हासिल नहीं है, सिर्फ़ बड़ी उम्र होने की फ़ज़ीलत हासिल है, तो उसका भी अदब और लिहाज़ किया जाये और उसको आगे रखा जाये, न कि छोटा आगे बढ़ने की कोशिश करे। इसी लिये आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उन नौजवानों से फ़रमाया कि जब नमाज़ का वक़्त आ जाये तो तुम में से जो उम्र में बड़ा हो, उसको इमाम बना दो, इसलिये कि इमामत का मन्सब (ओहदा) ऐसे आदमी को देना चाहिये जो सब में इल्म के एतिबार से बढ़ा हुआ हो, या कम से कम उम्र के एतिबार से ज़्यादा हो। अल्लाह तआला हमें इन बातों पर अमल करने की हिम्मत और तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

وآخر دعوانا ان الحمد لله رب العالمين

इस्तिख़ारा का मसनून तरीक़ा

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

عن مكحول الازدى رحمه الله تعالىٰ، قال سمعت ابن عمر رضى الله تعالىٰ عنه يقول: ان الرجل يستخير الله تبارك و تعالىٰ فيختارلهٗ، فيسخط علىٰ ربه عزوجل، فلا يلبث ان ينظر فى العاقبة فاذا هوخيرله۔

(كتاب الزهد لابن مبارك، زيادات الزهد لنعيم بن حماد ص:٣٢)

हदीस का मतलब

यह हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उम्र रज़ियल्लाहु अ़न्हु का एक इर्शाद है, फ़रमाते हैं कि कभी कभी इन्सान अल्लाह तआ़ला से इस्तिख़ारा करता है कि जिस काम में मेरे लिये ख़ैर हो वह काम हो जाये, तो अल्लाह तआ़ला उसके लिये वह काम इख़्तियार फ़रमा देते हैं जो उसके हक़ में बेहतर होता है, लेकिन ज़ाहिरी एतिबार से वह काम उस बन्दे की समझ में नहीं आता तो वह बन्दा अपने परवर्दिगार पर नाराज़ होता है कि मैंने अल्लाह तआ़ला से तो यह कहा था कि मेरे लिये अच्छा काम तलाश कीजिये, लेकिन जो काम मिला वह तो मुझे अच्छा नज़र नहीं आ रहा है, उसमें तो मेरे लिये तकलीफ़ और परेशानी है। लेकिन कुछ वक़्त के बाद जब अन्जाम सामने आता है

तब उसको पता चलता है कि हक़ीक़त में अल्लाह तआला ने मेरे लिये जो फ़ैसला किया था वही मेरे हक़ में बेहतर था, उस वक़्त उसको पता नहीं था और यह समझ रहा था कि मेरे साथ ज़्यादती और ज़ुल्म हुआ है, और अल्लाह तआला के फ़ैसले का सही होना कभी कभी दुनिया में ज़ाहिर हो जाता है और कभी कभी आख़िरत में ज़ाहिर होगा।

इस रिवायत में चन्द बातें क़ाबिले ज़िक्र हैं, उनको समझ लेना चाहिये। पहली बात यह है कि जब कोई बन्दा अल्लाह तआला से इस्तिख़ारा करता है तो अल्लाह तआला उसके लिये ख़ैर का फ़ैसला फ़रमा देते हैं।

इस्तिख़ारा किसे कहते हैं? इस बारे में लोगों के दरमियान तरह तरह की ग़लत फ़हमियां पाई जाती हैं। आम तौर पर लोग यह समझते हैं कि "इस्तिख़ारा करने का कोई ख़ास तरीक़ा और ख़ास अमल होता है, उसके बाद कोई ख़्वाब नज़र आता है, और उस ख़्वाब के अन्दर हिदायत दी जाती है कि फ़लां काम करो या न करो। ख़ूब समझ लें कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से "इस्तिख़ारा" का जो मसनून तरीक़ा साबित है उसमें इस क़िस्म की कोई बात मौजूद नहीं।

इस्तिख़ारा का तरीक़ा और उसकी दुआ

"इस्तिख़ारा" का मसनून तरीक़ा यह है कि आदमी दो रक्अत नफ़िल इस्तिख़ारा की नियत से पढ़े, नियत यह करे कि मेरे सामने दो रास्ते हैं, उनमें से जो रास्ता मेरे हक़ में बेहतर हो, अल्लाह तआला उसका फ़ैसला फ़रमा दें, फिर दो रक्अत पढ़े और नमाज़ के बाद इस्तिख़ारा की वह मसनून दुआ पढ़े जो हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने तल्क़ीन फ़रमाई है। यह बड़ी अजीब दुआ है, पैग़म्बर ही यह दुआ मांग सकता है, और किसी के बस की बात नहीं। अगर इन्सान ऐड़ी चोटी का ज़ोर लगा लेता तो भी ऐसी दुआ कभी न कर सकता जो नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने तल्क़ीन फ़रमाई, वह दुआ यह है:

"अल्लाहुम्–म इन्नी अस्तख़ीरु–क बिइल्मि–क व अस्तक़्दिरु–क बिक़ुदरति–क व अस्अलु–क मिन फ़ज़्लिकल अज़ीम, फ़इन्न–क तक़्दिरु व ला अक़्दिरु, व तअ्लमु व ला अअ्लमु, व अन्–त अल्लामुल ग़ुयूब, अल्लाहुम्–म इन कुन्–त तअ्लमु अन्–न हाज़ल अम्–र ख़ैरुल्ली फी दीनी व मआशती व आक़िबति अम्री, औ क़ा–ल फी आजिलि अम्री व आजिलिही फ़यस्सिरहु ली सुम्–म बारिक ली फीहि, व इन कुन्–त तअ्लमु अन्–न हाज़ल अम्–र शर्रुल्ली फी दीनी व मआशती व आक़िबति अम्री, औ क़ा–ल फी आजिलि अम्री व आजिलिही फ़सरिफ़हु अन्नी वसरिफ़नी अन्हु वक़्दिर लियल– ख़ै–र हैसु का–न सुम्मर्ज़िनी बिही" (तिर्मिज़ी शरीफ़)

दुआ का तर्जुमा

ऐ अल्लाह! मैं आपके इल्म का वास्ता देकर आप से ख़ैर तलब करता हूं और आपकी कुदरत का वास्ता देकर मैं अच्छाई पर कुदरत तलब करता हूं। आप ग़ैब को जानने वाले हैं। ऐ अल्लाह! आप इल्म रखते हैं, मैं इल्म नहीं रखता, यानी यह मामला मेरे हक़ में बेहतर है या नहीं, इसका इल्म आपको है मुझे नहीं। या अल्लाह! अगर आपके इल्म में है कि यह मामला (इस जगह पर उस मामले का तसव्वुर दिल में लाये जिसके लिये इस्तिख़ारा कर रहा है) मेरे हक़ में बेहतर है, मेरे दीन के लिये बेहतर है, मेरी मआश और दुनिया के एतिबार से भी बेहतर है, और अन्जाम कार के एतिबार से भी बेहतर है तो इसको मेरे लिये मुक़द्दर फ़रमा दीजिये, और इसको मेरे लिये आसान फ़रमा दीजिये, और इसमें मेरे लिये बर्कत पैदा फ़रमा दीजिये। और अगर आपके इल्म में यह बात है कि यह मामला मेरे हक़ में बुरा है, मेरे दीन के हक़ में बुरा है, या मेरी दुनिया और मआश के हक़ में बुरा है या मेरे अन्जाम कार के एतिबार से बुरा है, तो इस काम को मुझ से फेर दीजिये और मेरे लिये ख़ैर मुक़द्दर फ़रमा दीजिये जहां भी हो। यानी अगर यह मामला मेरे लिये बेहतर नहीं है तो इसको तो छोड़ दीजिये और इसके बदले जो काम मेरे लिये बेहतर हो उसको मुक़द्दर फ़रमा दीजिये फिर मुझे उस पर राज़ी भी कर दीजिये और

उस पर मुत्मइन (संतुष्ट) भी कर दीजिये।

दो रक्अत पढ़ने के बाद अल्लाह तआ़ला से यह दुआ कर ली तो बस इस्तिख़ारा हो गया।

इस्तिख़ारा का कोई वक़्त मुक़र्रर नहीं

बाज़ लोग यह समझते हैं कि इस्तिख़ारा हमेशा रात को सोते वक़्त ही करना चाहिये, या इशा की नमाज़ के बाद ही करना चाहिये, ऐसा कोई ज़रूरी नहीं, बल्कि जब भी मौक़ा मिले उस वक़्त यह इस्तिख़ारा कर ले, न रात की कोई क़ैद है और न दिन की कोई क़ैद है, न सोने की कोई क़ैद है और न जागने की कोई क़ैद है।

ख़्वाब आना ज़रूरी नहीं

बाज़ लोग यह समझते हैं कि इस्तिख़ारा करने के बाद ख़्वाब आयेगा और ख़्वाब के ज़रिये हमें बताया जायेगा कि यह काम करो या न करो। याद रखिये! ख़्वाब आना कोई ज़रूरी नहीं कि ख़्वाब में कोई बात ज़रूर बताई जाये या ख़्वाब में कोई इशारा ज़रूर दिया जाये, कभी ख़्वाब में आ जाता है और कभी ख़्वाब में नहीं आता।

इस्तिख़ारा का नतीजा

बाज़ हज़रात का कहना यह है कि इस्तिख़ारा करने के बाद ख़ुद इन्सान के दिल का रुझान एक तरफ़ हो जाता है, बस जिस तरफ़ रुझान हो जाये वह काम कर ले, और ज़्यादातर ऐसा रुझान हो जाता है, लेकिन फ़र्ज़ करें कि अगर किसी एक तरफ़ दिल में रुझान न भी हो, बल्कि दिल में कश्मकश मौजूद हो तो भी इस्तिख़ारा का मक़सद फिर भी हासिल है, इसलिये कि बन्दे के इस्तिख़ारा करने के बाद अल्लाह तआ़ला वही करते हैं जो उसके हक़ में बेहतर होता है, उसके बाद हालात ऐसे पैदा हो जाते हैं फिर वही होता है जिसमें बन्दे के लिये ख़ैर होती है और उसको पहले से पता भी नहीं होता। कभी कभी इन्सान एक रास्ते को बहुत अच्छा समझ रहा होता है लेकिन अचानक रुकावटें पैदा हो जाती हैं और अल्लाह तआ़ला

उसको उस बन्दे से फेर देते हैं। इसलिये अल्लाह तआ़ला इस्तिख़ारा के बाद असबाब ऐसे पैदा फ़रमा देते हैं कि फिर वही होता है जिसमें बन्दे के लिये ख़ैर होती है, अब ख़ैर किस में है? इन्सान को पता नहीं होता, लेकिन अल्लाह तआ़ला फ़ैसला फ़रमा देते हैं।

तुम्हारे हक़ में यही बेहतर था

अब जब वह काम हो गया तो अब ज़ाहिरी एतिबार से कभी कभी ऐसा लगता है कि जो काम हुआ वह अच्छा नज़र नहीं आ रहा है, दिल के मुताबिक़ नहीं है, तो अब बन्दा अल्लाह तआ़ला से शिकवा करता है कि या अल्लाह! मैंने आप से मश्विरा और इस्तिख़ारा किया था मगर काम वह हो गया जो मेरी मर्ज़ी और तबीयत के ख़िलाफ़ है और बज़ाहिर यह काम अच्छा मालूम नहीं हो रहा है। उस पर हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उम्र रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमा रहे हैं कि अरे नादान! तू अपनी महदूद (सीमित) अ़क्ल से सोच रहा है कि यह काम तेरे हक़ में बेहतर नहीं हुआ, लेकिन जिसके इल्म में सारी कायनात का निज़ाम है, वह जानता है कि तेरे हक़ में क्या बेहतर था और क्या बेहतर नहीं था, उसने जो किया वही तेरे हक़ में बेहतर था। कभी कभी दुनिया में तुझे पता चल जायेगा कि तेरे हक में क्या बेहतर था और कभी कभी पूरी ज़िन्दगी में भी पता नहीं चलेगा, जब आख़िरत में पहुंचेगा तब वहां जाकर पता चलेगा कि हक़ीक़त में यही मेरे लिये बेहतर था।

तुम बच्चे की तरह हो

इसकी मिसाल यों समझें कि जैसे एक बच्चा है जो मां बाप के सामने मचल रहा है कि फ़लां चीज़ खाऊंगा, और मां बाप जानते हैं कि इस वक़्त बच्चे का यह चीज़ खाना बच्चे के लिये नुक़सान देह है और ख़तरनाक है, चुनांचे मां बाप बच्चे को वह चीज़ नहीं देते, अब बच्चा अपनी नादानी की वजह से यह समझता है कि मेरे मां बाप ने मेरे साथ ज़ुल्म किया, मैं जो चीज़ मांग रहा था वह चीज़ मुझे नहीं

दी, और उसके बदले में मुझे कड़वी कड़वी दवा खिला रहे हैं। अब वह बच्चा उस दवा को अपने हक़ में ख़ैर नहीं समझ रहा है, लेकिन बड़ा होने के बाद जब अल्लाह तआला उस बच्चे को अक़्ल और समझ अता फ़रमायेंगे और उसको समझ आयेगी तो उस वक़्त उसको पता चलेगा कि मैं अपने लिये मौत मांग रहा था और मेरे मां बाप मेरे लिये ज़िन्दगी और सेहत का रास्ता तलाश कर रहे थे। अल्लाह तआला तो अपने बन्दों पर मां बाप से ज़्यादा मेहरबान हैं, इसलिये अल्लाह तआला वह रास्ता इख़्तियार फ़रमाते हैं जो अन्जाम कार बन्दे के लिये बेहतर होता है। अब कभी कभी उसका बेहतर होना दुनिया में पता चल जाता है और बहुत सी बार दुनिया में पता नहीं चलता।

हज़रत मूसा अ़लै. का एक वाक़िआ

मेरे शैख़ हज़रत डॉ. अ़ब्दुल हई साहिब रह्मतुल्लाहि अ़लैहि ने एक बार एक वाक़िआ सुनाया, यह वाक़िआ मैंने उन्हीं से सुना है कहीं किताब में नज़र से नहीं गुज़रा, लेकिन किताबों में किसी जगह नक़्ल किया गया होगा।

वह यह है कि जब मूसा अ़लैहिस्सलाम अल्लाह तआ़ला से हम-कलाम होने लिये तूर पहाड़ पर तश्रीफ़ लेजा रहे थे तो रास्ते में एक शख़्स ने हज़रत मूसा अ़लैहिस्सलाम से कहा कि हज़रत! आप अल्लाह तआ़ला से कलाम करने के लिये तश्रीफ़ लेजा रहे हैं, आपको अल्लाह तआ़ला से बात चीत करने का शर्फ़ हासिल होगा, और अपनी ख़्वाहिशें, अपनी तमन्नायें और अपनी आरज़ुएं अल्लाह तआ़ला के सामने पेश करने का इस से ज़्यादा अच्छा मौक़ा और क्या हो सकता है, इसलिये जब आप वहां पहुंचें तो मेरे हक़ में भी दुआ़ कर दीजियेगा, क्योंकि मेरी ज़िन्दगी में मुसीबतें बहुत हैं और मेरे ऊपर तक्लीफ़ों का एक पहाड़ टूटा हुआ है, फ़क्र और तंगी का आ़लम है और तरह तरह की परेशानियों में गिरफ़्तार हूं। मेरे लिये अल्लाह तआ़ला से यह दुआ़ कीजिये कि अल्लाह तआ़ला मुझे राहत

और आफ़ियत अता फ़रमा दें। हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम ने वायदा किया कि अच्छी बात है, मैं तुम्हारे लिये दुआ करूंगा।

जाओ हमने उसको ज़्यादा दे दी

जब तूर पहाड़ पर पहुंचे तो अल्लाह तआला से गुफ़्तगू हुई, गुफ़्तगू के बाद आपको वह शख़्स याद आया जिसने दुआ के लिये कहा था, आपने दुआ की, या अल्लाह! आपका एक बन्दा है जो फ़लां जगह रहता है, उसका यह नाम है, उसने मुझ से कहा था कि जब मैं आपके सामने हाज़िर हूं तो उसकी परेशानी पेश कर दूं। या अल्लाह! वह भी आपका बन्दा है, आप अपनी रहमत से उसको राहत अता फ़रमा दीजिये ताकि वह आराम और आफ़ियत में आ जाये और उसकी मुसीबतें दूर हो जायें और उसको भी अपनी नेमतें अता फ़रमा दें। अल्लाह तआला ने पूछा कि ऐ मूसा! उसको थोड़ी नेमत दूं या ज़्यादा दूं? हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम ने सोचा कि जब अल्लाह तआला से मां रहे हैं तो थोड़ी क्यों मांगें, इसलिये उन्होंने अल्लाह तआला से फ़रमाया कि या अल्लाह! जब नेमत देनी है तो ज़्यादा ही दीजिये। अल्लाह तआला ने फ़रमाया, जाओ हमने उसको ज़्यादा दे दी। हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम मुत्मइन हो गये। उसके बाद तूर पहाड़ पर जितने दिन ठहरना था ठहरे।

सारी दुनिया भी थोड़ी है

जब तूर पहाड़ से वापस तशरीफ़ ले जाने लगे तो ख़्याल आया कि जाकर ज़रा उस बन्दे का हाल देखें कि वह किस हाल में है, क्योंकि अल्लाह तआला ने उसके हक़ में दुआ क़बूल फ़रमा ली थी। चुनांचे उसके घर जाकर दरवाज़े पर दस्तक दी तो एक दूसरा शख़्स बाहर निकला, आपने फ़रमाया कि मुझे फ़लां से मुलाक़ात करनी है, उसने कहा कि उसका तो काफ़ी ज़माना हुआ इन्तिक़ाल हो चुका है। आपने पूछा कि कब इन्तिक़ाल हुआ? उसने कहा कि फ़लां दिन और फ़लां वक़्त इन्तिक़ाल हुआ। हज़रत मूसा अलैहिस्सलाम ने अन्दाज़ा

लगाया कि जिस वक़्त मैंने उसके हक़ में दुआ की थी उसके थोड़ी देर के बाद ही उसका इन्तिक़ाल हुआ है। अब मूसा अलैहिस्सलाम बहुत परेशान हुए और अल्लाह तआला से अर्ज़ किया कि या अल्लाह! यह बात मेरी समझ में नहीं आई, मैंने उसके लिये आफ़ियत और राहत मांगी थी और नेमत मांगी थी, मगर आपने उसको ज़िन्दगी से ख़त्म कर दिया?

अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि हमने तुम से पूछा था कि थोड़ी नेमत दें या ज़्यादा दें, तुमने कहा था कि ज़्यादा दें। अगर हम सारी दुनिया भी उठा कर दे देते तब भी थोड़ी ही होती, और अब हमने उसको आख़िरत और जन्नत की जो नेमतें दी हैं, उन पर वाक़ई यह बात सादिक़ आती है कि वे ज़्यादा नेमतें हैं। दुनिया के अन्दर ज़्यादा नेमतें उसको मिल ही नहीं सकती थीं, इसलिये हमने उसको आख़िरत की नमतें अता फ़रमा दीं।

यह इन्सान किस तरह अपनी महदूद (सीमित) अक़्ल से अल्लाह तआला के फ़ैसलों तक पहुंच सकता है, वही जानते हैं कि किस बन्दे के हक़ में क्या बेहतर है, और इन्सान सिर्फ़ ज़ाहिर में चन्द चीज़ों को देख कर अल्लाह तआला से शिकवा करने लगता है और अल्लाह तआला के फ़ैसलों को बुरा मानने लगता है, लेकिन हकीक़त यह है कि अल्लाह तआला से बेहतर फ़ैसला कोई नहीं कर सकता कि किसके हक़ में क्या बेहतर है।

इस्तिख़ारा करने के बाद मुत्मइन हो जाओ

इसी वजह से इस हदीस में हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि जब तुम किसी काम का इस्तिख़ारा कर चुको तो उसके बाद उस पर मुत्मइन हो जाओ कि अब अल्लाह तआला जो भी फ़ैसला फ़रमायेंगे वह ख़ैर ही का फ़ैसला फ़रमायेंगे, चाहे वह फ़ैसला ज़ाहिर नज़र में तुम्हें अच्छा नज़र न आ रहा हो, लेकिन अन्जाम के एतिबार से वही बेहतर होगा। और फिर उसका बेहतर होना या तो दुनिया ही में मालूम हो जायेगा वर्ना आख़िरत में

जाकर तो यक़ीनन मालूम हो जायेगा कि अल्लाह तआला ने जो फ़ैसला किया था वही मेरे हक़ में बेहतर था।

इस्तिख़ारा करने वाला नाकाम नहीं होगा

एक और हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमाया:

"ما خاب من استخار ولا ندم من استشار (مجمع الفوائد ج:٨)

यानी जो आदमी अपने मामलात में इस्तिख़ारा करता हो वह कभी नाकाम नहीं होगा, और जो शख़्स अपने कामों में मश्विरा करता हो वह कभी नादिम और शर्मिन्दा नहीं होगा, कि मैंने यह काम क्यों कर लिया, या मैंने यह काम क्यों नहीं किया, इसलिये कि जो काम किया वह मश्विरा के बाद किया और अगर नहीं किया तो मश्विरा के बाद नहीं किया, इस वजह से वह शर्मिन्दा नहीं होगा।

इस हदीस में यह जो फ़रमाया कि इस्तिख़ारा करने वाला नाकाम नहीं होगा, मतलब इसका यह है कि अन्जाम कार इस्तिख़ारा करने वाले को ज़रूर कामयाबी होगी, चाहे किसी मौक़े पर उसके दिल में यह ख़्याल भी आ जाये कि जो काम हुआ वह अच्छा नहीं हुआ, लेकिन इस ख़्याल के आने के बावजूद कामयाबी उस शख़्स को होगी जो अल्लाह तआ़ला से इस्तिख़ारा करता है। और जो शख़्स मश्विरा करके काम करेगा वह पछतायेगा नहीं, इसलिये कि फ़र्ज़ करें अगर वह काम ख़राब भी हो गया तो उसके दिल में इस बात की तसल्ली मौजूद होगी कि मैंने यह काम अपनी ख़ुदराई से और अपने बल बूते पर नहीं किया था बल्कि अपने दोस्तों से और बड़ों से मश्विरा के बाद यह काम किया था, अब आगे अल्लाह तआ़ला के हवाले है कि वह जैसा चाहें फ़ैसला फ़रमा दें। इसलिये इस हदीस में दो बातों का मश्विरा दिया है, कि जब भी किसी काम में कशमकश हो तो दो काम कर लिया करो, एक इस्तिख़ारा और दूसरे इस्तिशार यानी मश्विरा।

इस्तिख़ारा की मुख़्तसर दुआ

ऊपर इस्तिख़ारा का जो मसनून तरीक़ा अर्ज़ किया, यह तो उस वक़्त है जब आदमी को इस्तिख़ारा करने की मोहलत और मौक़ा हो, उस वक़्त तो दो रक्अ़त पढ़ कर वह मसनून दुआ़ पढ़े। लेकिन बहुत सी बार इन्सान को इतनी जल्दी फ़ैसला करना पड़ता है कि उसको पूरी दो रक्अ़त पढ़ कर दुआ़ करने का मौक़ा ही नहीं होता, इसलिये कि अचानक कोई काम सामने आ गया और फ़ौरन उसके करने या न करने का फ़ैसला करना है, उस मौक़े के लिये ख़ुद नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक दुआ़ तल्क़ीन फ़रमाई है, वह यह है कि:

"اَللّٰهُمَّ خِرْ لِيْ وَاخْتَرْ لِيْ" (كنز العمال)

ऐ अल्लाह! मेरे लिये आप पसन्द फ़रमा दीजिये कि मुझे कौन सा रास्ता इख़्तियार करना चाहिये।

बस यह दुआ़ पढ़ ले, इसके अ़लावा एक और दुआ़ हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने तल्क़ीन फ़रमाई है, वह यह है:

"اَللّٰهُمَّ اهْدِنِيْ وَسَدِّدْنِيْ" (صحيح مسلم)

ऐ अल्लाह! मेरी सही हिदायत फ़रमाइये और मुझे सीधे रास्ते पर रखिये। इसी तरह एक और मसनून दुआ़ है:

"اَللّٰهُمَّ اَلْهِمْنِيْ رُشْدِيْ" (ترمذی شریف)

"ऐ अल्लाह! जो सही रास्ता है वह मेरे दिल में डाल दीजिये"

इन दुआ़ओं में से जो याद आ जाये उसको उसी वक़्त पढ़ ले, और अगर अ़रबी में दुआ़ याद न आये तो उर्दू ही में दुआ़ कर लो कि या अल्लाह! मुझे यह कश्मकश पेश आ गयी है, आप मुझे सही रास्ता दिखा दीजिये। अगर ज़बान से न कह सको तो दिल ही में अल्लाह तआ़ला से कह दो कि या अल्लाह! यह मुश्किल और परेशानी आ गयी है, आप सही रास्ता दिल में डाल दीजिये, जो रास्ता आपकी रिज़ा के मुताबिक़ हो और जिसमें मेरे लिये ख़ैर हो।

हज़रत मुफ़्ती-ए-आज़म रह. का मामूल

मैंने अपने वालिद माजिद मुफ़्ती–ए–आज़म पाकिस्तान हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह्मतुल्लाहि अ़लैहि को सारी उम्र यह अ़मल करते हुए देखा, कि जब कभी कोई ऐसा मामला पेश आता जिसमें फ़ौरन फ़ैसला करना होता कि ये दो रास्ते हैं, इनमें से एक रास्ते को इख़्तियार करना है, तो आप उस वक़्त चन्द लम्हों के लिये आंख बन्द कर लेते। अब जो शख़्स आपकी आ़दत से वाक़िफ़ नहीं उसको मालूम ही न होता कि यह आंख बन्द करके क्या काम हो रहा है, लेकिन हक़ीक़त में वह आंख बन्द करके ज़रा सी देर में अल्लाह तआ़ला की तरफ़ रुजू कर लेते और दिल ही दिल में अल्लाह तआ़ला से दुआ़ कर लेते, कि या अल्लाह! आप सामने यह कश्मकश की बात पेश आ गयी है, मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि क्या फ़ैसला करूं, आप मेरे दिल में वह बात डाल दीजिये जो आपके नज़्दीक बेहतर हो। बस दिल ही दिल में यह छोटा सा और मुख़्तसर सा इस्तिख़ारा हो गया।

हर काम करने से पहले अल्लाह तआ़ला की तरफ़ रुजू कर लो

मेरे शैख़ हज़रत डॉ. अ़ब्दुल हई साहिब रह्मतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाया करते थे कि जो शख़्स हर काम करने से पहले अल्लाह तआ़ला की तरफ़ रुजू कर ले तो अल्लाह तआ़ला ज़रूर उसकी मदद फ़रमाते हैं, इसलिये कि तुम्हें इसका अन्दाज़ा नहीं कि तुमने एक लम्हे के अन्दर क्या से क्या कर लिया, यानी उस एक लम्हे के अन्दर तुमने अल्लाह तआ़ला से रिश्ता जोड़ लिया है, अल्लाह तआ़ला के साथ अपना ताल्लुक़ क़ायम कर लिया, अल्लाह तआ़ला से ख़ैर मांग ली और अपने लिये सही रास्ता तलब कर लिया। उसका नतीजा यह हुआ कि एक तरफ़ तुम्हें सही रास्ता मिल गया, और दूसरी तरफ़ अल्लाह तआ़ला के साथ ताल्लुक़ क़ायम करने का अज्र

भी मिल गया, और दुआ करने का भी अज्र व सवाब मिल गया, क्योंकि अल्लाह तआ़ला इस बात को पसन्द फ़रमाते हैं कि बन्दा ऐसे मौक़ों पर मुझ से रुजू करता है, और उस पर ख़ास अज्र व सवाब भी अ़ता फ़रमाते हैं।

इसलिये इन्सान को अल्लाह तआ़ला की तरफ़ रुजू करने की आ़दत डालनी चाहिये, सुबह से शाम तक न जाने कितने वाक़िआ़त ऐसे पेश आते हैं जिनमें आदमी को कोई फ़ैसला करना पड़ता है कि यह काम करूं या न करूं, उस वक़्त फ़ौरन एक लम्हे के लिए अल्लाह तआ़ला की तरफ़ रुजू कर लो, या अल्लाह! मेरे दिल में वह बात डाल दीजिये जो आपकी रिज़ा के मुताबिक़ हो।

जवाब से पहले दुआ़ का मामूल

हकीमुल उम्मत हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली साहिब थानवी रह्मतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाया करते थे कि कभी इसके ख़िलाफ़ नहीं होता कि जब भी कोई शख़्स आकर यह कहता है कि हज़रत! एक बात पूछनी है, तो मैं उस वक़्त फ़ौरन अल्लाह तआ़ला की तरफ़ रुजू करता हूं कि मालूम नहीं यह क्या बात पूछेगा? ऐ अल्लाह! यह शख़्स जो सवाल करने वाला है उसका सही जवाब मेरे दिल में डाल दीजिये, कभी भी इस रुजू करने को छोड़ता नहीं हूं।

यह है अल्लाह तआ़ला के साथ ताल्लुक़, इसलिये जब भी कोई बात पेश आये फ़ौरन अल्लाह तआ़ला की तरफ़ रुजू कर लो।

हमारे हज़रत डॉ. अ़ब्दुल हई साहिब रह्मतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाया करते थे कि भाई! अपने अल्लाह मियां से बातें किया करो, कि जहां कोई वाक़िआ़ पेश आये, उसमें फ़ौरन अल्लाह तआ़ला से मदद मांग लो, अल्लाह तआ़ला से रुजू कर लो, उसमें अल्लाह तआ़ला से हिदायत तलब कर लो और अपनी ज़िन्दगी में इस काम की आ़दत डाल लो। धीरे धीरे यह चीज़ अल्लाह तआ़ला के साथ ताल्लुक़ को मज़बूत कर देती है, और यह ताल्लुक़ इतना मज़बूत हो जाता है कि फिर हर वक़्त अल्लाह तआ़ला का ध्यान दिल में रहता

है। हमारे हज़रत फ़रमाया करते थे कि तुम वे मुजाहदे और रियाज़तें कहां करोगे जो पिछले सूफ़िया--ए–किराम करके चले गये, लेकिन मैं तुम्हें ऐसे चुटकुले बता देता हूं कि अगर तुम उन पर अ़मल कर लोगे तो इन्शा अल्लाह जो असली मक़सद है यानी अल्लाह तआ़ला के साथ ताल्लुक़ का क़ायम हो जाना वह इन्शा अल्लाह इसी तरह हासिल हो जायेगा।

अल्लाह तआ़ला हम सब को इन बातों पर अ़मल करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, आमीन।

واٰخردعوانا ان الحمدللّٰہ رب العالمین

एहसान का बदला

एहसान

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

"عن جابر بن عبد اللّٰه رضی اللّٰه عنه قال: قال النبی صلی اللّٰه علیه وسلم من اعطیٰ عطاء فوجد فلیجزبه، ومن لم یجد فلیثن فان من اثنی فقد شکر، ومن کتم فقد کفر، ومن تحلی بما لم یعطه کان کلا بس ثوبی زور" (ترمذی شریف)

हदीस का तर्जुमा

हज़रत जाबिर इब्ने अ़ब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमायाः जिस शख़्स के साथ कोई नेकी की जाये और उसके पास नेकी का बदला देने के लिये कोई जीज़ मौजूद हो तो उसको चाहिये कि वह उस नेकी का बदला दे, और अगर उसके पास कोई ऐसी चीज़ न हो जिस से वह नेकी का बदला दे सके तो कम से कम यह करे कि जो नेकी उसके साथ की गयी है, उसका तज़्किरा करे, उसकी तारीफ़ करे कि फ़लां ने मेरे साथ यह एहसान और नेकी की है, इसलिये कि जिस शख़्स ने उसकी तारीफ़ कर दी तो गोया उसका शुक्रिया अदा कर दिया। और अगर उस शख़्स ने उस नेकी और एहसान को छुपाकर रखा तो उसने उसकी नाशुक्री की। और जो शख़्स उस

चीज़ से आरास्ता हुआ जो उसको नहीं दी गयी तो उसने गोया झूठ के दो कपड़े पहने। यह तो हदीस का तर्जुमा था।

नेकी का बदला

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इस हदीस में दो बातों की तालीम दी है, एक यह कि अगर कोई शख़्स किसी दूसरे के साथ अच्छा बर्ताव करे, या कोई नेकी करे, तो उसको चाहिये कि जिसने उसके साथ नेकी की है, उसको उसका कुछ न कुछ बदला दे। दूसरी हदीस में इसी बदले को "मुकाफ़ात" से ताबीर फ़रमाया है, यह बदला जिसका ज़िक्र हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम फ़रमा रहे हैं इसका मतलब यह है कि आदमी इस एहसास के साथ दूसरे से अच्छा बर्ताव करे कि उसने चूंकि मेरे साथ नेकी की है तो मैं भी उसके साथ कोई नेक सुलूक करूं। यह बदला देना तो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सुन्नत है, इसलिये कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की आदत यह थी कि जब कोई शख़्स आपके साथ अच्छा मामला करता, या कोई हदिया पेश करता तो आप उसको बदला दिया करते थे, और उसके साथ भी अच्छाई का मामला किया करते थे। इसलिये यह बदला तो अज्र व सवाब का सबब है।

"न्यौता" देना जायज़ नहीं

एक बदला वह है जो आज हमारे समाज में फैल गया है, वह यह कि किसी को बदला देने को दिल तो नहीं चाह रहा है लेकिन इस ग़र्ज़ से दे रहा है कि अगर मैं नहीं दूंगा तो समाज में मेरी नाक कट जायेगी, या इस नियत से दे रहा है कि इस वक़्त दे रहा हूं तो मेरे यहां शादी विवाह के मौक़े पर यह देगा, जिसको "न्यौता" कहा जाता है, यहां तक कि बाज़ इलाक़ों में यह रिवाज है कि शादी विवाह के मौक़े पर कोई किसी को कुछ देता है तो उसकी बाक़ायदा फ़ेहरिस्त बनती है, कि फ़लां शख़्स ने इतने दिये, फ़लां शख़्स ने

इतने दिये। फिर उस फ़ेहरिस्त को महफ़ूज़ रखा जाता है और फिर जब उस शख़्स के यहां शादी विवाह का मौक़ा आता है तो जिसने दिया था उसको पूरी उम्मीद होती है कि मैंने उसको जितना दिया था, यह कम से कम उतना ही मुझे वापस देगा, और अगर उस से कम दे तो फिर गिले शिकवे लड़ाईयां शुरू हो जाती हैं, यह "बदला" बहुत ख़राब है और इसी को क़ुरआने करीम में सूरः रूम में "सूद" से ताबीर फ़रमाया है, फ़रमायाः

"وَمَآ اٰتَيْتُمْ مِنْ رِّبًا لِّيَرْبُوَا فِىٓ اَمْوَالِ النَّاسِ فَلَا يَرْبُوْا عِنْدَ اللّٰهِ، وَمَآ اٰتَيْتُمْ مِنْ زَكٰوةٍ تُرِيْدُوْنَ وَجْهَ اللّٰهِ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُضْعِفُوْنَ" (سورة روم:٣٩)

"यानी तुम लोग जो सूद देते हो ताकि लोगों के मालों के साथ मिलकर उसमें इज़ाफ़ा हो जाये, तो याद रखो कि अल्लाह तआला के नज़्दीक उसमें इज़ाफ़ा नहीं होता, और जो तुम अल्लाह तआला की रिज़ा की ख़ातिर ज़कात देते हो, तो यही लोग अपने मालों में इज़ाफ़ा कराने वाले हैं"।

इस आयत में इस "न्यौता" को सूद से ताबीर किया है। इसलिये अगर कोई शख़्स दूसरे को इस नियत से दे कि चूंकि उसने मुझे शादी के मौक़े पर दिया था, अब मेरे ज़िम्मे फ़र्ज़ है कि मैं भी उसको ज़रूर दूं, अगर मैं नहीं दूंगा तो समाज में मेरी नाक कट जायेगी और यह मुझे क़र्ज़दार समझेगा, यह देना गुनाह में दाख़िल है, इसमें कभी मुब्तला नहीं होना चाहिये, इसमें न दुनिया का कोई फ़ायदा है और न ही आख़िरत का कोई फ़ायदा है।

मुहब्बत की ख़ातिर बदला और हदिया दो

लेकिन एक वह "बदला" जिसकी तल्क़ीन हुज़ूरे अक़्दस सल्ल. फ़रमा रहे हैं, यानी देने वाले के दिल में यह ख़्याल पैदा न हो कि जो मैं दे रहा हूं इसका बदला मुझे मिलेगा, बल्कि उसने सिर्फ़ मुहब्बत की ख़ातिर अल्लाह को राज़ी करने के लिये अपने बहन या भाई को कुछ दिया हो, जैसा कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व

सल्लम का इर्शाद है:

"تهادوا فتحابوا"

यानी आपस में एक दूसरे को हदिये दिया करो, इस से आपस में मुहब्बत पैदा होगी। इसलिये अगर आदमी हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के इस इर्शाद पर अमल करने के लिये अपने दिल के तक़ाज़े से दे रहा है और उसके दिल में दूर दूर तक यह ख़्याल नहीं है कि इसका बदला भी मुझे मिलेगा, तो यह देना बड़ी बर्कत की चीज़ है, और जिस शख़्स को वह हदिया दिया गया वह भी यह समझ कर न ले कि यह "न्यौता" है, और इसका बदला मुझे अदा करना है, बल्कि वह यह सोचे कि यह मेरा भाई है, इसने मेरे साथ एक अच्छाई की है, तो मेरा दिल चाहता है कि मैं भी उसके साथ अच्छाई करूं और मैं भी अपनी ताक़त के मुताबिक़ उसको हदिया देकर उसका दिल ख़ुश करूं, तो इसका नाम है "मुकाफ़ात" जिसकी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने ताकीद फ़रमाई है, यह पसन्दीदा है, और इसकी कोशिश करनी चाहिये।

बदला देने में बराबरी का लिहाज़ मत करो

इस "मुकाफ़ात" यानी बदले का नतीजा यह होता है कि जब दूसरा शख़्स तुम्हारे हदिये का बदला देगा तो उस बदले में इसका लिहाज़ नहीं होगा कि जितना क़ीमती हदिया उसने दिया था उतना ही क़ीमती हदिया मैं भी दूं, बल्कि मुकाफ़ात करने वाला यह सोचेगा कि उसने अपनी गुन्जाइश और हिम्मत के मुताबिक़ बदला दिया था मैं भी अपनी गुन्जाइश और हिम्मत के मुताबिक़ बदला दूं। जैसे किसी ने आपको बहुत क़ीमती तोहफ़ा दे दिया था, अब आपकी गुन्जाइश क़ीमती तोहफ़ा देने की नहीं है, तो आप छोटा और मामूली तोहफ़ा देते वक़्त शर्माएं नहीं, इसलिये कि उसका मक़सद भी आपका दिल ख़ुश करना था और आपका मक़सद भी उसका दिल ख़ुश करना है, और दिल छोटी चीज़ से भी ख़ुश हो जाता है। यह न सोचें कि

जितना कीमती तोहफ़ा उसने मुझे दिया था मैं भी उतना ही कीमती तोहफ़ा उसको दूं, चाहे इस मकसद के लिये मुझे कर्ज़ लेना पड़े, चाहे रिश्वत लेनी पड़े, या इसके लिये मुझे ना जायज़ आमदनी के ज़राए इख़्तियार करने पड़ें, हरगिज़ नहीं, बल्कि जितनी गुन्जाइश और हिम्मत उसके मुताबिक़ तोहफ़ा दो।

तारीफ़ करना भी बदला है

बल्कि इस हदीस में यहां तक फ़रमा दिया कि अगर तुम्हारे पास हदिये का बदला देने के लिये कुछ नहीं है तो फिर "मुकाफ़ात" का एक तरीक़ा यह भी है कि तुम उसकी तारीफ़ करो, और लोगों को बताओ कि मेरे भाई ने मेरे साथ अच्छा सुलूक किया और मुझे हदिये में यह ज़रूरत की चीज़ दे दी, यह कह कर उसका दिल ख़ुश कर देना भी एक तरह का बदला है।

हज़रत डॉ. अ़ब्दुल हई साहिब रह. का अन्दाज़

मेरे हज़रत डॉ. अ़ब्दुल हई साहिब रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाया करते थे कि जब कोई शख़्स मुहब्बत से कोई चीज़ हदिये के तौर पर लेकर आये तो कम से कम उस पर ख़ुशी का इज़हार करके उसका दिल ख़ुश करो, ताकि उसको यह मालूम हो जाये कि तुम्हें उस हदिये से ख़ुशी हुई है।

चुनांचे मैंने हज़रते वाला को देखा कि जब कोई शख़्स आपके पास कोई हदिया लेकर आता तो आप बहुत ख़ुशी सी उसको कबूल फ़रमाते, और फ़रमाते कि भाई! यह तो हमारी पसन्द की और ज़रूरत की चीज़ है, आपका यह हदिया तो हमें बहुत पसन्द आया, हम तो यह सोच रहे थे कि बाज़ार से यह चीज़ ख़रीद लेंगे।

ये अल्फ़ाज़ इसलिये फ़रमाते ताकि देने वाले को यह एहसास हो कि उनको मेरे हदिये से ख़ुशी हुई है, और इस हदीस पर अ़मल भी हो जाये। इसलिये उसकी तारीफ़ करनी चाहिये और छुपा कर बैठना और उस पर उसकी तारीफ़ न करना और ख़ुशी का इज़हार न

करना यह उस हदिये की नाशुक्री है।

छुपाकर हदिया देना

एक बार एक साहिब हज़रत डॉ. साहिब रह्मतुल्लाहि अलैहि की ख़िदमत में आये, और मुसाफ़ा करते हुए चुपके से कोई चीज़ बतौर हदिया के दे दी, इसलिये कि यह भी एक तरीक़ा है कि चुपके से मुसाफ़ा करते हुए हदिया दे दिया जाये। तो उन साहिब ने भी ऐसा ही किया।

हज़रते वाला ने उनसे पूछा कि यह क्या है?

उन्होंने जवाब दिया कि हज़रत हदिया पेश करने को दिल चाह रहा था।

हज़रत ने फ़रमाया कि यह बताओ कि इस तरह छुपाकर देने का क्या मतलब है? क्या तुम चोरी कर रहे हो, या मैं चोरी कर रहा हूं? जब न तुम चोरी कर रहे हो, और न मैं चोरी कर रहा हूं, बल्कि हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के एक इर्शाद पर अमल करना चाहते हैं तो फिर इसको इस तरह छुपाने की क्या ज़रूरत है, यह तो एक मुहब्बत और ताल्लुक़ का इज़हार है, सब के सामने पेश कर दो, इसमें कोई हर्ज नहीं।

बहर हाल! हदिये के ज़रिये असल में दिल की मुहब्बत का इज़हार है, चाहे वह चीज़ छोटी हो या बड़ी हो। और जब कोई शख़्स तुम्हें कोई चीज़ दे तो तुम उसका बदला दे दो, या कम से कम उसकी तारीफ़ कर दो।

परेशानी में दुरूद शरीफ़ की कसरत क्यों?

एक बार हमारे हज़रत डॉ. साहिब रह्मतुल्लाहि अलैहि ने इर्शाद फ़रमाया कि जब तुम किसी मुश्किल और परेशानी में हो तो उस वक़्त दुरूद शरीफ़ कसरत से पढ़ा करो, फिर उसकी वजह बयान करते हुए फ़रमाया कि मेरे ज़ौक़ में एक बात आती है, वह यह कि हदीस शरीफ़ में आता है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व

सल्लम का उम्मती जब भी हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद भेजता है, तो वह दुरूद शरीफ़ हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में फ़रिश्ते पहुंचाते हैं, और जाकर अर्ज़ करते हैं कि आपके फ़लां उम्मती ने आपकी ख़िदमत में दुरूद शरीफ़ का यह हदिया भेजा है।

और दूसरी तरफ़ ज़िन्दगी में हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सुन्नत यह थी कि जब कभी कोई शख़्स आपकी ख़िदमत में कोई हदिया पेश करता तो आप उसकी "मुकाफ़ात" (यानी बदला) ज़रूर फ़रमाते थे, उसके बदले में उसके साथ कोई नेकी ज़रूर फ़रमाते थे।

इन दोनों बातों के मिलाने से यह समझ में आता है कि जब तुम हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में दुरूद भेजोगे तो यह मुम्किन नहीं है कि सरकारे दो आलम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम उसका बदला न दें, बल्कि बदला ज़रूर देंगे, और वह बदला यह होगा कि आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम उस उम्मती के हक़ में दुआ करेंगे कि ऐ अल्लाह! यह मेरा उम्मती जो मुझ पर दुरूद शरीफ़ भेज रहा है, वह फ़लां मुश्किल और परेशानी में मुब्तला है, ऐ अल्लाह! उसकी मुश्किल दूर फ़रमा दीजिये।

तो इस दुआ की बर्कत से इन्शा अल्लाह, अल्लाह तआला तुम्हें उस मुश्किल से नजात अता फ़रमायेंगे। इसलिये जब कभी कोई परेशानी आए तो उस वक़्त हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद शरीफ़ की कसरत करें।

ख़ुलासा

ख़ुलासा यह है कि हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इस हदीस में पहली तालीम यह दी कि जब कोई शख़्स तुम्हारे साथ नेकी करे, तो तुम उसको बदला देने की कोशिश करो, और इस नियत से बदला दो कि चूंकि यह हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व

सल्लम की सुन्नत है कि आप बदला दिया करते थे, इसलिये मैं भी बदला दे रहा हूं, लेकिन क़र्ज़े वाला बदला न हो "न्यौता" वाला बदला न हो, बल्कि वह बदला अल्लाह तआ़ला को राज़ी करने के लिये और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत पर अ़मल करने के लिये हो। अल्लाह तआ़ला हम सब को इन बातों पर अ़मल करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, आमीन।

واٰخر دعوانا ان الحمد للّٰہ رب العالمین

मस्जिद की तामीर की अहमियत

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

فَاَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنَ الشَّيْطٰنِ الرَّجِيْمِ، بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ۔

"اِنَّمَا يَعْمُرُ مَسٰجِدَ اللّٰهِ مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ" (سورة توبة:١٨)

آمنت بالله صدق الله مولانا العظيم وصدق رسوله النبى الكريم ونحن على ذالك من الشاهدين والشاكرين، والحمد لله رب العالمين۔

तम्हीद

जनाबे सदर, मेहमानाने ग्रामी और सम्मानित हाज़िरीन! अस्सलामु अ़लैकुम व रहमतुल्लाहि व ब–रकातुहू। हम सब के लिये यह बड़ी सआ़दत का मौक़ा है कि आज हम सब का एक मस्जिद की तामीर की बुनियाद रखने में हिस्सा लगने वाला है, मस्जिद की तामीर करना या उसमें किसी तरह का हिस्सा लेना एक मुसलमान के लिये बड़ी ख़ुश नसीबी की बात है। जो आयत अभी मैंने आपके सामने पढ़ी है उसमें अल्लाह तआ़ला ने इर्शाद फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला की मस्जिदें सिर्फ़ वही लोग आबाद करते हैं जिनका अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर ईमान हो। इसलिये मस्जिद की तामीर इन्सान के ईमान की अ़लामत और निशानी है, और उसके ईमान का सब से

पहला तकाज़ा है।

मस्जिद का मक़ाम

इस्लामी समाज में मस्जिद को जो मक़ाम हासिल है वह किसी मुसलमान से पोशीदा नहीं। नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने नमाज़ को दीन का सतून क़रार दिया और फ़रमाया कि जो शख़्स नमाज़ क़ायम करता है वह दीन को क़ायम करता है, और जो शख़्स नमाज़ को छोड़ता है वह दीन के बुनियादी सतून को तोड़ता है। और चूंकि वही नमाज़ अल्लाह तआला के यहां सही मायने में मक़बूल है जो नमाज़ जमाअत के साथ मस्जिद में अदा की जाये, और जो नमाज़ घर के अन्दर पढ़ ली जाये, उसको फ़ुक़हा की इस्तिलाह में "अदा–ए–क़ासिर" (ना मुकम्मल अदा) कहा जाता है। यानी वह नमाज़ नाक़िस है। नमाज़ की कामिल अदाएगी यह है कि इन्सान जमाअत के साथ मस्जिद में नमाज़ अदा करे।

मुसलमान और मस्जिद

इसलिये मुसलमानों की यह ख़ुसूसियत रही है कि वे जहां कहीं गये और जिस ख़ित्ते और इलाक़े में पहुंचे वहां पर अपना घर तामीर हुआ हो या न हुआ हो, लेकिन सब से पहले उन्होंने वहां जाकर अल्लाह के घर की बुनियाद डाली और ऐसे संगीन और ख़तरनाक हालात में भी इस फ़रीज़े को नहीं छोड़ा जब कि उनकी जानों पर बनी हुई थी, और जब कि माल की भी कमी थी, फ़ाक़े व तंगी का दौर दौरा था, उन हालात में भी उम्मते मुस्लिमा ने मस्जिद की तामीर को किसी हाल में पीठ पीछे नहीं डाला।

दक्षिण अफ़रीक़ा का एक वाक़िआ

मुझे याद आया, आज से तक़रीबन सात साल पहले मुझे दक्षिण अफ़रीक़ा जाने का इत्तिफ़ाक़ हुआ, दक्षिण अफ़रीक़ा वह मुल्क है जो अफ़रीक़ा के बर्रे आज़म में इन्तिहाई दक्षिणी किनारे पर वाक़े है, और उसका मशहूर शहर कैपटॉऊन सारी दुनिया में मशहूर है, उस शहर में

जाकर मैंने देखा कि वहां पर ज़्यादा तर "मलाया" के लोग आबाद हैं जो आजकल "मलेशिया" कहलाता है। जो मुसलमान वहां आबाद हैं उनमें अस्सी फ़ीसद "मलाया" के लोग हैं। मैंने पूछा कि "मलाया" के लोग यहां कैसे पहुंच गये, तो उस वक़्त मुझे उसकी बड़ी अजीब तारीख़ बताई गयी, जो हम सब के लिये इब्रत का सामान है।

"मलाया" वालों का कैपटॉऊन आना

लोगों ने बताया कि यह असल में "मलाया" के वे लोग हैं कि जब अंग्रेज़ों ने "मलाया" की रियासत पर क़ब्ज़ा किया और उनको गुलाम बनाया (जिस तरह हिन्दुस्तान पर क़ब्ज़ा किया था और उनको गुलाम बनाया था) तो ये वे लोग थे जो अंग्रेज़ों की हुकूमत को तस्लीम करने के लिये तैयार नहीं थे। चुनांचे ये लोग अंग्रेज़ों से आज़ादी हासिल करने के लिये जिहाद करते रहे। चूंकि ये लोग बेसरो सामान थे, इनके पास वसाइल कम थे, इसलिये अंग्रेज़ इन पर ग़ालिब आ गये, और अंग्रेज़ों ने इनको गिरफ़्तार करके इनके पांव में बेड़ियां डाल कर और ग़ुलाम बनाकर कैपटॉऊन ले आये, इस तरह इन मलाया के मुसलमानों की एक बड़ी तायदाद यहां पहुंच गयी, आज ये अंग्रेज़ और पश्चिमी मुल्क वाले बड़ी रवादारी और लोकतन्त्र और इज़हारे राय की आज़ादी का सबक़ देते हैं, लेकिन उस वक़्त उनका यह हाल था कि जिनको ग़ुलाम बनाया था, उनके पांव में बेड़ियां डाल दी थीं और उनको अपने दीन और अक़ीदे के मुताबिक़ नमाज़ पढ़ने की भी इजाज़त नहीं थी, वे अगर अपने घर में भी नमाज़ पढ़ना चाहते तो उसकी भी उनको इजाज़त नहीं थी। अगर कोई शख़्स नमाज़ पढ़ता हुआ पाया जाता तो उसके ऊपर हन्टर बरसाये जाते थे।

रात की तन्हाई में नमाज़ की अदाएगी

उन लोगों से दिन भर मेहनत मज़दूरी के काम लिये जाते, मशक़्क़त वाले काम उनसे लिये जाते और शाम को खाना खाने के

बाद जब उनके आक़ा सो जाते तो सोते वक़्त उनके पांव की बेड़ियां खोली जातीं ताकि ये अपने बैरकों में जाकर सो जायें, लेकिन जब उनकी बेड़ियां खोल दी जातीं और उनके आक़ा सो जाते तो ये लोग चुपके चुपके एक एक करके वहां से निकल कर पहाड़ की चोटी पर जाकर पूरे दिन की नमाज़ें इकट्ठे जमाअत से अदा करते, इसी तरह ये लोग एक मुद्दत तक नमाज़ें अदा करते रहे।

नमाज़ पढ़ने की इजाज़त दी जाये

अल्लाह का करना ऐसा हुआ कि कैपटॉऊन पर डच क़ौम ने हमला कर दिया, ताकि कैपटॉऊन पर क़ब्ज़ा कर लें। चूंकि "मलाया" के ये लोग बड़े लड़ाके थे, और बड़े बहादुर थे, और इनकी बहादुरी के करिश्मे अंग्रेज़ देख चुके थे, इसलिये अंग्रेज़ों ने इनसे कहा कि हमारे दुश्मनों का मुक़ाबला करने के लिये हम तुम्हें आगे करते हैं, तुम उनसे मुक़ाबला करो और लड़ो, ताकि ये लोग कैपटॉऊन पर क़ब्ज़ा न कर लें। उन "मलाया" के मुसलमानों ने उनसे कहा कि तुम हुक्मरानी करो या डच हुक्मरानी करे, हमारे लिये तो कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, सिर्फ़ आक़ाओं की तब्दीली की बात है। आज तुम आक़ा हो कल को उनका क़ब्ज़ा हुआ तो वे लोग आक़ा बन जायेंगे। उनके आने या न आने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। अगर आप कहते हैं कि हम उनसे लड़ें तो हम लड़ने को तैयार हैं, लेकिन हमारा एक मुतालबा है, वह यह कि इस कैपटॉऊन की ज़मीन पर हमें नमाज़ पढ़ने की इजाज़त दी जाये और एक मस्जिद तामीर करने की इजाज़त दी जाये।

सिर्फ़ मस्जिद बनाने का मुतालबा

देखिये! उन्होंने पैसे का कोई मुतालबा नहीं रखा, आज़ादी का मुतालबा नहीं किया, कोई और दुनियावी मुतालबा नहीं किया, मुतालबा किया तो सिर्फ़ यह कि हमें मस्जिद तामीर करने की इजाज़त दी जाए। चुनांचे उन्होंने बड़ी बहादुरी से डच क़ौम का

मुक़ाबला किया, यहां तक कि उनको पीछे हटने पर मजबूर कर दिया और इनको फ़तह हो गयी, तो उन्होंने कहा कि हमने जो मस्जिद तामीर करने की इजाज़त का मुतालबा किया था वह पूरा किया जाये। चुनांचे उनको इजाज़त मिल गयी, और पूरे कैपटॉऊन में पहली मस्जिद इस हालत में तामीर की गयी कि उन बेचारों के पास न आलात व असबाब थे और न ही तामीर करने के लिये सरमाया था, यहां तक कि क़िबले का सही रुख़ मालूम करने के लिये भी कोई ज़रिया नहीं था, सिर्फ़ अन्दाज़े से क़िबले का रुख़ मुताय्यन किया। चुनांचे उसका रुख़ क़िबले की सही सिम्त से २० या २५ डिग्री हटा हुआ है, आज उस मस्जिद में सफ़ें टेढ़ी करके बनाई जाती हैं।

तो उन्होंने न तो यह मुतालबा किया कि हमें रहने के लिये मकान दो, न यह मुतालबा किया कि हमें पैसे दो, न यह मुतालबा किया कि हमारे खाने पीने का बन्दोबस्त करो, बल्कि पहला मुतालबा यह किया कि हमें मस्जिद बनाने की इजाज़त दो। यह है एक उम्मते मुस्लिमा की तारीख़, कि उसने मस्जिद की तामीर को हर चीज़ पर मुक़द्दम रखा और उन हालात में भी मस्जिद के तामीर के फ़रीज़े को नहीं छोड़ा।

ईमान की मिठास किसको?

हक़ीक़त में ईमान की मिठास उन्हीं जैसे लोगों को नसीब होती है, हमें और आपको तो बैठे बिठाए यह दीन हासिल हो गया, मुसलमान मां बाप के घर में पैदा हो गये और अपने मां बाप को मुसलमान पाया, इस दीन को हासिल करने के लिये कोई कुरबानी नहीं दी, कोई पैसा ख़र्च नहीं किया, कोई मेहनत नहीं की, इसका नतीजा यह है कि इस दीन की हमारे दिलों में कोई क़द्र नहीं, लेकिन जिन लोगों ने इस काम के लिये मेहनत की, कुरबानियां दीं, मशक़्क़तें झेलीं, उनको हक़ीक़त में ईमान की सही मिठास नसीब होती है।

हमें शुक्र करना चाहिये

यह वाकिआ मैंने इसलिये बयान किया कि हम अल्लाह तआला का शुक्र अदा करें कि अल्लाह तआला के फ़ज़्ल व करम से मस्जिद की तामीर करने में हम पर कोई पाबन्दी नहीं, कोई परेशानी और उलझन नहीं, बल्कि जब और जहां मस्जिद बनाना चाहें, मस्जिद बना सकते हैं, इसलिए मस्जिद की तामीर का यह मौक़ा हम सब के लिये बड़ी सआदत का मौक़ा है। और इस तामीर में जो शख़्स भी जिस जिहत से पैसे से, या किसी भी तरह की कोशिश से जिस तरह भी मुम्किन हो, हिस्सा ले तो उसके लिये बड़ी अज़ीम सआदत की बात है।

मस्जिद की आबादी नमाज़ियों से

दूसरी बात मुझे यह अर्ज़ करनी है कि मस्जिद की तामीर दीवारों से, बलाकों से, ईंटों से, पलास्टर से और चूना पत्थर से नहीं होती, आपको मालूम है कि मदीना मुनव्वरा में नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने सब से पहले जो मस्जिद तामीर फ़रमाई यानी मस्जिदे नबवी, उसकी छत भी पक्की नहीं थी, उसकी दीवारें भी पक्की नहीं थीं, बल्कि खजूर के पत्तों की दीवारें खड़ी कर दी गयी थीं। लेकिन रूए ज़मीन पर मस्जिदे हराम के बाद उस से ज़्यादा अफ़ज़ल मस्जिद कोई वजूद में नहीं आई, इस से मालूम हुआ कि मस्जिद इन दीवारों का नाम नहीं, मस्जिद इन मीनारों का नाम नहीं, इस मेहराब और इन पत्थर और चूने का नाम नहीं, बल्कि मस्जिद हक़ीक़त में सज्दा करने वालों का नाम है। अगर बड़ी आलीशान मस्जिद तामीर कर दी गयी और उस पर दुनिया भर की दौलत ख़र्च करके उस पर नक़्शो निगार बना दिये गये, लेकिन वह मस्जिद नमाज़ पढ़ने वालों से ख़ाली है तो वह मस्जिद आबाद नहीं है, बल्कि वह मस्जिद वीरान है। इसलिये मस्जिद की आबादी वहां पर नमाज़ पढ़ने वालों से और वहां पर ज़िक्र करने वालों से होती

है।

क़ियामत के क़रीबी ज़माने में मस्जिदों की हालत

नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने क़ियामत के क़रीब के हालात की पेशीन गोई (भविष्य वाणी) करते हुए फ़रमाया था कि आख़री दौर में ऐसा ज़माना आ जायेगा किः

مساجدهم عامرة وهى خراب

यानी बज़ाहिर उनकी मस्जिदें आबाद होंगी, तामीर शुदा होंगी और देखने में बड़ी आलीशान मस्जिदें नज़र आयेंगी, लेकिन अन्दर से वे वीरान होंगी। इसलिये कि उनमें नमाज़ पढ़ने वाले बहुत कम होंगे, और जिन कामों के लिये मस्जिद बनाई जाती है उन कामों की अदाएगी करने वाले बहुत कम होंगे। ऐसी मस्जिद के बारे में फ़रमाया कि बज़ाहिर वह आबाद है लेकिन हक़ीक़त में वह वीरान है। इसी की तरफ़ इक़बाल मरहूम ने इस शेर में इशारा किया किः

मस्जिद तो बना दी शब भर में ईमान की हरारत वालों ने
मन अपना पुराना पापी है, बरसों में नमाज़ी बन न सका

इख़्तिताम

बहर हाल! जो लोग इस मस्जिद की तामीर में जिस तरीक़े से भी हिस्सा ले रहे हैं उनके लिये बड़ी सआदत की बात है, अल्लाह तआला इस काम की मुश्किलों को उनके लिये आसान फ़रमाये और इसको मुकम्मल फ़रमाए, आमीन।

लेकिन यह बात कभी न भूलिये कि मस्जिद के सिलसिले में हमारा फ़रीज़ा सिर्फ़ इमारत खड़ी कर देने पर ख़त्म नहीं होता, बल्कि इमारत खड़ी कर देने के बाद यह भी हमारे फ़राइज़ में दाख़िल है कि हम उसको नमाज़ से आबाद करें, तिलावत से आबाद करें, अल्लाह के ज़िक्र से आबाद करें। इस्लामी समाज में मस्जिद हक़ीक़त में एक मर्कज़ी मक़ाम की हामिल है, इसलिये कि वहां सीरत की तामीर होती है, वहां क़िरदार की तामीर होती है, अच्छे अख़्लाक़

की तामीर होती है, इन्हीं कामों के लिये इस मस्जिद को तामीर किया जा रहा है, ताकि यह मस्जिद ज़ाहिरी एतिबार से भी आबाद हो और बातिनी एतिबार से भी आबाद हो। अल्लाह तआला से दुआ है कि इस मस्जिद की तामीर को तमाम मौहल्ले वालों के लिये ख़ैर व बर्कत का ज़रिया बनाये और तमाम मौहल्ले वालों को इस सिलसिले में अपने फ़राइज़ को अदा करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये और इस मस्जिद को सही मायने में आबाद रखने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

واخردعوانا ان الحمد لله رب العالمين

हलाल रोज़ी की तलब

एक दीनी फ़रीज़ा

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَا وَسَنَدَنَا وَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

"عن عبد اللّٰه بن مسعود رضی اللّٰه عنه ان رسول اللّٰه صلى اللّٰه عليه وسلم قال: طلب كسب الحلال فريضة بعد الفريضة" (كنزالعمال: ج ٤)

हलाल रोज़ी की तलब दूसरे दर्जे का फ़रीज़ा

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमाया कि हलाल रिज़्क़ को तलब करना दीन के सब से पहले फ़रीज़े के बाद दूसरे दर्जे का फ़रीज़ा है। अगरचे सनद के एतिबार से मुहद्दिसीन ने इस हदीस को ज़ईफ़ (कमज़ोर) कहा है, लेकिन उलमा-ए-उम्मत ने इस हदीस को मायने के एतिबार से क़बूल किया है, और इस बात पर सारी उम्मत के उलमा का इत्तिफ़ाक़ है कि मायने के एतिबार से यह हदीस सही है, इस हदीस में हुज़ूर नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने एक अज़ीम बयान फ़रमाया है, वह यह कि हलाल रिज़्क़ को तलब करना दीन के पहले फ़राइज़ के बाद दूसरे दर्जे का फ़रीज़ा है। यानी दीन के सब से पहले फ़राइज़ तो वे हैं, जो अर्काने इस्लाम कहलाते हैं और जिनके बारे में हर मुसलमान जानता है कि ये चीज़ें दीन में फ़र्ज़ हैं, जैसे नमाज़ पढ़ना, ज़कात

अदा करना, रोज़े रखना, हज करना वग़ैरह। ये सब दीन के सब से पहले फ़राइज़ हैं। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम फ़रमाते हैं कि इन दीनी फ़राइज़ के बाद दूसरे दर्जे का फ़रीज़ा "रिज़्के हलाल को तलब करना और हलाल रोज़ी को हासिल करने की कोशिश करना" है, यह एक मुख़्तसर सा इर्शाद और मुख़्तसर सी तालीम है, लेकिन हदीस में बड़े अज़ीम उलूम बयान फ़रमये गये हैं। अगर आदमी इस हदीस में ग़ौर करे तो दीन की समझ अता करने के लिये इसमें बड़ा सामान है।

हलाल रिज़्क़ की तलब दीन का हिस्सा है

इस हदीस से पहली बात तो यह मालूम हुई कि हम और आप हलाल रिज़्क़ की तलब में जो कुछ कार्रवाई करते हैं, चाहे वह तिजारत हो, चाहे वह खेती बाड़ी हो, चाहे वह नौकरी हो, चाहे वह मज़दूरी हो, ये सब काम दीन से ख़ारिज नहीं हैं, बल्कि ये सब भी दीन का हिस्सा हैं, और न सिर्फ़ यह कि ये काम जायज़ और दुरुस्त हैं बल्कि उनको फ़रीज़ा क़रार दिया गया है, इसलिये अगर कोई शख़्स यह काम न करे, और हलाल रिज़्क़ की तलब न करे बल्कि हाथ पर हाथ रख कर घर में बैठ जाये तो वह शख़्स फ़रीज़े के छोड़ने का गुनाहगार होगा, इसलिये कि उसने एक फ़र्ज़ और वाजिब काम को छोड़ रखा है। क्योंकि शरीअत का मुतालबा यह है कि इन्सान सुस्त और बेकार होकर न बैठ जाये, और किसी दूसरे का मोहताज न बने, अल्लाह तआला के सिवाए किसी दूसरे के सामने हाथ न फैलाये, और इन चीज़ों से बचने का रास्ता हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने यह इर्शाद फ़रमाया कि आदमी अपनी वुसअत और कोशिश के मुताबिक़ हलाल रिज़्क़ तलब करता रहे ताकि दूसरे के समने हाथ फैलाने की नौबत न आये। क्योंकि जिस तरह अल्लाह तआला ने अपने हुक़ूक़ हमारे ऊपर वाजिब फ़रमाये हैं, इसी तरह कुछ हुक़ूक़ हमारे ऊपर हमारे नफ़्स से मुताल्लिक़ और हमारी ज़ात से मुताल्लिक़ और हमारे घर वालों से मुताल्लिक़ भी

वाजिब फ़रमाये हैं, और हलाल रिज़्क़ की तलब के बग़ैर ये हुकूक़ अदा नहीं हो सकते, इसलिये इन हुकूक़ की अदएगी के लिये ज़रूरी है कि आदमी हलाल रिज़्क़ तलब करे।

इस्लाम में "रह्बानियत" नहीं

इस हदीस के ज़रिये इस्लाम ने "रह्बानियत" की जड़ काट दी। ईसाई मज़हब में रहबानियत का जो तरीक़ा इख़्तियार किया गया था कि अल्लाह तआ़ला का कुर्ब (निकटता) और अल्लाह तआ़ला की रिज़ा हासिल करने का रास्ता और तरीक़ा यह है कि इन्सान अपने दुनियावी कारोबार को छोड़े और अपने नफ़्स और ज़ात के मुतालबों को ख़त्म करे और जंगल में जाकर बैठ जाये और वहां पर अल्लाह अल्लाह किया करे, बस इसके अ़लावा अल्लाह तआ़ला को राज़ी करने और उसका कुर्ब हासिल करने का कोई रास्ता नहीं था, लेकिन अल्लाह तआ़ला फ़रमाते हैं कि हमने इन्सान को पैदा किया और उसके अन्दर नफ़्सानी तक़ाज़े रखे, भूख उसको लगती है, प्यास उसको लगती है, जिस्म ढांपने के लिये उसको कपड़े की भी ज़रूरत है, सर छुपाने के लिये उसको मकान की भी ज़रूरत है, ये सारे तक़ाज़े हमने उसके अन्दर पैदा किये, अब हमारा मुतालबा इस इन्सान से यह है कि वह इन तक़ाज़ों भी को पूरा करे और उसके साथ साथ हमारे हुकूक़ भी अदा करे, तब वह इन्सान कामिल बनेगा। और अगर वह हाथ पर हाथ रख कर बैठ गया तो ऐसा इन्सान चाहे कितना ही ज़िक्र व शुग्ल में मश्गूल हो, लेकिन ऐसा शख़्स हमारे यहां क़बूलियत का और कुर्ब का मक़ाम हासिल नहीं कर सकता।

हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम और हलाल रिज़्क़ के तरीक़े

देखिये! जितने अंबिया अ़लैहिमुस्सलाम इस दुनिया में तश्रीफ़ लाये हर एक से अल्लाह तआ़ला ने हलाल रोज़ी कमाने का काम ज़रूर कराया और हलाल रिज़्क़ के हासिल करने के लिये हर नबी ने

जद्दोजिहद की, कोई नबी मज़दूरी करते थे, कोई नबी बढ़ई का काम करते थे, कोई नबी बकरियां चराया करते थे, ख़ुद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने मक्का मुकर्रमा के पहाड़ों पर उज्रत पर बकरियां चराई, बाद में फ़रमाया करते थे कि मुझे याद है कि मैं अजयाद के पहाड़ों पर लोगों की बकरियां चराया करता था। बहर हाल! बकरियां आपने चराई, मज़दूरी आपने की, तिजारत आपने की। चुनांचे तिजारत के सिलसिले में आपने मुल्क शाम के दो सफ़र किये, जिसमें आप हज़रत ख़दीजा रज़ियल्लाहु अन्हा का तिजारत का सामान लेकर शाम तशरीफ़ ले गये, खेती बाड़ी आपने की, मदीना तैयबा से कुछ फ़ासले पर जरफ़ जगह थी, वहां पर आपने खेती का काम किया। इसलिये हलाल रोज़ी कमाने के जितने तरीक़े हैं उन सब में आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का हिस्सा और आपकी सुन्नत मौजूद है। अगर कोई शख़्स नौकरी कर रहा है तो यह नियत कर ले कि मैं हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की इत्तिबा में यह नौकरी कर रहा हूं। अगर कोई शख़्स तिजारत कर रहा है तो वह नियत कर ले कि मैं हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की पैरवी में तिजारत कर रहा हूं और अगर कोई खेती बाड़ी कर रहा है तो वह नियत कर ले कि मैं नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की इत्तिबा में खेती बाड़ी कर रहा हूं तो इस सूरत में ये सब काम दीन का हिस्सा बन जायेंगे।

मोमिन की दुनिया भी दीन है

इस हदीस ने एक ग़लत फ़हमी पैदा कर दी है कि दीन और चीज़ का नाम है और दुनिया किसी अलग चीज़ का नाम है। हक़ीक़त यह है कि अगर इन्सान ग़ौर से देखे तो एक मोमिन की दुनिया भी दीन है, जिस काम को वह दुनिया का काम समझ रहा है यानी रिज़्क़ हासिल करने की फ़िक्र और कोशिश, यह भी हक़ीक़त में दीन ही का हिस्सा है। बशर्ते कि उसको सही तरीक़े से करे, और नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की तालीम की इत्तिबा करे। बहर हाल!

एक बात तो इस से यह मालूम हुई कि हलाल रिज़्क़ की तलब भी दीन का हिस्सा है, अगर यह बात एक बार ज़ेहन में बैठ जाये तो फिर बेशुमार गुमराहियों का रास्ता बन्द हो जाये।

बाज़ सूफ़िया-ए-किराम का तवक्कुल करके बैठ जाना

बाज़ सूफ़िया-ए-किराम की तरफ़ यह मन्सबू है और उनसे यह तरीक़ा नक़ल किया गया है कि उन्होंने कोई पेशा इख़्तियार नहीं किया और रिज़्क़ की तलब में कोई काम नहीं किया, बल्कि तवक्कुल की ज़िन्दगी इस तरह गुज़ार दी कि बस अपनी जगह पर बैठे हैं, अल्लाह तआ़ला ने जो कुछ ग़ैब से भेज दिया उस पर शुक्र किया और क़नाअत कर ली, अगर नहीं भेजा तो सब्र कर लिया। बाज़ सूफ़िया-ए-किराम से यह तर्ज़े अमल नक़ल किया गया है। इस बारे में यह समझ लें कि सूफ़िया-ए-किराम से इस क़िस्म का जो तर्ज़े अ़मल नक़ल किया गया है वह दो हाल से ख़ाली नहीं, या तो वे सूफ़िया-ए-किराम ऐसे थे जिन पर किसी हालत के ग़ल्बे की कैफ़ियत तारी हुई और वह इस्तिग़राक़ के आ़लम में थे, और अपने आ़म होश व हवास के आ़लम में नहीं थे, और जब इन्सान अपने होश व हवास में न हो तो वह शरीअ़त के अहकाम का मुकल्लफ़ नहीं होता, इस वजह से अगर उन सूफ़िया-ए-किराम ने यह तर्ज़े अमल इख़्तियार किया तो यह उनका अपना मख़्सूस मामला था तमाम उम्मत के लिये वह आ़म हुक्म नहीं था, या फिर उन सूफ़िया-ए-किराम का तवक्कुल इतना ज़बरदस्त और कामिल था कि वे इस बात पर राज़ी थे कि अगर हम पर महीनों फ़ाक़ा भी गुज़रता है तो हमें कोई फ़िक्र नहीं, हम न तो किसी के सामने हाथ फैलायेंगे न किसी के सामने शिकवा करेंगे, ये सूफ़िया बड़े हिम्मत वाले थे, बड़े आला दर्जे के मक़ामात पर फ़ाइज़ थे, उनहोंने इसी पर इक्तिफ़ा किया कि हम अपने ज़िक्र व शुग्ल में मश्गूल रहेंगे और उसके नतीजे में फ़ाक़े की नौबत आती है तो कोई बात नहीं, और उनके साथ दूसरों के हुक़ूक़ वाबस्ता नहीं थे, न बीवी बच्चे थे कि उनको खाना खिलाना

हो। इसलिये ये उन सूफ़िया-ए-किराम के मख़्सूस हालात थे और उनका ख़ास तर्ज़े अमल था जो आम लोगों के लिये और हम जैसे कमज़ोरों के लिये पैरवी के क़ाबिल नहीं है, हमारे लिये नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने सुन्नत का जो रास्ता बताया वह यह है कि रिज़्क़े हलाल की तलब दूसरे दीनी फ़राइज़ के बाद दूसरे दर्जे का फ़रीज़ा है।

तलब "हलाल" की हो

दूसरी बात यह है कि रिज़्क़ तलब करना फ़रीज़ा उस वक़्त है जब तलब हलाल की हो, रोटी कपड़ा और पैसा बज़ाते ख़ुद मक़सूद नहीं है, यह नियत न हो कि बस पैसा हासिल करना है, चाहे जिस तरह भी हासिल हो, चाहे जायज़ तरीक़े से हासिल हो या ना जायज़ तरीक़े से हासिल हो, हलाल तरीक़े से हासिल हो या हराम तरीक़े से हासिल हो। उस सूरत में यह तलब, तलबे हलाल न हुई जिसकी फ़ज़ीलत बयान की गयी है और जिसको फ़रीज़ा क़रार दिया गया है। क्योंकि मोमिन का यह अमल उस वक़्त दीन बनता है जब वह इस्लामी तालीमात के मुताबिक़ उसको हासिल करे। अब अगर उसने हलाल व हराम की तमीज़ हटा दी और जायज़ व ना जायज़ का सवाल ज़ेहन से मिटा दिया तो फिर एक मुसलमान में और काफ़िर में रिज़्क़ हासिल करने के एतिबार से कोई फ़र्क़ न रहा। बात जभी बनेगी जब वह रिज़्क़ तो ज़रूर तलब करे लेकिन अल्लाह तआला की क़ायम की हुई हदों के अन्दर करे, उसको एक एक पैसे के बारे में फ़िक्र लगी हो कि यह पैसा हलाल तरीक़े से आ रहा है या हराम तरीक़े से आ रहा है, यह पैसा अल्लाह तआला की रिज़ा के मुताबिक़ आ रहा है या उसके ख़िलाफ़ आ रहा है, अगर वह अल्लाह तआला की रिज़ा के ख़िलाफ़ आ रहा है तो उसको जहन्नम का अंगारा समझ कर छोड़ दे, कितनी बड़ी से बड़ी दौलत हो, लेकिन वह हराम तरीक़े से आ रही है तो उसको लात मार दे और किसी क़ीमत पर भी उस हराम को अपनी ज़िन्दगी का हिस्सा बनाने पर राज़ी न हो।

मेहनत की हर कमाई हलाल नहीं होती

बाज़ लोगों ने रोज़ी कमाने का वह ज़रिया इख़्तियार कर रखा है जो हराम है और शरीअ़त ने उसकी इजाज़त नहीं दी। जैसे सूद को रोज़गार का ज़रिया बनाया हुआ है, अब अगर उनसे कहा जाये कि यह तो ना जायज़ और हराम है, इस तरीक़े से पैसे नहीं कमाना चाहियें, तो जवाब यह दिया जाता है कि हम तो अपनी मेहनत का खा रहे हैं, अपनी मेहनत लगा रहे हैं, अपना वक़्त ख़र्च कर रहे हैं, अब अगर वह काम हराम और ना जायज़ है तो हमारा इस से क्या ताल्लुक़?

ख़ूब समझ लें कि अल्लाह तआ़ला के यहां हर मेहनत जायज़ नहीं होती, बल्कि वह मेहनत जायज़ होती है जो अल्लाह तआ़ला के बताये हुए तरीक़े के मुताबिक़ हो, अगर उस तरीक़े के ख़िलाफ़ इन्सान हज़ार मेहनत कर ले लेकिन उसके ज़रिये जो पैसे कमायेगा वे पैसे हलाल नहीं होंगे बल्कि हराम होंगे। अब कहने को तो एक "तवाइफ़" भी मेहनत करती है, वह भी कह सकती है कि मैं अपनी मेहनत के ज़रिये पैसे कमा रही हूं, इसलिये मेरी आमदनी हलाल होनी चाहिये। इसी तरह आमदनी के जो हराम तरीक़े और ज़रिए हैं उनको यह कह कर हलाल करने की कोशिश करना कि यह हमारी मेहनत की आमदनी है, शरई तौर पर इसकी कोई गुन्जाइश नहीं है।

यह रोज़गार हलाल है या हराम?

इसलिये जब रोज़गार का कोई ज़रिया सामने आये तो पहले यह देखो कि वह तरीक़ा जायज़ है या नहीं? शरीअ़त ने उसको हलाल क़रार दिया है या हराम? अगर शरीअ़त ने हराम क़रार दिया है तो फिर उस ज़रिया-ए-आमदनी से चाहे कितने ही दुनियावी फ़ायदे हासिल हो रहे हों, इन्सान उसको छोड़ दे और उस ज़रिये को इख़्तियार करे जो अल्लाह को राज़ी करने वाला हो, चाहे उसमें आमदनी और नफ़ा कम हो।

बैंक का मुलाज़िम क्या करे?

चुनांच बहुत से लोग बैंक की नौकरी के अन्दर मुब्तला हैं और बैंक के अन्दर बहुत सारा कारोबार सूद पर होता है, अब जो शख़्स वहां पर मुलाज़िम है अगर वह सूद के कारोबार में उनके साथ मददगार बन रहा है तो यह नौकरी ना जायज़ और हराम है। चुनांचे उलमा–ए–किराम फ़रमाते हैं कि अगर कोई शख़्स बैंक की ऐसी नौकरी में मुब्तला हो और बाद में अल्लाह तआला उसको हिदायत दें और उसको बैंक की नौकरी छोड़ने की फ़िक्र हो जाये तो उसको चाहिये कि जायज़ ज़रिया–ए–आमदनी तलाश करे और जब दूसरा ज़रिया–ए–आमदनी मिल जाये तो उसको छोड़ दे। लेकिन जायज़ ज़रिया–ए–आमदनी इस तरह तलाश करे जिस तरह एक बेरोज़गार आदमी तलाश करता है। यह न हो कि बेफ़िक्री के साथ बैंक की ना जायज़ नौकरी में लगा हुआ है और ज़ेहन में यह बैठा हुआ है कि जब दूसरी नौकरी मिल जायेगी तो इसको छोड़ दूंगा। बल्कि इस तरह तलाश करे जिस तरह एक बेरोज़गार आदमी तलाश करता है, और जब दूसरी नौकरी मिल जाये तो मौजूदा नौकरी को छोड़ दे और उसको इख़्तियार कर ले, चाहे उसमें आमदनी कम हो।

हलाल रोज़ी में बर्कत

अल्लाह तआला ने हलाल रोज़ी के अन्दर जो बर्कत रखी है वह हराम के अन्दर नहीं रखी। हराम की बहुत बड़ी रक़म से वह फ़ायदा हासिल नहीं होता, जो हलाल की थोड़ी सी रक़म में हासिल हो जाता है। हुज़ूरे अक़्दस नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम हर वुज़ू के बाद यह दुआ फ़रमाया करते थे:

"اَللّٰهُمَّ اغْفِرْلِیْ ذَنْبِیْ وَ وَسِّعْ لِیْ فِیْ دَارِیْ وَبَارِكْ لِیْ فِیْ رِزْقِیْ" (ترمذی شریف)

ऐ अल्लाह, मेरे गुनाह की मग़फ़िरत फ़रमा और मेरे घर में वुसअत फ़रमा और मेरे रिज़्क़ में बर्कत अता फ़रमा। आजकल लोग बर्कत की क़द्र व क़ीमत को नहीं जानते बल्कि रुपये पैसे की गिन्ती

बहुत ज़्यादा हो गयी, यह देख कर खुश हो जाते हैं कि हमारा बैंक बैलेंस बहुत ज़्यादा हो गया, रुपये की गिन्ती बहुत ज़्यादा हो गयी लेकिन उस रुपये से क्या फ़ायदा हासिल हुआ, उन रुपयों से कितनी राहत मिली, कितना सुकून हासिल हुआ? इसका हिसाब नहीं करते, लाखों का बैंक बैलेंस है लेकिन सुकून मयस्सर नहीं, राहत मयस्सर नहीं। बताइये वह लाखों का बैंक बैलेंस किस काम का? और अगर पैसे थोड़े हैं लेकिन अल्लाह तआला ने राहत और सुकून अता फ़रमाया हुआ है तो यह हक़ीक़त में "बर्कत" है और यह बर्कत वह चीज़ है जो बाज़ार से ख़रीद कर नहीं लाई जा सकती, लाखों और करोड़ों ख़र्च करके भी हासिल नहीं की जा सकती, बल्कि यह सिर्फ़ अल्लाह तआला की देन है और उसकी अता है, अल्लाह तआला जिसको अता फ़रमा दें उसी को यह बर्कत नसीब होती है, दूसरे को नसीब नहीं होती। और यह बर्कत हलाल रिज़्क़ में होती है, हराम माल के अन्दर यह बर्कत नहीं होती, चाहे वह हराम माल कितना ज़्यादा हासिल हो जाये। इसलिये इन्सान जो कमा रहा है वह इसकी फ़िक्र करे कि यह लुक़्मा जो मरे और बीवी बच्चों के हलक़ में जा रहा है और यह पैसा जो मेरे पास आ रहा है यह अल्लाह तआला की रिज़ा के मुताबिक़ है या नहीं? शरीअत के अहकाम के मुताबिक़ है या नहीं? हर इन्सान अपने अन्दर यह फ़िक्र पैदा करे।

तन्ख़्वाह का यह हिस्सा हराम हो गया

फिर बाज़ हराम माल वे हैं जिनका इल्म सब को है, जैसे सब जानते हैं कि सूद हराम है, रिश्वत लेना हराम है वग़ैरह। लेकिन हमारी ज़िन्दगी में उनके अलावा भी बहुत सी आमदनियां इस तरह दाख़िल हो गयी हैं कि हमें उनके बारे में यह एहसास भी नहीं कि ये आमदनियां हराम हैं। जैसे आपने किसी जगह पर जायज़ और शरीअत के मुताबिक़ नौकरी इख़्तियार कर रखी है लेकिन नौकरी का जो वक़्त तय हो चुका है उस वक़्त में आप कमी कर रहे हैं और पूरा वक़्त नहीं दे रहे हैं, बल्कि डन्डी मा रहे हैं। जैसे एक शख़्स की

आठ घन्टे की ड्यूटी है मगर वह उनमें से एक घन्टा चोरी छुपे दूसरे कामों में ज़ाया कर देता है, इसका नतीजा यह होगा कि महीने के ख़त्म पर जो तन्ख़्वाह मिलेगी उसका आठवां हिस्सा हराम हो गया, वह आठवां हिस्सा रिज़्के हलाल न रहा बल्कि वह रिज़्के हराम हो गया, लेकिन इसका एहसास ही नहीं कि यह हराम माल हमारी आमदनी में शामिल हो रहा है।

थाना भवन के मदरसे के उस्ताज़ों का तन्ख़्वाह कटवाना

हकीमुल उम्मत हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली साहिब थानवी रहमतुल्लाहि अ़लैहि की ख़ानक़ाह में जो मदरसा था, उस मदरसे के हर उस्ताज़ और हर मुलाज़िम के पास एक रोज़नामचा रखा रहता था। जैसे एक उस्ताज़ है और उसको छह घन्टे सबक़ पढ़ाना है, अब सबक़ पढ़ाने के दौरान उसके पास कोई मेहमान मिलने के लिये आ गया तो जिस वक़्त मेहमान आता, वह उस्ताज़ उसके आने का वक़्त उस रोज़नामचे में लिख लेता, और फिर जब वह मेहमान रुख़्सत हो कर वापस जाता तो उसके जाने का वक़्त भी नोट कर लेता, सारा महीना वह इसी तरह करता और जब महीने के आख़िर में तन्ख़्वाह मिलने का वक़्त आता तो वह उस्ताज़ दफ़्तर में एक दरख़्वास्त देता कि इस महीने के दौरान मेरा इतना वक़्त मेहमानों के साथ ख़र्च हुआ है, इसलिये इतनी देर की तन्ख़्वाह मेरी तन्ख़्वाह से कम कर ली जाये। इस तरह हर उस्ताज़ और हर मुलाज़िम दरख़्वास्त देकर अपनी तन्ख़्वाह कटवाता, सिर्फ़ मेहमान के आने की हद तक नहीं, बल्कि मदरसे का वह वक़्त किसी भी ज़ाती काम में ख़र्च होता तो वह वक़्त नोट करके उसकी तन्ख़्वाह कटवाता।

वजह इसकी यह थी कि यह वक़्त बिका हुआ था, अब यह वक़्त हमारा नहीं है, जिस इदारे में आपने नौकरी की है वह वक़्त उस इदारे की मिल्कियत बन गया। अब अगर आपने उस वक़्त के अन्दर कमी की तो उतने वक़्त की तन्ख़्वाह आपके लिये हराम हो गयी। आज हम लोगों को इस तरफ़ ध्यान नहीं है, हम लोग तो सिर्फ़ सूद

खाने और रिश्वत लेने को हराम समझते हैं, लेकिन इन मुख़्तलिफ़ तरीक़ों से हमारी आमदनियों में जो हराम की मिलावट हो रही है, उसकी तरफ़ हमारा ज़ेहन नहीं जाता।

ट्रेन के सफ़र में पैसे बचाना

या जैसे आप ट्रेन में सफ़र कर रहे हैं और जिस दर्जे का आप ने टिकट ख़रीदा है उस से ऊंचे दर्जे के डब्बे में सफ़र कर लिया, और दोनों दर्जों के दरमियान किराये का जो फ़र्क़ है उतने पैसे आपने बचा लिये, तो जो पैसे बचे वे आपके लिये हराम हो गये और वह हराम माल आपकी हलाल आमदनी में शामिल हो गया और आपको पता भी न चला कि यह हराम माल शामिल हो गया।

ज़ायद सामान का किराया

हज़रत थानवी रह्मतुल्लाहि अ़लैहि से ताल्लुक़ रखने वालों के बारे में यह बात मशहूर व मारूफ़ थी कि जब वे रेल का सफ़र करते तो अपने सामान का वज़न ज़रूर कराया करते थे, और एक मुसाफ़िर को जितना सामान ले जाने की इजाज़त होती, अगर सामान उस वज़न से ज़्यादा होता तो वे ज़ायद सामान का किराया रेलवे को अदा करते और फिर सफ़र शुरू करते। यह कार्रवाई किये बग़ैर सफ़र करने का उनके यहां तसव्वुर ही नहीं था।

हज़रत थानवी रह्मतुल्लाहि अ़लैहि का एक सफ़र

एक बार ख़ुद हज़रत थानवी रह्मतुल्लाहि अ़लैहि के साथ यह वाक़िआ पेश आया कि एक बार सफ़र करने के लिये स्टेशन पहुंचे वहां इत्तिफ़ाक़ से रेलवे गार्ड खड़ा था जो हज़रते वाला को पहचानता था, वह पूछने लगा कि हज़रत कैसे तशरीफ़ लाये? हज़रत ने फ़रमाया कि मैं अपने सामान का वज़न कराने आया हूं ताकि अगर ज़्यादा हो तो उसका किराया अदा कर दूं। उस गार्ड ने कहा हज़रत! आप वज़न कराने के चक्कर में क्यों पड़ रहे हैं, आप सामान को वज़न कराये बग़ैर सफ़र कर लें, मैं आपके साथ हूं और मैं उस ट्रेन

का गार्ड हूं आपको रास्ते में कोई नहीं पकड़ेगा, और अगर सामान ज़्यादा हो तो आपसे कोई शख़्स भी जुर्माने का मुतालबा नहीं करेगा। हज़रत ने गार्ड से पूछा कि आप कहां तक मेरे साथ जायेंगे? उस गार्ड ने जवाब दिया कि मैं फ़लां स्टेशन तक जाऊंगा, हज़रते वाला ने पूछा कि उसके बाद फिर क्या होगा? उसने कहा कि उसके बाद जो गार्ड आयेगा मैं उस से कह दूंगा कि इनके सामान का ज़रा ख़्याल रखना, हज़रत ने फिर पूछा कि वह गार्ड कहां तक जायेगा? गार्ड ने जवाब दिया कि वह गार्ड तो जहां तक आपकी मन्ज़िल है वहां तक आपके साथ सफ़र करेगा, इसलिये आपको कोई ख़तरा नहीं है। हज़रते वाला ने फ़रमाया कि मुझे तो और भी आगे जाना है, उसने पूछा आगे कहां जाना है? हज़रते वाला ने फ़रमाया कि मुझे तो उस मन्ज़िल से आगे अल्लाह तबारक व तआला के पास जाना है, वहां कौन सा गार्ड मेरे साथ जायेगा, जो मुझे अल्लाह तआला के सामने सवाल व जवाब से बचायेगा?

फिर हज़रते वाला ने फ़रमाया कि यह ट्रेन तुम्हारी मिल्कियत नहीं है, इसके ऊपर तुम्हारा इख़्तियार नहीं है, तुम्हें महकमे की तरफ़ से इजाज़त नहीं है कि तुम किसी शख़्स के ज़्यादा सामान को किराये के बग़ैर छोड़ दो। इसलिये मैं तुम्हारी वजह से दुनियावी पकड़ से तो बच जाऊंगा लेकिन इस वक़्त जो चन्द पैसे बचा लूंगा और वे चन्द पैसे मेरे लिये हराम हो जायेंगे, उन हराम पैसों के बारे में जब अल्लाह तआला के सामने सवाल व जवाब होगा तो वहां पर कौन सा गार्ड मुझे बचायेगा और कौन जवाब देही करेगा? ये बातें सुनकर उस गार्ड की आंखें खुल गयीं और फिर हज़रते वाला सामान वज़न करा कर उसके ज़ायद पैसे अदा करके सफ़र पर रवाना हो गये।

ये हराम पैसे हलाल रिज़्क़ में शामिल हो गये

इसलिये अगर किसी ने इस तरह रेल गाड़ी में या हवाई जहाज़ में सफ़र के दौरान इजाज़त से ज़्यादा सामान के साथ सफ़र कर लिया और उस सामान का वज़न करा कर उसका किराया अलग से

अदा नहीं किया तो उसके नतीजे में जो पैसे बचे वे हराम बचे और ये हराम पैसे हमारे हलाल रिज़्क़ के अन्दर शामिल हो गये, इसका नतीजा यह हुआ कि हमारा जो माल अच्छा ख़ासा हलाल पैसा था उसमें हराम की मिलावट हो गयी।

यह बेबर्कती क्यों न हो

आज हम लोग जो बेबर्कती की वजह से परेशान हैं और हर शख़्स रोना रो रहा है, जो लखपती है वह भी रो रहा है, और जो करोड़पती है वह भी रो रहा है कि साहिब ख़र्चा पूरा नहीं होता और मसाइल हल नहीं होते। हक़ीक़त में यह बेबर्कती इसलिये है कि हलाल व हराम की तमीज़ और उसकी फ़िक्र उठ गयी है। बस चन्द मख़्सूस चीज़ों के बारे में तो यह ज़ेहन में बिठा लिया है कि ये हराम हैं, उनसे तो किसी न किसी तरीक़े से बचने की कोशिश करते हैं लेकिन मुख़्तलिफ़ ज़रियों से जो ये हराम पैसे हमारी आमदनियों में दाख़िल हो रहे हैं उनकी फ़िक्र नहीं।

टेलीफ़ोन और बिजली की चोरी

या जैसे टेलीफ़ोन के महकमे वालों से दोस्ती कर ली और अब उसके ज़रिये मुल्की और ग़ैर मुल्की कॉलें हो रही हैं, दुनिया भर में बातें हो रही हैं और उन कॉलों पर एक पैसा अदा नहीं किया जा रहा है। यह हक़ीक़त में महकमे की चोरी हो रही है और उस चोरी के नतीजे में जो पैसे बचे वह हराम माल है और वह हराम माल हलाल के अन्दर शामिल हो रहा है। या जैसे बिजली की चोरी हो रही है कि बिजली का मीटर बन्द पड़ा है लेकिन बिजली इस्तेमाल हो रही है, इस तरह जो पैसे बचे वह हराम माल है और वह हराम माल हमारे हलाल माल के अन्दर शामिल हो रहा है और हराम माल की मिलावट हो रही है। इसलिये न जाने कितने शोबे ऐसे हैं जिनमें हमने अपने लिये हराम के रास्ते खोल रखे हैं और हराम माल हमारे हलाल माल में दाख़िल हो रहा है। इसका नतीजा यह है कि हम

बेबर्कती के अज़ाब के अन्दर गिरफ़्तार हैं।

हलाल व हराम की फ़िक्र पैदा करें

इसलिये हर काम करते वक़्त यह देखो कि जो काम मैं कर रहा हूं यह हक़ है या नाहक़ है। अगर इन्सान इस फ़िक्र के साथ ज़िन्दगी गुज़ारे कि नाहक़ कोई पैसा उसके माल के अन्दर शामिल न हो तो यक़ीन रखिये फिर सारी उम्र नवाफ़िल न पढ़ीं और ज़िक्र व तस्बीह न की, लेकिन अपने आपको हराम से बचा कर क़ब्र तक ले गया तो इन्शा अल्लाह सीधा जन्नत में जायेगा। और अगर हलाल व हराम की फ़िक्र नहीं की मगर तहज्जुद की नमाज़ भी पढ़ रहा है, इश्राक़ भी पढ़ रहा है, ज़िक्र व तस्बीह भी कर रहा है तो ये नवाफ़िल और यह ज़िक्र इन्सान को हराम माल के अज़ाब से नहीं बचा सकेंगे। अल्लाह तआ़ला अपने फ़ज़्ल व करम से हर मुसलमान की हिफ़ाज़त फ़रमाये आमीन।

यहां तो आदमी बनाये जाते हैं

हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली साहिब थानवी रह्मतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाया करते थे कि लोग ख़ानक़ाहों में ज़िक्र व शुग़्ल सीखने के लिये जाते हैं, अगर ज़िक्र व शुग़्ल सीखना है तो बहुत सारी ख़ानक़ाहें खुली हैं वहां चले जायें, लेकिन हमारे यहां तो आदमी बनाने की कोशिश की जाती है और शरीअ़त के जो अहकाम हैं उन पर अ़मल करने वाला होने की फ़िक्र पैदा की जाती है, चुनांचे रेलवे स्टेशन पर अगर कोई दाढ़ी वाला आदमी अपना सामान वज़न कराने के लिये बुकिंग आफ़िस पहुंचता तो वे दफ़्तर वाले उसको देखते ही पहचान लेते कि इसका ताल्लुक़ थाना भवन से है, इसलिये उस से ख़ुद पूछ लेते कि आप थाना भवन जा रहे हैं?

चुनांचे हज़रत थानवी रह्मतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं कि अगर मुझे अपने ताल्लुक़ रखने वालों में से किसी के बारे में यह मालूम हो जाये कि उसके मामूलात छूट गये हैं तो मुझे ज़्यादा दुख और

शिकायत नहीं होती, लेकिन अगर किसी के बारे में यह मालूम हो जाये कि उसने हलाल व हराम को एक कर रखा है और उसको मामलात के अन्दर हलाल व हराम की फ़िक्र नहीं है तो मुझे उस शख़्स से नफ़रत हो जाती है।

एक ख़लीफ़ा का सबक़ सिखाने वाला वाक़िआ

हज़रत थानवी रह्मतुल्लाहि अ़लैहि के एक बड़े ख़लीफ़ा थे जिनको आपने बाक़ायदा ख़िलाफ़त अ़ता फ़रमाई थी। एक बार वह एक सफ़र से तश्रीफ़ लाये तो उनके साथ एक बच्चा भी था, हज़रते वाला की ख़िदमत में हाज़िर हुए और सलाम व दुआ हुई, ख़ैरियत मालूम की। हज़रते वाला ने पूछा कि आप कहां से तश्रीफ़ ला रहे हैं? उन्होंने जवाब दिया कि फ़लां जगह से आ रहा हूं। हज़रत ने पूछा कि रेल गाड़ी से आ रहे हैं? उन्होंने जवाब दिया कि जी हां। हज़रत ने पूछा कि यह बच्चा जो तुम्हारे साथ है इसका टिकट पूरा लिया था या आधा लिया था? अब आप अन्दाज़ा लगायें कि ख़ानक़ाह के अन्दर पीर साहिब अपने मुरीद से यह सवाल कर रहे हैं कि बच्चे का टिकट पूरा लिया था या आधा लिया था? जब कि दूसरी ख़ानक़ाहों में यह सवाल करने का कोई तसव्वुर ही नहीं है। दूसरी ख़ानक़ाहों में तो यह सवाल होता है कि मामूलात पूरे किये थे या नहीं? तहज्जुद की नमाज़ पढ़ी थी या नहीं? इश्राक़ की नमाज़ पढ़ी थी या नहीं? लेकिन यहां यह सवाल हो रहा है कि यह बच्चा जो आपके साथ है इसका टिकट आधा लिया था या पूरा लिया था? उन्होंने जवाब दिया कि हज़रत! आधा लिया था। हज़रत ने पूछा इस बच्चे की उम्र क्या है? उन्होंने जवाब दिया कि हज़रत! यह बच्चा वैसे तो तेरह साल का है लेकिन देखने में बारह साल का लगता है, इसलिये आधा टिकट लिया था, इसलिए आधा टिकट लिया था। यह जवाब सुनकर हज़रते वाला को सख़्त रंज हुआ और उनसे ख़िलाफ़त वापस ले ली और फ़रमाया कि मुझ से ग़लती हुई, तुम इस लायक़ नहीं हो कि तुम्हें ख़िलाफ़त दी जाये और तुम्हें मजाज़ बनाया जाये,

इसलिये कि तुम्हें हलाल व हराम की फ़िक्र नहीं। जब बच्चे की उम्र बारह साल से ज़्यादा हो गयी, चाहे एक दिन ही ज़्यादा क्यों न हुई हो तो उस वक़्त तुम पर वाजिब था कि तुम बच्चे का पूरा टिकट लेते, तुमने आधा टिकट लेकर जो पैसे बचाये वे हराम के पैसे बचाये और जिसको हराम से बचने की फ़िक्र न हो वह ख़लीफ़ा बनने का अहल नहीं। चुनांचे ख़िलाफ़त वापस ले ली।

अगर कोई शख़्स हज़रत थानवी रह्मतुल्लाहि अलैहि से आकर कहता कि हज़रत मामूलात छूट गए, तो हज़रते वाला फ़रमाते कि मामूलात छूट गए तो इस्तिग़फ़ार करो और दोबारा शुरू कर दो, और हिम्मत से काम लो और इस बात का दोबारा पक्का अहद करो कि आइन्दा नहीं छोड़ेंगे, और मामूलात छोड़ने की बिना पर कभी ख़िलाफ़त वापस नहीं ली, लेकिन हलाल व हराम की फ़िक्र न करने पर ख़िलाफ़त वापस ले ली। इसलिये कि जब हलाल व हराम की फ़िक्र न हो तो वह इन्सान इन्सान नहीं। इसलिये कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि:

طلب الحلال فريضة بعد الفريضة

यानी हलाल की तलब दूसरे फ़राइज़ के बाद यह भी फ़र्ज़ है।

हराम माल, हलाल माल को भी तबाह कर देता है

इसलिये हम में से हर शख़्स अपना जायज़ा ले कि जो पैसे उसके पास आ रहे हैं और जो काम वह कर रहा है, उनमें कहीं हराम माल की मिलावट तो नहीं है। हराम माल की मिलावट की चन्द मिसालें मैंने आपके सामने समझाने के लिये पेश कर दीं, वर्ना न जाने कितने काम ऐसे हैं जिनके ज़रिये ना दानिस्ता तौर पर और ग़ैर शऊरी तौर पर हमारे हलाल माल में हराम माल की मिलावट हो जाती है, और बुज़ुर्गों का मकूला है कि जब कभी किसी हलाल माल के साथ हराम माल लग जाता है तो वह हराम हलाल को भी तबाह करके छोड़ता है। यानी उस हराम माल के शामिल होने के नतीजे में हलाल माल की बर्कत, उसका सुकून और राहत तबाह हो जाती है।

इसलिये हर शख़्स इसकी फ़िक्र करे और हर शख़्स अपने एक एक अमल का जायज़ा ले और अपनी आमदनी का जायज़ा ले कि हमारे हलाल माल में कहीं कोई हराम माल तो शामिल नहीं हो रहा है। अल्लाह तआला हम सब को इस फ़िक्र की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

रिज़्क़ की तलब ज़िन्दगी का मक़सद नहीं

तीसरी बात यह मालूम हुई कि इस हदीस ने जहां एक तरफ़ हलाल रोज़ी की अहमियत बताई कि हलाल रोज़ी की तलब दीन से ख़ारिज कोई चीज़ नहीं है, बल्कि यह भी दीन का एक हिस्सा है, वहां इस हदीस ने हमें हलाल रोज़ी की तलब का दर्जा भी बता दिया कि इसका कितना बड़ा दर्जा और कितनी अहमियत है, आजकी दुनिया ने रोज़गार को, रोज़ी रोटी को और रुपये पैसे कमाने को अपनी ज़िन्दगी का असली मक़सद क़रार दे रखा है, आज हमारी सारी दौड़ धूप इसी के इर्द गिर्द घूम रही है कि पैसा किस तरह हासिल हो, किस तरह पैसों में इज़ाफ़ा किया जाये और किस तरह अपने कारोबार को तरक़्क़ी दी जाये, और इसी को हमने अपनी ज़िन्दगी की आख़री मन्ज़िल क़रार दे रखा है। सरकारे दो आलम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इस हदीस में बता दिया कि रिज़्क़े हलाल की तलब फ़रीज़ा तो है लेकिन दूसरे दीनी फ़राइज़ के बाद इसका दर्जा आता है, यह इन्सान की ज़िन्दगी का असली मक़सद नहीं है, बल्कि यह एक ज़रूरत है और इस ज़रूरतत के तहत इन्सान को न सिर्फ़ यह कि रिज़्क़े हलाल के तलब की इजाज़त दी गयी है बल्कि इसकी तरग़ीब और ताकीद की गयी है कि तुम रिज़्क़े हलाल तलब करो, लेकिन यह रिज़्क़े हलाल की तलब तुम्हारा ज़िन्दगी का असली मक़सद नहीं है, बल्कि ज़िन्दगी का मक़सद कुछ और है, और वह है अल्लाह जल्ल जलालुहू के साथ ताल्लुक़ क़ायम करना, अल्लाह तआला की बन्दगी और इबादत करना, यह इन्सान की ज़िन्दगी का असली मक़सद है, और रोज़गार और कारोबार का

दर्जा उसके बाद आता है।

रिज़्क़ की तलब में फ़राइज़ का छोड़ देना जायज़ नहीं

इसलिये जिस जगह पर रोज़गार में और अल्लाह तबारक व तआला के लागू किये हुए फ़राइज़ के दरमियान टकराव हो जाये, वहां पर अल्लाह तआला के नाफ़िज़ किये हुए फ़राइज़ को तरजीह होगी। बाज़ लोग हद से बढ़ जाते हैं, जब उन्होंने यह सुना कि तलबे हलाल भी दीन का एक हिस्सा है तो उसको इतना आगे बढ़ाया कि इस तलबे हलाल के नतीजे में अगर नमाज़ें ज़ाया हो रही हैं तो उनको इसकी परवाह नहीं, हलाल व हराम एक हो रहा है तो उनको इसकी परवाह नहीं। अगर उनसे कहा जाये कि नमाज़ पढ़ो तो जवाब देते हैं कि यह काम जो हम कर रहे हैं यह भी तो दीन का एक हिस्सा है, हमारे दीन में दीन व दुनिया का कोई फ़र्क़ नहीं है। इसलिये जो काम हम कर रहे हैं यह भी दीन का एक हिस्सा है।

एक डॉ. साहिब का दलील पकड़ना

कुछ समय पहले एक औरत ने मुझे बताया कि उनके शौहर डॉक्टर हैं, वह दवाख़ाना के समय में नमाज़ नहीं पढ़ते और जब दवाख़ाना बन्द करके घर वापस आते हैं तो घर आकर तीनों नमाज़ें इकट्ठी पढ़ लेते हैं। मैं उनसे कहती हूं कि आप नमाज़ को क़ज़ा कर देते हैं यह अच्छा नहीं है, आप वक़्त पर नमाज़ पढ़ लिया करें, तो जवाब में शौहर कहते हैं कि इस्लाम ने मख़्लूक़ की ख़िदमत सिखाई है, और यह डॉक्टरी और दवा देने का जो काम हम कर रहे हैं यह भी मख़्लूक़ की ख़िदमत कर रहे हैं, और यह भी दीन का एक हिस्सा है। अब अगर हमने मख़्लूक़ की ख़िमदत की ख़ातिर नमाज़ को छोड़ दिया तो इसमें कोई हर्ज नहीं। अब देखिये! हलाल कमाने के लिये उन्होंने दीनी फ़रीज़े को छोड़ दिया, हालांकि हुज़ूरे अक़्दस सल्ल. यह फ़रमा रहे हैं कि यह फ़रीज़ा तो है लेकिन फ़राइज़ के बाद है। इसलिये अगर रोज़ी कमाने के फ़रीज़े में और पहले दर्जे के फ़राइज़

के दरमियान टकराव हो जाये तो उस वक़्त दीनी फ़रीज़ा ग़ालिब रहेगा।

एक लुहार का क़िस्सा

मैंने अपने वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रहमतुल्लाहि अ़लैहि से यह वाक़िआ़ सुना कि हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक रहमतुल्लाहि अ़लैहि बड़े ऊंचे दर्जे के अल्लाह के वली थे, फ़क़ीह और मुहद्दिस और सूफ़ी थे। उनको अल्लाह तआ़ला ने बड़े बड़े दर्जे अ़ता फ़रमाये थे। जब उनका इन्तिक़ाल हो गया तो किसी ने उनको ख़्वाब में देखा तो उनसे पूछा कि अल्लाह तआ़ला ने आपके साथ क्या मामला फ़रमाया? जवाब में हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला ने बड़ा करम फ़रमाया और बहुत कुछ नवाज़िशें फ़रमाईं, लेकिन मेरे घर के सामने एक लुहार रहता था, उस लुहार को अल्लाह तआ़ला ने जो मक़ाम बख़्शा वह हमें नसीब न हो सका। जब उस शख़्स की आंख खुली तो उसके दिल में यह ख़्याल पैदा हुआ कि यह पता करना चाहिये कि वह कौन लुहार था, और वह क्या अ़मल करता था कि उसका दर्जा हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक से भी आगे बढ़ गया। चुनांचे वह शख़्स हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक रहमतुल्लाहि अ़लैहि के मौहल्ले में गया और मालूमात कीं तो पता चला कि वाक़ई उनके घर के सामने एक लुहार रहता था, और उसका भी इन्तिक़ाल हो चुका है। उसके घर जाकर उसकी बीवी से पूछा कि तुम्हारा शौहर क्या करता था? उसने बताया कि वह तो लुहार था और सारा दिन लोहा कूटता रहता था। उस शख़्स ने कहा कि उसका कोई ख़ास अ़मल और ख़ास नेकी बताओ जो वह किया करता था, इसलिये कि मैंने ख़्वाब में देखा है कि हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक रहमतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमा रहे हैं कि उसका मक़ाम हम से भी आगे बढ़ गया।

तहज्जुद न पढ़ने की हसरत

उसकी बीवी ने कहा कि वह सारा दिन तो लोहा कूटता रहता था, लेकिन एक बात उसके अन्दर यह थी कि चूंकि हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक रह्मतुल्लाहि अ़लैहि हमारे घर के सामने रहते थे, रात को जिस वक़्त वह तहज्जुद की नमाज़ पढ़ने के लिये खड़े होते थे तो अपने घर की छत पर इस तरह खड़े हो जाते जिस तरह कोई लकड़ी खड़ी होती है, और कोई हर्कत नहीं करते थे। जब मेरा शौहर उनको देखता तो यह कहा करता था कि अल्लाह तआला ने उनको फ़रागत अ़ता फ़रमाई है, यह सारी रात कैसी इबादत करते हैं, उनको देख कर रश्क आता है, अगर हमें भी अपने मश्गले से फ़रागत नसीब होती तो हमें भी इस तरह तहज्जुद पढ़ने की तौफ़ीक़ हो जाती। चुनांचे वह हसरत किया करता था कि मैं चूंकि दिन भर लोहा कूटता हूं, फिर रात को थक कर सो जाता हूं इसलिये इस तरह तहज्जुद पढ़ने की नौबत नहीं आती।

नमाज़ के वक़्त काम बन्द

दूसरी बात उसके अन्दर यह थी कि जब वह लोहा कूट रहा होता था, और उस वक़्त उसके कान में अज़ान की आवाज़ "अल्लाहु अकबर" आ जाती तो अगर उस वक़्त उसने अपना हथौड़ा सर से ऊंचा हाथ में उठाया हुआ होता तो उस वक़्त यह गवारा न करता था कि उस हथौड़े से एक बार और लोहे पर दे मारे, बल्कि उस हथौड़े को पीछे की तरफ़ फेंक देता था, और यह कहता था कि अब अज़ान की आवाज़ सुनने के बाद इस हथौड़े से चोट लगाना मेरे लिये दुरुस्त नहीं, फिर नमाज़ के लिये मस्जिद की तरफ़ चला जाता था। जिस शख़्स ने यह ख़्वाब देखा था उसने ये बातें सुनकर कहा कि बस यही वजह है जिसने उनका दर्जा इतना बुलन्द कर दिया कि हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक रह्मतुल्लाहि अ़लैहि को भी उन पर रश्क आ रहा है।

टकराव के वक़्त यह फ़रीज़ा छोड़ दो

आपने देखा कि वह लुहार जो लोहा कूटने का काम कर रहा था, यह भी हलाल कमाने का फ़रीज़ा था, और जब अज़ान की आवाज़ आई तो वह पहले दर्जे के फ़रीज़े की पुकार थी, जिस वक़्त दोनों में टकराव हुआ तो उसने अल्लाह वाले और पहले दर्जे के फ़रीज़े को तरजीह दी और दूसरे फ़रीज़े को छोड़ दिया, इसकी वजह से अल्लाह तआला ने उसको बुलन्द मक़ाम अता फ़रमा दिया। इसलिये जहां टकराव हो जाये वहां पहले दर्जे के फ़रीज़े को इख़्तियार कर लो और हलाल रोज़ी कमाने के फ़रीज़े को छोड़ दो।

एक जामे दुआ

इसी लिये नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने यह दुआ फ़रमाईः

"اللّٰهم لا تجعل الدنيا اكبرهمنا ولا مبلغ علمنا و لاغاية رغبتنا" (ترمذی شریف)

ऐ अल्लाह! हमारा सब से बड़ा ग़म दुनिया को न बनाइये कि हमारे दिमाग़ पर सब से बड़ा ग़म दुनिया का मुसल्लत हो, कि पैसे कहां से आयें, बंगला कैसे बन जाये और कार कैसे हासिल हो जाये। और ऐ अल्लाह! हमारे सारे इल्म का मब्लग़ दुनिया को न बनाइये कि जो कुछ इल्म है वह बस दुनिया का इल्म है। और ऐ अल्लाह! न हमारी रग़बत की इन्तिहा दुनिया को बनाइये कि जो कुछ दिल में रग़बत पैदा हो वह दुनिया ही की हो और आख़िरत की रग़बत पैदा न हो।

बहर हाल! इस हदीस ने तीसरा सबक़ यह दे दिया कि हलाल कमाई का दर्जा दूसरे दीनी फ़राइज़ के बाद है। यह दुनिया ज़रूरत की चीज़ तो है लेकिन मक़सद बनाने की चीज़ नहीं है। यह दुनिया ऐसी चीज़ नहीं है कि दिन रात आदमी इसी दुनिया की फ़िक्र में लगा रहे और इसी में डूबा रहे, और इसके अलावा कोई और फ़िक्र और ध्यान इन्सान के दिमाग़ पर न रहे।

ख़ुलासा, तीन सबक़

ख़ुलासा यह है कि इस हदीस से तीन सबक़ मालूम हुए, एक यह कि हलाल का तलब करना भी दीन का एक हिस्सा है। दूसरा यह कि इन्सान हलाल को तलब करे, और हराम से बचने की फ़िक्र करे। और तीसरा यह कि इन्सान इस रोज़गार और कारोबार की सरगरमी को सही मक़ाम पर रखे और इसको अपनी ज़िन्दगी का मक़सद न बनाये। इसलिये कि पहले दर्जे के दीनी फ़राइज़ के बाद यह दूसरे दर्जे का फ़रीज़ा है। अल्लाह तआला अपनी रहमत से और अपने फ़ज़्ल व करम से इस हक़ीक़त को ज़ेहन में बिठाने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये और इसके मुताबिक़ ज़िन्दगी गुज़ारने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

وآخر دعوانا ان الحمد لله رب العالمين

गुनाह की तोहमत से बचिये

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

"عن علی بن حسین رضی اللّٰہ عنهما، ان صفیة زوج النبی صلی اللّٰہ علیه وسلم اخبرته انها جاء ت الیٰ رسو ل اللّٰہ صلی اللّٰہ علیه وسلم تزوره فی اعتکافه فی المسجد فی العشر الاواخرمن رمضان۔ الخ (بخاری شریف)

हदीस का ख़ुलासा

यह एक लम्बी हदीस है जिसमें हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के एक वाक़िए का बयान है। इस हदीस का ख़ुलासा यह है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हर साल रमज़ान मुबारक में मस्जिदे नबवी में एतिकाफ़ फ़रमाया करते थे। एक बार आप एतिकाफ़ में थे कि उम्मुल मोमिनीन हज़रत सफ़िया रज़ियल्लाहु अ़न्हा आप से मिलने के लिये एतिकाफ़ की जगह पर तश्रीफ़ लाईं, चूंकि एतिकाफ़ की वजह से आप घर के अन्दर तश्रीफ़ नहीं लेजा सकते थे, इसलिये वह ख़ुद ही मुलाक़ात के लिये आईं, और जितनी देर उनको बैठना था, उतनी देर बैठी रहीं, जब वह वापस जाने लगीं तो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उनको रुख़्सत करने के लिये मस्जिद के दरवाज़े तक तश्रीफ़ लाये।

बीवी का शौहर से मुलाक़ात करने के लिये मस्जिद में आना

अब आप हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सुन्नतें देखते जायें। पहली बात तो इस से यह मालूम हुई कि अगर बीवी पर्दे के साथ शौहर से मुलाक़ात के लिये एतिकाफ़ की जगह में आ जाये तो यह जायज़ है।

बीवी का इकराम करना चाहिए

दूसरी बात यह सामने आई कि हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने सिर्फ़ उन्हें एतिकाफ़ की जगह ही से रुख़्सत करने पर इक्तिफ़ा नहीं फ़रमाया, बल्कि उनको पहुंचाने के लिये मस्जिद के दरवाज़े तक तशरीफ़ लाये। उनका इकराम किया, इस अमल से हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने यह तालीम दे दी कि बीवी के साथ ऐसा मामला और सुलूक करना चाहिये जो बराबरी की बुनियाद का हो। उसका इकराम करना उसका हक़ है, जब वह तुम से मिलने के लिये आई है, और अब तुम उसको पहुंचाने के लिये जा रहे हो तो यह पहुंचाना भी उसके हुक़ूक़ में दाख़िल है।

दूसरों के शुब्हात को वज़ाहत करके दूर कर देना चाहिए

बहर हाल! जब हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम उनको पहुंचाने के लिये दरवाज़े की तरफ़ जाने लगे तो आपने देखा कि दो हज़राते सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अन्हुमा आपके पास मिलने के लिये वहां आ रहे हैं, आपने सोचा कि कहीं इन दोनों हज़रात के क़रीब आने से उम्मुल मोमिनीन हज़रत सफ़िया रज़ियल्लाहु अन्हा की बेपर्दगी न हो, इसलिये आपने उन दोनों हज़रात से फ़रमाया कि ज़रा ठहर जाओ, यह हुक्म इसलिये दिया ताकि जब हज़रत सफ़िया रज़ियल्लाहु अन्हा पर्दे के साथ अपने घर वापस चली जायें तो फिर उन हज़रात को बुला लिया जाये। चुनांचे उम्मुल मोमिनीन हज़रत सफ़िया रज़ियल्लाहु अन्हा वहां से गुज़र कर अपने घर तशरीफ़ ले

गयीं, फिर आपने उन दोनों हज़रात से फ़रमाया कि अब आप तशरीफ़ ले आयें। जब वे आ गये तो आपने उन दोनों से मुख़ातिब होकर फ़रमाया कि यह औरत हज़रत सफ़िया थीं, यानी मेरी बीवी थीं।

एक रिवायत में यह भी आया है कि आपने उनसे फ़रमाया कि यह खुलासा मैंने इसलिये कर दिया कि कहीं शैतान तुम्हारे दिल में कोई बुराई न डाल दे। वजह इसकी यह थी कि जब उन हज़रात ने यह देखा कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम किसी औरत के साथ मस्जिदे नबवी में जा रहे हैं, तो कहीं उन हज़रात के दिल में यह वस्वसा न आ जाये कि यह औरत कौन थी? और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से मिलने के लिये क्यों आयी थी? इसलिये हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने वज़ाहत से फ़रमा दिया कि यह "सफ़िया" (रज़ियल्लाहु अन्हा) थीं, जो मेरी बीवी हैं। यह वाक़िआ बुख़ारी शरीफ़ और मुस्लिम शरीफ़ वग़ैरह में मौजूद है।

अपने को तोहमत की जगहों से बचाओ

इस हदीस की तशरीह में उलमा-ए-किराम ने फ़रमाया कि क्या कोई शख़्स यह तसव्वुर कर सकता है कि किसी सहाबी के दिल में हुज़ूरे अक़्दस नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की तरफ़ से इस क़िस्म का कोई ग़लत ख़्याल आयेगा कि आप इस तरह किसी ना मेहरम औरत के साथ तशरीफ़ लेजा रहे होंगे? और फिर रमज़ान का महीना और रमज़ान का भी आख़री अशरा, (आख़री दशक) और फिर जगह भी मस्जिदे नबवी और फिर एतिकाफ़ की हालत, किसी आम मुसलमान के बारे में भी यह ख़्याल आना मुश्किल है, कहां यह कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के बारे में।

लेकिन आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इस वाक़िए के ज़रिये उम्मत को यह तालीम दे दी कि अपने आपको तोहमत की जगहों से बचाओ, अगर किसी मौक़े पर इस बात का अन्देशा हो कि कहीं कोई तोहमत न लग जाये, या किसी के दिल में मेरे बारे में

ग़लत ख़्याल न आ जाये तो ऐसे मौक़ों से भी अपने आपको बचाओ। हदीस के तौर पर एक जुम्ला नक़ल किया जाता है कि:

اتقوا مواضع التهم

यानी तोहमत के मौक़ों से बचो। अगरचे इस जुम्ले के बारे में आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की तरफ़ सही सनद से साबित नहीं है, लेकिन इस जुम्ले की असल यह वाक़िआ है, इसलिये जिस तरह इन्सान के ज़िम्मे यह ज़रूरी है कि वह गुनाह से बचे, ना जायज़ कामों से बचे, इसी तरह यह भी ज़रूरी है कि वह अपने आपको गुनाह की तोहमत से भी बचाये, ना जायज़ काम की तोहमत से बचाये, कोई ऐसा काम न करे जिसकी वजह से लोगों के दिलों में यह ख़्याल हो कि शायद यह फ़लां गुनाह के काम में मुब्तला है।

तोहमत के मौक़ों से बचने के दो फ़ायदे

तोहमत के मौक़ों से अपने आपको बचाने के दो फ़ायदे हैं।

एक फ़ायदा तो यह है कि ख़्वाह मख़्वाह अपने आपको दूसरों की नज़र में बदगुमान क्यों किया जाये? क्योंकि जिस तरह दूसरों का हक़ है, अपने नफ़्स का भी हक़ है, और नफ़्स का हक़ यह है कि उसको बिला वजह ज़लील न किया जाये, बिला वजह उसके बारे में लोगों के दिलों में बदगुमानी न पैदा की जाये।

दूसरा फ़ायदा देखने वाले शख़्स का है। इसलिये कि जो शख़्स तुम्हें देख कर बदगुमानी में मुब्तला होगा, और तहक़ीक़ के बग़ैर तुम्हारे बारे में बदगुमानी करेगा तो वह बदगुमानी के गुनाह में मुब्तला होगा, इसलिये उसको गुनाह में क्यों मुब्तला करते हो? बहर हाल! ऐसा काम करना जिस से ख़्वाह मख़्वाह लोगों के दिलों में शक व शुब्हात पैदा हों यह दुरुस्त नहीं।

गुनाह के मौक़ों से भी बचना चाहिये

गुनाह के जो मौक़े होते हैं, वहां जाकर आप चाहे गुनाह न करें, लेकिन गुनाह के उन मौक़ों के पास से गुज़रना कि देखने वाले यह

समझें कि यह शख़्स भी उस गुनाह में मुब्तला होगा, यह भी दुरुस्त नहीं। जैसे कोई सेनिमा हाल है, अब आप उस सेनिमा हाल के अन्दर से यह सोचकर गुज़र गये कि चलो यह रास्ता मुख़्तसर है, यहां से निकल जायें, अब आपने वहां न तो किसी तस्वीर को देखा और न कोई और गुनाह किया, लेकिन जो शख़्स भी आपको गुज़रते हुए देखेगा तो वह यही समझेगा कि आप सेनिमा देखने आये होंगे, इस लिये कि आपने ऐसा काम कर लिया जिसकी वजह से ख़्वाह मख़्वाह आप पर तोहमत लग गयी और शुबह पैदा हो गया। ऐसा काम करना भी दुरुस्त नहीं। और अगर कभी ऐसी नौबत आ जाये जिस से शुबह पैदा हो तो वज़ाहत करके बता देना चाहिये कि मैं यहां फ़लां मक़सद से आया था, जैसा कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बता दिया कि यह हज़रत सफ़िया रज़ियल्लाहु अ़न्हा हैं।

हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत

यह बड़ा नाज़ुक मामला है, एक तरफ़ तो अपने आपको जान बूझ कर "मुत्तक़ी" ज़ाहिर करना यह भी शरीअ़त में पसन्दीदा नहीं। दूसरी तरफ़ बिला वजह अपने आपको गुनाहगार ज़ाहिर करना, यह भी पसन्दीदा नहीं, और न यह हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत है, बल्कि आपकी सुन्नत यह है कि अपने आपको तोहमत से बचाओ।

"मलामती" फ़िर्के की ज़िन्दगी का अन्दाज़

एक फ़िर्क़ा गुज़रा है जो अपने आपको "मलामती" कहता था, और फिर उसी "मलामती फ़िर्क़े" के नाम से मशहूर हुआ। यह फ़िर्क़ा अपनी ज़ाहिरी हालत गुनाहगारों, फ़ासिक़ों और फ़ाजिरों जैसी रखता था, जैसे वे न तो मस्जिद में जाकर नमाज़ पढ़ते थे, और न ही किसी के सामने ज़िक्र व इबादत करते थे, अपना हुलिया भी फ़ासिक़ों जैसा बनाते थे। उनका कहना यह था कि हम अपना हुलिया इसलिये ऐसा बना देते हैं ताकि रियाकारी और दिखावा न हो जाये। अगर हम

दाढ़ी रखेंगे और मस्जिद में जाकर पहली सफ़ में नमाज़ पढ़ेंगे तो लोग यह समझेंगे कि हम बड़े बुज़ुर्ग आदमी हैं। लोग हमारी इज़्ज़त करेंगे, और इस से हमारा दिल ख़राब होगा, और उसके नतीजे में हमारे दिलों में तकब्बुर पैदा होगा। इसलिये हम मस्जिद में नमाज़ नहीं पढ़ते, यह "मलामती फ़िर्क़ा" कहलाता था। यह नाम इसलिये पड़ गया कि ये लोग अपनी ज़ाहिरी हालत ऐसी बनाते थे कि दूसरे लोग इन पर मलामत करें कि ये कैसे ख़राब लोग हैं, लेकिन उनका यह तर्ज़े अमल और तरीक़ा, सुन्नत का तरीक़ा और शरीअत का तरीक़ा नहीं था, और न ही यह हमारे बुज़ुर्गाने दीन का सही तरीक़ा था।

एक गुनाह से बचने के लिये दूसरा गुनाह करना

यह हो सकता है कि कोई अल्लाह का बन्दा ग़ल्बा-ए-हाल में ऐसा तर्ज़ इख़्तियार कर गया हो, वह अल्लाह तआला के यहां माज़ूर होगा, लेकिन उसका यह तर्ज़े अमल पैरवी के क़ाबिल नहीं, क्योंकि यह तर्ज़े अमल शरई एतिबार से दुरुस्त नहीं। क्या आदमी अपने आपको रियाकारी और तकब्बुर से बचाने के लिये एक दूसरे गुनाह का जुर्म करे? रियाकारी एक गुनाह है और उस गुनाह से बचने के लिये एक दूसरे गुनाह का इर्तिकाब कर रहा है कि मस्जिद में नमाज़ नहीं पढ़ रहा है, शरई एतिबार से बिल्कुल दुरुस्त नहीं। अल्लाह तआला ने जिस चीज़ को हराम कर दिया, बस वह हराम हो गयी। अगर कोई शख़्स यह कहता है कि मैं मस्जिद में जाकर नमाज़ नहीं पढ़ता, बल्कि घर में पढ़ता हूं, इसलिये कि मस्जिद में पहली सफ़ में नमाज़ पढ़ूंगा तो यह दिखावा हो जायेगा, सब लोग देखेंगे कि यह शख़्स पहली सफ़ में नमाज़ पढ़ रहा है। चुनांचे कितने लोग ऐसे हैं जिनके ज़ेहनों में यह ख़्याल आता है।

नमाज़ मस्जिद ही में पढ़नी चाहिए

याद रखिये! यह सब शैतान का धोखा है, जब अल्लाह तआला ने

कह दिया कि मस्जिद में आकर नमाज़ पढ़ो, तो अब मस्जिद ही में आकर नमाज़ पढ़ना ज़रूरी है, और यह ख़्याल कि यह मस्जिद में जाकर नमाज़ पढ़ने से रियाकारी और दिखावा हो जायेगा, यह सब शैतान का धोखा है। इस ख़्याल पर हरगिज़ अ़मल मत करो और मस्जिद में आकर नमाज़ पढ़ो। और अगर रियाकारी का ख़्याल आये तो इस्तिग़फ़ार कर लोः

"استغفر الله ربی من کل ذنب واتوب الیه"

(अस्तग़फ़िरुल्ला–ह रब्बी मिन कुल्लि ज़म्बिन व अतूबु इलैहि)

फ़राइज़ के बारे में शरीअ़त का हुक्म यह है कि उनको ऐलानिया अदा किया जाये, लेकिन नवाफ़िल घर में पढ़ने की इजाज़त है। लेकिन जहां तक फ़राइज़ का ताल्लुक़ है तो मर्दों को चाहिए कि वे मस्जिद में जाकर जमाअ़त से अदा करें, और उस "मलामती फ़िर्क़े" की जो बात बयान की उसका शरीअ़त से और क़ुरआन व हदीस से कोई ताल्लुक़ नहीं, और शरई तौर पर वह तरीक़ा जायज़ नहीं, सही तरीक़ा वह है जो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बयान फ़रमाया, वह यह कि "तोहमत के मौक़ों से भी बचो।"

अपना उज़्र ज़ाहिर कर दें

फ़र्ज़ करें कि आप किसी शरई उज़्र की वजह से मस्जिद में जमाअ़त से नमाज़ नहीं पढ़ सकते उस वक़्त आपके पास कोई मेहमान मिलने आ गया, और आपको ख़्याल आया कि चूंकि इस मेहमान ने यह देख लिया है कि मैं मस्जिद में नमाज़ में शरीक नहीं था, तो यह मेहमान मेरे बारे में यह समझेगा कि मैं जमाअ़त से नमाज़ नहीं पढ़ता, तो उस वक़्त अगर आप उस मेहमान के सामने जमाअ़त से नमाज़ न पढ़ने का उज़्र वाज़ेह करके बता दें कि फ़लां मजबूरी की वजह से मैं जमाअ़त में पहुंच नहीं सका था, तो कोई गुनाह की बात नहीं, बल्कि यह तोहमत की जगह से बचने की बात है, इसलिये कि उस मेहमान के दिल में आपकी तरफ़ से यह तोहमत

आ सकती थी कि शायद यह जान बूझ कर जमाअत की नमाज़ छोड़ रहा है, अब आपने उज़्र बयान करके उसका दिल साफ़ कर दिया, इसमें न रियाकारी है और न दिखावा है, बल्कि यह तोहमत से अपने आपको बचाना है।

इस हदीस की तश्रीह हज़रत थानवी रह. की ज़बानी

हज़रत थानवी रह्मतुल्लाहि अलैहि इस हदीस की तश्रीह करते हुए फ़रमाते हैं कि: "इस हदीस में इस बात पर दलालत है कि ऐसे शुब्हात के मौक़ों से बचना चाहिये जिनकी ज़ाहिरी सूरत बाज़ बुराईयों की सूरत के जैसी हो। यानी ज़ाहिरी तौर पर ऐसा मालूम हो रहा है कि किसी के दिल में यह ख़्याल पैदा हो सकता है कि उसने किसी गुनाह का इर्तिकाब किया होगा, जैसे शादी शुदा औरत के पास बैठना और अजनबी औरत के पास बैठना, दोनों देखने में एक जैसे हैं, ऐसे मौक़ों पर एहतियात व मुदाफ़िअत ज़रूरी है, बाक़ी जो मामलात ऐसे न हों, उनकी फ़िक्र में पड़ना यह मलामत का ख़ौफ़ है जिसके छोड़ने पर तारीफ़ की गयी है"।

यानी ज़ाहिरी एतिबार से जो गुनाह मालूम हो रहे हों उनके शुबह से आपने आपको बचाना ज़रूरी है, लेकिन आदमी अपने आपको ऐसी बातों से बरी और पाक ज़ाहिर करने की कोशिश करे जो अपने आप में दुरुस्त हैं, और लोगों की मलामत के ख़ौफ़ से उनकी तावील और वजह बयान करे तो यह बात पसन्दीदा नहीं।

किसी नेक काम की तावील की ज़रूरत नहीं

जैसे किसी शख़्स ने सुन्नत का कोई काम किया, लेकिन वह सुन्नत का काम ऐसा है जिसको लोग अच्छा नहीं समझते। जैसे किसी ने दाढ़ी रख ली, और लोग उसको पसन्द नहीं करते, अब यह शख़्स इसकी तावील करता फिर रहा है ताकि लोग उसको मलामत न करें और उसकी बुराई न करें।

याद रखिये! इसकी कोई ज़रूरत नहीं, इसलिये कि जब अल्लाह

तआला को राज़ी करने के लिये एक सुन्नत का काम किया है, और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के हुक्म की तामील में यह काम किया है तो अब लोग तुम्हें अच्छा समझें या बुरा समझें, लोग तुम्हें उस काम पर मलामत करें या तुम्हारी तारीफ़ करें, इन सब से बे परवाह होकर तुम अपना काम किये जाओ। अगर वे मलामत करते हैं तो करने दो। वह मलामत एक मुसलमान के गले का हार है, वह उसके लिये ज़ीनत है। अगर कोई शख़्स इत्तिबा-ए-सुन्नत की वजह से तुम्हें मलामत कर रहा है, दीन पर चलने और अल्लाह के हुक्म की इत्तिबा की वजह से मलामत कर रहा है तो वह मलामत मुबारक बाद के क़ाबिल है, यह अंबिया अलैहिमुस्सलाम की विरासत है जो तुम्हें मिल रही है, उस से मत घबराओ और उसकी वजह से अपनी बराअत ज़ाहिर मत करो।

ख़ुलासा

ख़ुलासा यह निकला कि अपने आपको किसी गुनाह के शुबह से बचाने के लिये किसी दूसरे पर कोई बात ज़ाहिर कर देना कि यह बात असल में ऐसी थी, यह अमल सिर्फ़ यह कि ना जायज़ नहीं, बल्कि यह अमल पसन्दीदा है, ताकि उसके दिल में तुम्हारी तरफ़ से बदगुमानी पैदा न हो। इसलिये कि दूसरे को बदगुमानी से बचाना भी एक मुसलमान का काम है।

अल्लाह तआला अपने फ़ज़्ल व करम से और अपनी रहमत से हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के इन इर्शादात पर पूरी तरह अमल करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

واٰخر دعوانا ان الحمد للہ رب العالمین

बड़े का इकराम कीजिए

اَلْحَمْدُ لِلّٰہِ نَحْمَدُہٗ وَنَسْتَعِیْنُہٗ وَنَسْتَغْفِرُہٗ وَنُؤْمِنُ بِہٖ وَنَتَوَکَّلُ عَلَیْہِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰہِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَیِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ یَّھْدِہِ اللّٰہُ فَلَا مُضِلَّ لَہٗ وَمَنْ یُّضْلِلْہُ فَلَا ھَادِیَ لَہٗ وَنَشْھَدُ اَنْ لَّا اِلٰہَ اِلَّا اللّٰہُ وَحْدَہٗ لَا شَرِیْکَ لَہٗ وَنَشْھَدُ اَنَّ سَیِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُہٗ وَرَسُوْلُہٗ صَلَّی اللّٰہُ تَعَالٰی عَلَیْہِ وَعَلٰی اٰلِہٖ وَ اَصْحَابِہٖ وَبَارَکَ وَسَلَّمَ تَسْلِیْمًا کَثِیْرًا کَثِیْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

"عن ابن عمر رضی اللّٰہ تعالیٰ عنہ قال: قال رسول اللّٰہ صلی اللّٰہ علیہ وسلم "اذا اتاکم کریم قومٍ فاکرموہ" (ابن ماجہ)

हदीस का तर्जुमा

जब तुम्हारे पास किसी कौम का मुअ़ज़्ज़ज़ (सम्मानित) मेहमान आये तो तुम उसका इकराम करो। यानी अगर कोई शख़्स किसी क़ौम का सरदार है या ओहदे दार है, और उस क़ौम के अन्दर उसको मुअ़ज़्ज़ज़ समझा जाता है, जब वह तुम्हारे पास आये तो तुम उसका इकराम करो।

इकराम का एक अन्दाज़

वैसे तो शरीअ़त में हर मुसलमान का इकराम करने का हुक्म दिया गया है, कोई मुसलमान भाई तुम्हारे पस आये तो उसका हक़ यह है कि उसका इकराम किया जाये और उसकी इज़्ज़त की जाये। हदीस शरीफ़ में यहां तक आया है कि अगर आप किसी जगह बैठे हैं और कोई मुसलमान तुम्हारे पास मिलने आ गया तो कम से कम इतना ज़रूर होना चाहिये कि उसके आने पर तुम थोड़ी सी हर्कत कर लो, यह न हो कि एक मुसलमान भाई तुम से मिलने आया लेकिन तुम अपनी जगह से टस से मस न हुए बल्कि बुत बने बैठे रहे, यह तरीक़ा उसके इकराम के ख़िलाफ़ है। इसलिये कम से कम

थोड़ी सी अपनी जगह से हर्कत करनी चाहिये ताकि आने वाले को यह महसूस हो कि उसने मेरे आने पर मेरी इज़्ज़त की है और मेरा इकराम किया है।

इकराम के लिये खड़ा हो जाना

एक तरीक़ा है दूसरे के इकराम के लिये खड़ा हो जाना, जैसे कोई शख़्स आपके पास आये तो आप उसकी इज़्ज़त और इकराम के लिये अपनी जगह से खड़े हो जायें। इसका शरई हुक्म यह है कि जो शख़्स आने वाला है, अगर वह इस बात की ख़्वाहिश रखता है कि लोग मेरे इकराम और मेरी इज़्ज़त के लिये खड़े हों, तो उस सूरत में खड़ा होना दुरुस्त नहीं, इसलिये कि यह ख़्वाहिश इस बात की निशान देही कर रही है कि उसके अन्दर तकब्बुर और बड़ाई है, और वह दूसरे लोगों को हक़ीर समझता है। इसलिये वह यह चाहता है कि दूसरे लोग मेरे लिये खड़े हों। ऐसे शख़्स के बारे में शरीअ़त का हुक्म यह है कि उसके लिये न खड़े हों। लेकिन अगर आने वाले शख़्स के दिल में यह ख़्वाहिश नहीं है कि लोग मेरे लिये खड़े हों, अब आप उस शख़्स के इल्म या उसके तक़्वे या उसके ओहदे की वजह से इकराम करते हुए उसके लिये खड़े हो जायें तो इसमें कोई हर्ज नहीं, कोई गुनाह भी नहीं, और खड़ा होना वाजिब भी नहीं।

हदीस से खड़ा होने का सबूत

ख़ुद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बाज़ मौक़ों पर सहाबा-ए-किराम को खड़े होने का हुक्म दिया। चुनांचे जब बनू क़ुरैज़ा के बारे में फ़ैसला करने के लिये हज़रत सअ़द बिन मआ़ज़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु को आपने बुलाया और वह तशरीफ़ लाये तो आपने उस वक़्त बनू क़ुरैज़ा के हज़रात से फ़रमायाः

قوموا لسیدکم

यानी तुम्हारे सरदार आ रहे हैं, उनके लिये तुम खड़े हो जाओ। इसलिये ऐसे मौक़े पर खड़ा हो जाना जायज़ है, अगर खड़े न हों तो

उसमें कोई हर्ज नहीं। लेकिन हदीस में इस बात की ताकीद ज़रूर आई है कि किसी के आने पर यह न हो कि आप बुत बने बैठे रहें और अपनी जगह से हर्कत भी न करें, और न उसके आने पर खुशी का इज़हार करें। बल्कि आपने फ़रमाया कि कम से कम इतना कर लो कि अपनी जगह पर ज़रा सी हर्कत कर लो, ताकि आने वाले को यह एहसास हो कि मेरा इकराम किया है।

मुसलमान का इकराम "ईमान" का इकराम है

एक मुसलमान का इकराम और उसकी इज़्ज़त हक़ीक़त में उस "ईमान" का इकराम है जो उस मुसलमान के दिल में है। जब एक मुसलमान कलिमा–ए–तय्यिबा "ला इला–ह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर–रसूलुल्लाह" पर ईमान रखता है और वह ईमान उसके दिल में है, तो इसका तक़ाज़ा और इसका हक़ यह है कि उस मुसलमान का इकराम किया जाये, अगरचे ज़ाहिरी हालत के एतिबार से वह मुसलमान तुम्हें कमज़ोर नज़र आ रहा हो, और उसके आमाल और उसकी ज़ाहिरी शक्ल व सूरत पूरी तरह दीन के मुताबिक़ न हो, लेकिन तुम्हें क्या मालूम कि उसके दिल में जो ईमान अल्लाह तआला ने अता फ़रमाया है उस ईमान का क्या मक़ाम है, अल्लाह तआला के यहां उसका ईमान कितना मक़बूल है? सिर्फ़ ज़ाहिरी शक्ल व सूरत से इसका अन्दाज़ा नहीं हो सकता। इसलिये हर आने वाले मुसलमान का मुसलमान होने की हैसियत से इकराम करना चाहिये।

एक नौजवान का सबक़ लेने वाला वाक़िआ

एक बार मैं दारुल उलूम में अपने दफ़्तर में बैठा हुआ था, उस वक़्त एक नौजवान मेरे पास आया। उस नौजवान में सर से लेकर पांव तक ज़ाहिरी एतिबार से इस्लामी लिबास और शक्ल व सूरत की कोई बात नज़र नहीं आ रही थी, पश्चिमी लिबास पहने हुए था, उसकी ज़ाहिरी शक्ल देख कर बिल्कुल इसका पता नहीं चल रहा था कि उसके अन्दर भी दीनदारी की कोई बात मौजूद होगी, मेरे पास

आकर कहने लगा कि मैं आपसे एक मसला पूछने आया हूं। मैंने कहा कि क्या मसला है? वह कहने लगा कि मसला यह है कि मैं "अकचूरी" आंकड़ों का माहिर **(ACTUARY)** हूं। (बीमा कम्पनियों में जो हिसाबात वग़ैरह लगाये जाते हैं कि कितनी "क़िस्त" होनी चाहिये और बीमे की कितनी रक़म होनी चाहिये, इस क़िस्म के हिसाबात के लिये "अकचूरी" रखा जाता है। उस ज़माने में पाकिस्तान भर में कहीं भी यह इल्म नहीं पढ़ाया जाता था। फिर उस नौजवान ने कहा कि) मैंने यह इल्म हासिल करने के लिये "इंग्लैंड" का सफ़र किया और वहां से यह इल्म हासिल करके आया हूं (उस वक़्त पूरे पाकिस्तान में इस फ़न को जानने वाले दो तीन से ज़्यादा नहीं थे, और जो शख़्स "माहिरे शुमारियात" बन जाता है वह बीमा कम्पनी के अलावा किसी और जगह पर काम करने के क़ाबिल नहीं रहता। बहर हाल, उस नौजवान ने कहा कि) और मैंने यहां आकर एक बीमा कम्पनी में नौकरी कर ली, और चूंकि पाकिस्तान भर में इसके माहिर बहुत कम थे इसलिये उनकी मांग भी बहुत थी, और उनकी तन्ख़्वाह और सुहूलतें भी बहुत ज़्यादा हैं। इसलिये मैंने यह नौकरी इख़्तियार कर ली। जब यह सब कुछ हो गया, तालीम हासिल कर ली, नौकरी इख़्तियार कर ली, तो अब मुझे किसी ने बताया कि यह बीमे का काम हराम है, जायज़ नहीं। अब मैं आप से इसकी तस्दीक़ करने आया हूं कि वाक़ई यह हराम है या हलाल है?

बीमा कम्पनी का मुलाज़िम क्या करे?

मैंने उस से कहा कि इस वक़्त बीमे की जितनी सूरतें राइज हैं, उनमें किसी में सूद है, किसी में जुआ है, इसलिये वे सब हराम हैं। और इस वजह से बीमा कम्पनी की नौकरी भी जायज़ नहीं। लेकिन हमारे बुज़ुर्ग यह कहते हैं कि अगर कोई बैंक में या बीमा कम्पनी में मुलाज़िम हो, तो उसको चाहिये कि वह अपने लिये दूसरा हलाल और जायज़ रोज़गार का ज़रिया तलाश करे, जैसे एक बे रोज़गार

तलाश करता है, और जब उसको दूसरा हलाल आमदनी का ज़रिया मिल जाये, तो उस वक़्त उस हराम ज़रिये को छोड़ दे। यह बात बुज़ुर्ग इसलिये फ़रमाते हैं कि कुछ पता नहीं कि किसके हालात कैसे हों। अब अगर कोई शख़्स फ़ौरन उस हराम ज़रिये को छोड़ दे तो कहीं ऐसा न हो कि किसी परेशानी में मुब्तला हो जाये, फिर शैतान आकर उसको यह बहका दे कि देखो तुम दीन पर अमल करने चले थे तो उसके नतीजे में तुम पर यह मुसीबत आ गयी। इसलिये हमारे बुज़ुर्ग फ़रमाते हैं कि उस हराम नौकरी को फ़ौरन मत छोड़ो, बल्कि दूसरी जगह नौकरी तलाश करो, जब हलाल रोज़गार मिल जाये तो उस वक़्त उसको छोड़ देना।

मैं मश्विरा लेने नहीं आया

मेरा यह जवाब सुनकर वह नौजवान मुझ से कहने लगा कि मौलाना साहिब! मैं आप से यह मश्विरा लेने नहीं आया कि नौकरी छोड़ दूं या न छोड़ूं? मैं आप से सिर्फ़ यह पूछने आया हूं कि यह काम हलाल है या हराम है? मैंने उस से कहा कि हलाल और हराम होने के बारे में भी मैंने तुम्हें बता दिया, और साथ में बुज़ुर्गों से जो बात सुनी थी वह भी आपको बता दी। उस नौजवान ने कहा कि आप मुझे इसका मश्विरा न दें कि मैं नौकरी छोड़ूं या न छोड़ूं, बस! आप मुझे साफ़ और दो टोक लफ़्ज़ों में यह बता दें कि इसको "अल्लाह" ने हराम किया है या आपने हराम किया है? मैंने कहा कि अल्लाह ने हराम किया है। उस नौजवान ने कहा कि जिस अल्लाह ने इसको हराम किया है वह मुझे रिज़्क़ से महरूम नहीं करेगा, इसलिये अब मैं यहां से उस दफ़्तर में वापस नहीं जाऊंगा। जब अल्लाह तआला ने हराम किया है तो वह ऐसा नहीं करेगा कि मुझ पर रिज़्क़ के दरवाज़े बन्द कर दे। इसलिये मैं आज ही से इसको छोड़ता हूं।

ज़ाहिरी शक्ल पर मत जाओ

अब देखिये! ज़ाहिरी शक्ल व सूरत से दूर दूर तक पता नहीं

लगता था कि उस अल्लाह के बन्दे के दिल में ऐसा पक्का ईमान होगा, और अल्लाह तआला की ज़ात पर ऐसा पक्का भरोसा और तव्वकुल होगा, लेकिन अल्लाह ने उसको ऐसा पुख़्ता तवक्कुल अ़ता फ़रमाया था और वाक़ई उस नौजवान ने वह नौकरी उसी दिन छोड़ दी। फिर अल्लाह तआला ने उसको ख़ूब नवाज़ा और दूसरे हलाल रोज़गार उसको अ़ता फ़रमाये। वह अब अमेरिका में है। आज तक उस नौजवान की यह बात मेरे दिल पर नक़्श है। बहर हाल! किसी की ज़ाहिरी हालत देख कर हम उस पर क्या हुक्म लगायें, मालूम नहीं कि अल्लाह तआला ने उसके दिल में ईमान की कैसी शमा रोशन की हुई है, और उसको अपनी ज़ात पर कैसा तवक्कुल और भरोसा अ़ता फ़रमाया हुआ है। इसलिये किसी इन्सान की तहक़ीर मत करो, जो ईमान वाला है और उसको अल्लाह तआला ने:

"اشهد ان لااله الا الله واشهد ان محمدًا رسول الله"

(अश्हदु अल्ला इला–ह इल्लल्लाह व अश्हदु अन्–न मुहम्मदर–-रसूलुल्लाह)

की दौलत अ़ता फ़रमायी है, वह क़ाबिले इकराम है। इसी वजह से हर ईमान वाले के इकराम का हुक्म दिया गया है।

हज़रत शैख़ सादी रह्मतुल्लाहि अ़लैहि फ़रमाते हैं कि:

हर बीशा गुमां मबर कि ख़ालीस्त
शायद कि पलंग ख़ुफ़्ता बाशद

यानी हर जंगल को ख़ाली गुमान मत करो, पता नहीं कैसे कैसे शेर और चीते उसमें सोए हुए होंगे। जब अल्लाह तआला किसी को ईमान की दौलत अ़ता फ़रमा दें तो अब हमारा काम यह है कि हम उस ईमान वाले की क़द्र करें, उसकी इज़्ज़त करें और उस ईमान का इकराम करें जो उसके दिल में है।

मुअ़ज़्ज़ज़ काफ़िर का इकराम

वैसे तो हर मुसलमान के इकराम का हुक्म दिया गया है, लेकिन

हदीस में यहां तक फ़रमाया कि अगर आने वाला काफ़िर ही क्यों न हो, मगर वह अपनी क़ौम में मुअ़ज़्ज़ज़ (सम्मानित और इज़्ज़दार) समझा जाता है, उसकी इज़्ज़त की जाती है, लोग उसको एहतिराम की निगाह से देखते हैं और उसको अपना बड़ा मानते हैं, चाहे वह काफ़िर और ग़ैर मुस्लिम ही क्यों न हो, उसके आने पर भी तुम उसका इकराम करो और उसकी इज़्ज़त करो। यह इस्लामी अख़्लाक़ का एक तक़ाज़ा है कि उसकी इज़्ज़त की जाये। यह इज़्ज़त उसके कुफ़्र की नहीं है, क्योंकि उसके कुफ़्र से तो नफ़रत और कराहियत का मामला करेंगे, लेकिन चूंकि उसको अपनी क़ौम में बा इज़्ज़त समझा जाता है, इसलिये जब वह तुम्हारे पास आये तो तुम उसकी ख़ातिर मुदारात के लिये उसका इकराम करो। ऐसा न हो कि उस से नफ़रत करने के नतीजे में तुम उसके साथ ऐसा बर्ताव इख़्तियार कर लो कि वह तुम से और तुम्हारे दीन ही से नफ़रत करने लगे, इस लिये उसका इकराम करो।

काफ़िरों के साथ आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का तरीक़ा

हुज़ूरे अक़्दस नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ऐसा करके दिखाया। आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास काफ़िरों के बड़े बड़े सरदार आया करते थे, जब वे सरदार हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में आते तो उनको कभी यह एहसास ही नहीं हुआ कि हमारे साथ बे इज़्ज़ती हुई है, बल्कि आपने उनकी इज़्ज़त की, उनका सम्मान किया, उनको इज़्ज़त से बिठाया और इज़्ज़त के साथ उनसे बात की। यह है नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत कि अगर काफ़िर भी हमारे पास आ जाये तो उसको भी बे इज़्ज़ती का एहसास न हो।

एक काफ़िर शख़्स का वाक़िआ

हदीस शरीफ़ में है कि एक बार हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि

व सल्लम अपने घर में तशरीफ़ फ़रमा थे। सामने से एक साहिब आते हुए दिखाई दिये। हज़रत आयशा सिद्दीक़ा रज़ियल्लाहु अन्हा आपके क़रीब तशरीफ़ फ़रमा थीं, आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया ऐ आयशा! यह शख़्स जो सामने से आ रहा है, यह अपने क़बीले का बुरा आदमी है। फिर वह शख़्स हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में आया तो आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने खड़े होकर उसका इकराम किया, और बड़ी इज़्ज़त के साथ उस से बात चीत की। जब वह शख़्स बात चीत करने के बाद वापस चला गया तो हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा ने कहा कि: या रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम! आपने ख़ुद ही तो फ़रमाया था कि यह शख़्स अपने क़बीले का बुरा आदमी है, लेकिन जब यह शख़्स आ गया तो आपने उसकी बड़ी इज़्ज़त की और उस से बड़ी नर्मी के साथ पेश आये, इसकी क्या वजह है? आं हज़रत सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि: वह आदमी बहुत बुरा है जिसकी बुराई से बचने के लिये उसका इकराम किया जाये।

यह ग़ीबत जायज़ है

इस हदीस में दो सवाल पैदा होते हैं। पहला सवाल यह पैदा होता है कि जब वह शख़्स दूर से चलता हुआ आ रहा था तो उसके आने से पहले ही उसकी पीठ पीछे हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा से उसकी बुराई बयान की कि यह शख़्स अपने क़बीले का बुरा आदमी है। बज़ाहिर यह मालूम होता है कि यह तो ग़ीबत है, इसलिये कि पीठ पीछे एक आदमी की बुराई बयान की जा रही है। इसका जवाब यह है कि हक़ीक़त में यह ग़ीबत नहीं, इसलिये कि अगर किसी शख़्स को किसी दूसरे शख़्स की बुराई से बचाने की नियत से उसकी बुराई की जाये तो यह ग़ीबत नहीं। जैसे कोई शख़्स किसी दूसरे को सचेत करने के लिये उस से कहे कि तुम फ़लां शख़्स से ज़रा बचके रहना, कहीं

ऐसा न हो कि वह तुम्हें धोखा दे जाये, या कहीं ऐसा न हो कि वह तुम्हें तक्लीफ़ पहुंचाये, तो यह ग़ीबत में दाख़िल नहीं, हराम और ना जायज़ नहीं। बल्कि बाज़ सूरतों में यह बताना वाजिब हो जाता है। जैसे आपको यक़ीनी तौर पर मालूम है कि फ़लां शख़्स फ़लां आदमी को धोखा देगा, और उस धोखे के नतीजे में उस दूसरे शख़्स को माली या जानी सख़्त तक्लीफ़ पहुंचने का अन्देशा है, तो आप पर वाजिब है कि आप उस दूसरे शख़्स को बता दें कि देखो फ़लां आदमी तुम्हें धोखा देना चाहता है, ताकि वह उस से महफ़ूज़ रहे, यह ग़ीबत में दाख़िल नहीं।

इसलिये जब हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा को यह बताया कि यह शख़्स अपने क़बीले का बुरा आदमी है तो बताने का मन्शा यह था कि कहीं ऐसा न हो कि यह शख़्स हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा को किसी वक़्त धोखा दे जाये, या कहीं उस शख़्स पर एतेमाद और भरोसा करते हुए ख़ुद हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा या कोई दूसरा मुसलमान कोई ऐसा काम कर गुज़रे जिसकी वजह से बाद में उन्हें पछतावा हो, इसलिये आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत आ़यशा रज़ियल्लाहु अ़न्हा को उसके बारे में पहले से बता दिया।

बुरे आदमी का आपने इकराम क्यों किया?

दूसरा सवाल यह पैदा होता है कि एक तरफ़ तो आपने उसकी बुराई बयान फ़रमाई और दूसरी तरफ़ जब वह शख़्स आ गया तो आपने उसकी बड़ी इज़्ज़त फ़रमाई, और बड़ी ख़ातिर तवाज़ो फ़रमाई, इसमें ज़ाहिर और बातिन में फ़र्क़ हो गया कि सामने का मामला कुछ है और पीछे कुछ और है। बात असल में यह है कि यह अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हैं, जिन्होंने एक एक चीज़ की हद बयान फ़रमाई है। इसलिये सचेत करने के लिये तो आपने इतना बता दिया कि यह शख़्स बुरा आदमी है, लेकिन जब वह शख़्स हमारे

पास मेहमान बनकर आया है तो मेहमान होने की हैसियत से भी उसका कुछ हक़ है, वह यह कि हम उसके साथ इज़्ज़त से पेश आयें और उसके साथ ऐसा बर्ताव करें जो एक मेहमान के साथ करना चाहिये। चुनांचे हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने यही बर्ताव फ़रमाया।

वह आदमी बहुत बुरा है

इस हदीस में साथ ही यह भी फ़रमा दिया कि इसमें एक हिक्मत यह भी है कि अगर बुरे आदमी का इकराम न किया जाये तो हो सकता है कि वह तुम्हें कोई तक्लीफ़ पहुंचा दे, या किसी मुसीबत के अन्दर मुब्तला कर दे, या तुम्हारे साथ वह कोई ऐसा मामला कर दे जिसके नतीजे में तुम्हें आईन्दा पछताना पड़े। इसलिये अगर किसी बुरे आदमी से मुलाक़ात की नौबत आ जाये तो उसका इकराम करने में कोई हर्ज नहीं। उसकी बुराई से अपनी जान को और अपने माल को और अपनी आबरू को बचाना भी इन्सान के फ़राइज़ में दाख़िल है। इसी लिये हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इस हदीस में साफ़ साफ़ इर्शाद फ़रमा दिया कि वह आदमी बहुत बुरा है जिसके शर से बचने के लिये लोग उसका इकराम करें। लोग उसका इकराम इसलिये नहीं कर रहे हैं कि वह आदमी अच्छा है, बल्कि इसलिये कर रहे हैं कि अगर उसका इकराम नहीं करेंगे तो यह तक्लीफ़ पहुंचायेगा। ऐसी सूरत में भी इकराम करने में कोई हर्ज नहीं बशर्ते कि वह इकराम जायज़ हदों के अन्दर हो और उसकी वजह से किसी गुनाह का इर्तिकाब न किया जाये।

हुज़ूरे अकरम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ज़िन्दगी के एक एक नमूने के एक एक जुज़ में न जाने कितने बेशुमार सबक़ हमारे और आपके लिये मौजूद हैं। आपने ग़ीबत की हद बता दी कि इतनी बात ग़ीबत है, और इतनी बात ग़ीबत नहीं। और इकराम करना कोई दोग़ला पन नहीं, बल्कि हुक्म यह है कि वह आने वाला चाहे कैसा ही

काफ़िर और फ़ासिक़ व गुनाहगार हो लेकिन जब वह तुम्हारे पास मेहमान बनकर आये तो उसकी इज़्ज़त करो, उसका इकराम करो, क्योंकि यह बात मुनाफ़क़त और दोग़लेपन में दाख़िल नहीं।

सर सैयद का एक वाक़िआ

मैंने अपने वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह्मतुल्लाहि अ़लैहि से सर सैयद का यह वाक़िआ सुना। अब तो वह अल्लाह के पास चले गये, अब अल्लाह तआ़ला के साथ उनका मामला है, लेकिन हक़ीक़त यह है कि उन्होंने इस्लामी अक़ीदे के अन्दर जो गड़बड़ी की है वह बड़ी ख़तरनाक क़िस्म की है, मगर चूंकि शुरू में वह बुज़ुर्गों की सोहबत में रहे हुए थे और बाक़ायदा आ़लिम भी थे इसलिये उनके अख़्लाक़ अच्छे थे। बहर हाल! हज़रत वालिद साहिब रह्मतुल्लाहि अ़लैहि ने उनका यह वाक़िआ सुनाया कि एक बार वह अपने घर में बैठे हुए थे और उनके साथ कुछ बे तकल्लुफ़ दोस्त भी थे, सामने दूर से उनको एक आदमी आता हुआ दिखाई दिया। वह आने वाला आ़म हिन्दुस्तानी लिबास पहने हुए चला आ रहा था, लेकिन जब वह कुछ क़रीब आ गया तो बाहर ही एक हौज़ के पास आकर खड़ा हो गया, उसके हाथ में एक थैला था, उस थैले में से उसने एक अ़रबी जुब्बा निकाला और अ़रब लोग सर पर रूमाल के ऊपर जो डोरी बांधते हैं, वह निकाली, और उन दोनों को पहना और फिर क़रीब आने लगा। सर सैयद साहिब दूर से यह मन्ज़र देख रहे थे, आपने एक साथी से कहा कि यह जो शख़्स आ रहा है यह फ़रॉडी आदमी मालूम हो रहा है, इसलिये कि यह शख़्स अब तक तो सीधे साधे हिन्दुस्तानी लिबास में आ रहा था, यहां क़रीब आकर उसने अपना चोला बदल लिया है और अ़रबी लिबास पहन लिया है, अब यहां आकर यह अपने आपको अ़रब का रहने वाला ज़ाहिर करेगा और फिर पैसे वग़ैरह मांगेगा।

थोड़ी देर के बाद वह शख़्स उनके पास पहुंच गया और आकर दरवाज़े पर दस्तक दी, सर सैयद साहिब ने जाकर दरवाज़ा खोला

और इज़्ज़त के साथ उसको अन्दर बुला लिया। सर सैयद ने पूछा कि कहां से तशरीफ़ लाये हैं? उसने जवाब दिया कि मैं हज़रत शाह गुलाम अली रहमतुल्लाहि अलैहि से बैअत हूं। यह हज़रत शाह गुलाम अली रहमतुल्लाहि अलैहि बड़े दर्जे के सूफ़िया-ए-किराम में से थे। और फिर उस शख़्स ने अपनी ज़रूरत बयान की, कि मैं इस ज़रूरत से आया हूं आप मेरी कुछ मदद करें। चुनांचे सर सैयद साहिब ने पहले उसकी ख़ूब ख़ातिर तवाज़ो की, और जितने पैसों की उसको ज़रूरत थी, उस से ज़्यादा लाकर उसको दे दिये, और फिर बड़े ऐज़ाज़ व इकराम के साथ उसको रुख़्सत कर दिया।

आपने उसकी ख़ातिर मुदारात क्यों की?

जब वह शख़्स वापस चला गया तो उनके साथी ने सर सैयद साहिब से कहा कि आप भी अजीब इन्सान हैं, आपने अपनी आंखों से देखा कि उसने अपना चोला बदला और अपना आम लिबास उतार कर अरब लिबास पहना, फिर आपने ख़ुद कहा कि यह फ़रॉडी आदमी है, आकर धोखा देगा और पैसे मांगेगा, इसके बावजूद आपने उसकी इतनी ख़ातिर मुदारात की और उसको इतने पैसे भी दे दिये, इसकी क्या वजह है?

सर सैयद साहिब ने जवाब दिया कि बात असल में यह है कि एक तरफ़ तो वह मेहमान बनकर अया था, इसलिये मैंने उसकी ख़ातिर तवाज़ो की। जहां तक पैसे देने का ताल्लुक़ है, उसके धोखे की वजह से मैं उसको पैसे न देता, लेकिन चूंकि उसने एक बड़े बुज़ुर्ग का नमा लिया जिसके बाद मेरी हिम्मत न हुई कि मैं इन्कार करूं, क्योंकि हज़रत शाह गुलाम अली साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि उन औलिया-ए-किराम में से हैं कि अगर इस शख़्स को उनसे दूर दराज़ की भी निस्बत थी तो उस निस्बत का एहतिराम करना मेरा फ़र्ज़ था। शायद अल्लाह तआला मेरे उस निस्बत के एहतिराम पर मेरी मग़फ़िरत फ़रमा दें। इसलिये मैंने उसको पैसे भी दे दिये।

दीन की निस्बत का एहतिराम

यह वाक़िआ मैंने अपने वालिद माजिद रहमतुल्लाहि अलैहि से सुना और उन्होंने यह वाक़िआ अपने शैख़ हज़रत मौलाना अशरफ़ अली साहिब थानवी रहमतुल्लाहि अलैहि से सुना, और हज़रत थानवी रहमतुल्लाहि अलैहि ने यह वाक़िआ बयान करने के बाद फ़रमाया कि एक तरफ सर सैयद साहिब ने मेहमान का इकराम किया, और दूसरी तरफ़ बुज़ुर्गाने दीन की निस्बत का एहतिराम किया। क्योंकि जो शख़्स अल्लाह का वली है, और उसकी तरफ़ किसी शख़्स को ज़रा सी भी निस्बत हो गयी है, अगर उस निस्बत का एहतिराम कर लिया तो क्या पता कि अल्लाह तआला उस निस्बत के इकराम ही की बदौलत नवाज़िश फ़रमा दे। अल्लाह तआला हम सब को इसकी तौफ़ीक़ अता फ़रमा दे, आमीन।

बहर हाल! हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इस हदीस में फ़रमाया कि किसी भी क़ौम का इज़्ज़तदार आदमी आये तो उसका इकराम करो।

आम जलसे में इज़्ज़तदार का इकराम

यहां एक बात और अर्ज़ कर दूं वह यह कि जो आम इज्तिमा गाह या मज्लिस या मस्जिद होती है, उसका आम क़ायदा यह है कि जो शख़्स मस्जिद में या किसी मज्लिस में या किसी इज्तिमा में जिस जगह जाकर पहले बैठ जाये, वही उस जगह का ज़्यादा हक़दार है। जैसे मस्जिद की अगली सफ़ में जाकर अगर कोई शख़्स पहले बैठ जाये, वह उसका ज़्यादा हक़दार है। अब दूसरे शख़्स को इख़्तियार नहीं कि वह उस से कहे कि भाई! तुम इस जहग से हट जाओ, यहां मैं बैठूंगा। बल्कि जिस शख़्स को जहां जगह मिल जाये, वह वहां बैठ जाये। लेकिन अगर उसी मज्लिस में या आम इज्तिमा में या मस्जिद में कोई ऐसा शख़्स आ जाये जो अपनी क़ौम का मुअज़्ज़ज़ फ़र्द है, तो उसको आगे बिठाना और दूसरों से आगे जगह दे देना भी इस

हदीस के मफ़्हूम में दाख़िल है। हमारे बुज़ुर्गों का मामूल यह है कि जब किसी मज्लिस में सब लोग अपनी अपनी जगह बैठे हों और उस वक़्त कोई मुअ़ज़्ज़ज़ मेहमान आ जाये तो उस मुअ़ज़्ज़ज़ मेहमान को अपने क़रीब बिठाते हैं, और अगर उसको बिठाने के लिये दूसरों से यह भी कहना पड़े कि थोड़ा सा पीछे हो जायें, तो इसमें भी कोई मुज़ायक़ा और हर्ज नहीं।

यह हदीस पर अ़मल हो रहा है

यह बात इसलिये अ़र्ज़ कर दी कि इस तरीक़े पर हमारे बुज़ुर्गों के दिलों में यह इश्काल पैदा होता है कि शरीअ़त का तो हुक्म यह है कि जो शख़्स पहले आ जाये, उसको जहां जगह मिल जाये, वह वहां बैठ जाये। अब अगर कोई शख़्स देर से आया है, और उसको पीछे जगह मिल रही है तो उसको चाहिये कि वह वहीं पीछे बैठे, लेकिन यह बुज़ुर्ग साहिब दूसरों का हक़ ज़ाया करके देर से आने वाले को आगे क्यों बुला रहे हैं? बात असल में यह है कि वह आगे बुलाने वाले बुज़ुर्ग हक़ीक़त में इस हदीस पर अ़मल फ़रमाते हैं कि:

"اذا اتاكم كريم قوم فاكرموه"

यानी जब तुम्हारे पास किसी क़ौम का मुअ़ज़्ज़ज़ आदमी आ जाये तो उसका इकराम करो।

बल्कि हमारे बुज़ुर्ग हज़रत मौलाना मसीहुल्लाह ख़ां साहिब रह. (अल्लाह तआ़ला उनके दर्जे बुलन्द फ़रमाये, आमीन) वह इस बात का बड़ा ख़्याल फ़रमाते थे, यहां तक कि अगर कोई बड़ा आदमी मस्जिद में आ जाता और अगली सफ़ के लोग उसको जगह न देते तो हज़रते वाला इस तर्ज़े अ़मल पर लोगों को ख़ास तौर पर तंबीह फ़रमाते कि भाई यह क्या अन्दाज़ है? तुम्हें चाहिये कि अपनी जगह से हट कर ऐसे मुअ़ज़्ज़ज़ आदमी को जगह दें। और इसको यह न समझा जाये कि यह ना इन्साफ़ी है, बल्कि यह भी इस हदीस के इर्शाद पर अ़मल का एक हिस्सा है।

मुअ़ज़्ज़ज़ आदमी का इकराम अज्र का सबब है

हज़रत थानवी रहमतुल्लाहि अ़लैहि ने इस हदीस पर एक जुम्ला लिखा है, वह भी याद रखने का है। वह यह कि "कोई शख़्स काफ़िर हो या फ़ासिक़ हो, अगर उसके आने पर उसका इकराम इस हदीस पर अ़मल करने की नियत से हो तो इन्शा अल्लाह अज्र का सबब है। क्योंकि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के हुक्म की तामील है। लेकिन अगर उसका इकराम इस नियत से करे कि मैं अगर इसका इकराम करूंगा तो यह फ़लां मौक़े पर मेरे काम आयेगा, या फ़लां मौक़े पर इस से सिफ़ारिश कराऊंगा, या इस से फ़लां दुनियावी मक़सद हासिल करूंगा, गोया कि एक फ़ासिक़ या काफ़िर के इकराम का मक़सद दुनियावी लालच है और उस से पैसे बटोरना मक़सूद है, या अपने लिये कोई ओ़हदा हासिल करना है, तो उस सूरत में यह इकराम दुरुस्त नहीं।

इसलिये इकराम करते वक़्त नियत दुरुस्त होनी चाहिये। यानी यह नियत होनी चाहिये कि चूंकि हमारे नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इसका हुक्म दिया है, इसलिये उस हुक्म की तामील में मैं यह इकराम कर रहा हूं।

अल्लाह तआ़ला अपनी रहमत से हम सब को इस पर अ़मल करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, आमीन।

واخر دعوانا ان الحمد لله رب العالمين

कुरआने करीम की तालीम की अहमियत

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

فَاَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنَ الشَّيْطٰنِ الرَّجِيْمِ، بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ۔

"اَلَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ يَتْلُوْنَهٗ حَقَّ تِلَاوَتِهٖ اُولٰٓئِكَ يُؤْمِنُوْنَ بِهٖ" (البقرة:١٢١)

وقال رسول اللّٰہِ صلی اللہ علیہ وسلم: خیرکم من تعلم القراٰن وعلمه۔

(بخاری شریف)

اٰمنت با للّٰہ صدق اللّٰہ مولانا العظیم وصدق رسوله النبی الکریم ونحن علیٰ ذالك من الشاهدین والشاکرین، والحمد للّٰہ رب العالمین۔

तम्हीद

बुज़ुर्गाने मोहतरम व प्यारे भाईयो! आज हम सब के लिये यह सआदत का मौक़ा है कि एक दीनी मदरसे की बुनियाद की तक़रीब में शिर्कत की सआदत हासिल हो रही है। एक ऐसा मदरसा जो कुरआने करीम के पढ़ने पढ़ाने के लिये क़ायम किया जा रहा है, इसकी पहली ईंट रखने में हम सब को शिर्कत का मौक़ा मिल रहा है, यह इन्शा अल्लाह सब के लिये सदक़ा—ए—जारिया होगा, अल्लाह तआ़ला इसके अनवार व बरकतें हम सबको अ़ता फ़रमाये, आमीन।

आयत की तश्रीह

मौक़े की मुनासबत से मैंने क़ुरआने करीम की एक आयत और नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की एक हदीस तिलावत की है, उनकी थोड़ी सी तश्रीह इस मुख़्तसर वक़्त में करना चाहता हूं। क़ुरआने करीम में अल्लाह तआ़ला ने इर्शाद फ़रमायाः

"اَلَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ يَتْلُوْنَهٗ حَقَّ تِلَاوَتِهٖ اُولٰٓئِكَ يُؤْمِنُوْنَ بِهٖ"

यानी जिन लोगों को हमने किताब अ़ता फ़रमाई, किताब से मुराद है अल्लाह की किताब, वे लोग उसकी तिलावत का हक़ अदा करते हैं, वही लोग हक़ीक़त में उस किताब पर ईमान लाने वाले हैं। यानी सिर्फ़ ज़बानी तौर पर किताब पर ईमान लाने का दावा काफ़ी नहीं, जब तक कि उसकी तिलावत का हक़ अदा न किया जाये। इस आयते करीमा के ज़रिये से अल्लाह तआ़ला ने इस तरफ़ मुतवज्जह फ़रमाया कि ज़बान से तो हर शख़्स यह कह देता है कि मैं अल्लाह तआ़ला की किताब पर ईमान लाता हूं लेकिन जब तक वह उसकी तिलावत का हक़ अदा न करे, उस वक़्त तक वह अपने ईमान के इस दावे में सही मायने में सच्चा नहीं।

क़ुरआने करीम के तीन हक़

इस से यह बात मालूम हुई कि क़ुरआने करीम के कुछ हुक़ूक़ अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से हमारे ऊपर मुक़र्रर फ़रमाये गये हैं, वे तीन हुक़ूक़ हैं। पहला हक़ यह है कि क़ुरआने करीम की सही तरीक़े से इस तरह तिलावत करना जिस तरह वह नाज़िल हुआ और जिस तरह नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उसकी तिलावत फ़रमाई। दूसरा हक़ यह है कि क़ुरआने करीम को समझने की कोशिश करना और उसके हक़ाइक़ और मआ़रिफ़ को अपने दिल में उतारना। तीसरा हक़ यह है कि क़ुरआने करीम की तालीमात और हिदायात पर अ़मल करना। अगर क़ुरआने करीम के ये तीन हुक़ूक़ कोई शख़्स अदा करे तो यह कहा जायेगा कि उसने क़ुरआने करीम

का हक़ अदा कर दिया, लेकिन अगर इन तीन में से किसी एक हक़ की अदाएगी न की तो इसका मतलब यह है कि कुरआने करीम की तिलावत का हक़ अदा नहीं किया।

कुरआन की तिलावत ख़ुद मक़सूद है

सब से पहला हक़ है सही तरीक़े पर तिलावत करना। आजकल लोगों में प्रोपैगन्डा किया गया है कि कुरआने करीम को तोता मैना की तरह रटने से क्या फ़ायदा, जब तक कि इन्सान उसके मायने और मतलब न समझे, और जब तक उसके मफ़हूम को न जाने, इस तरह बच्चों को कुरआने करीम रटाने से क्या हासिल है (अल्लाह अपनी पनाह में रखे) याद रखिये! यह शैतान की तरफ़ से बहुत बड़ा धोखा और फ़रेब है, जो मुसलमानों के अन्दर फैलाया जा रहा है। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को जिन मक़ासिद के लिये भेजा गया कुरआने करीम ने उनको अनेक मक़ामात पर बयान फ़रमाया, उन मक़ासिद में दो चीज़ों को अलग अलग ज़िक्र फ़रमाया, एक तरफ़ फ़रमायाः

"يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ ايٰتِه"

और दूसरी तरफ़ फ़रमायाः

"وَ يُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ"

यानी आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम इसलिये तशरीफ़ लाये ताकि अल्लाह की किताब की आयतों को लोगों के सामने तिलावत करें, इसलिये तिलावत करना एक मुस्तक़िल मक़सद है और एक मुस्तक़िल नेकी और अज्र का काम है, चाहे समझ कर तिलावत करे या बे समझे तिलावत करे। और यह तिलावत हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के भेजने के मक़ासिद में से एक मक़सद है, जिसको सब से पहले ज़िक्र फ़रमायाः

"يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ ايٰتِه"

कुरआने करीम और तजवीद का फ़न

और कुरआने करीम की तिलावत ऐसी बेवक़अत चीज़ नहीं कि जिस तरह चाहा तिलावत कर लिया, बल्कि नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने अपने सहाबा–ए–किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम को बाक़ायदा तिलावत करने का तरीक़ा सिखाया और इसकी तालीम दी कि किस लफ़्ज़ को किस तरह अदा करना है, किस तरह ज़बान से निकालना है, इसकी बुनियाद पर दो मुस्तक़िल उलूम वजूद में आये, जिनकी नज़ीर दुनिया की किसी क़ौम में नहीं है, एक इल्मे तजवीद, दूसरा इल्मे क़िराअत। इल्मे तजवीद यह सिखाता है कि कुरआने करीम को पढ़ने के लिये किस हर्फ़ को किस तरह निकाला जाये और किस हर्फ़ को निकालने के लिये किन बातों का ख़्याल रखने की ज़रूरत है। और इस इल्म के अन्दर वह तरीक़ा बताया गया है जिस तरीक़े से नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने कुरआने करीम पढ़ा, और इस इल्म पर बेशुमार किताबें मौजूद हैं, जिनमें उलमा–ए–किराम ने मेहनत करके इस इल्म को मुरत्तब किया है, इस इल्म की नज़ीर दुनिया की किसी दूसरी क़ौम के पास नहीं है कि अल्फ़ाज़ की अदाएगी के लिये क्या क्या तरीक़े होते हैं और किस तरह अल्फ़ाज़ को ज़बान से निकाला जाता है। यह सिर्फ़ उम्मते मुस्लिमा की ख़ुसूसियत है और नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के मोजिज़ात में से एक मोजिज़ा है। और यह इल्म आज तक इस तरह महफ़ूज़ है कि आज पूरे इत्मीनान के साथ यह बात कही जा सकती है कि सरकारे दो आलम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने जिस तरह कुरआने करीम पढ़ा था और जिस तरह आप पर नाज़िल किया गया था, अल्हम्दु लिल्लाह, उसी शक्ल व सूरत में वह कुरआने करीम आज भी महफ़ूज़ है। कोई शख़्स उसके अन्दर किसी क़िस्म की तब्दीली नहीं ला सका।

कुरआने करीम और क़िराअत का इल्म

दूसरा क़िराअत का इल्म है, वह यह कि जब अल्लाह तआला ने

कुरआने करीम नाज़िल फ़रमाया तो ख़ुद अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से कुरआने करीम पढ़ने के कई तरीक़े भी नाज़िल फ़रमा दिये गये, कि इस लफ़्ज़ को इस तरह भी पढ़ा जा सकता है और इस तरह भी पढ़ा जा सकता है। इसको "इल्मे क़िराअत" कहते हैं, इस इल्म को भी उम्मते मुस्लिमा ने जूं का तूं महफ़ूज़ रखा और आज तक महफ़ूज़ चला आ रहा है।

यह पहली सीढ़ी है

बहर हाल, तिलावत बज़ाते ख़ुद एक मक़सद है और यह कहना कि बग़ैर समझे सिर्फ़ अल्फ़ाज़ को पढ़ने से क्या हासिल? यह शैतान का धोखा है। याद रखिये! जब तक किसी शख़्स को कुरआने करीम समझे बग़ैर पढ़ना न आया तो वह शख़्स दूसरी मन्ज़िल पर क़दम रख ही नहीं सकता। कुरआने करीम समझे बग़ैर पढ़ना पहली सीढ़ी है, इस सीढ़ी को पार करने के बाद दूसरी सीढ़ी का नम्बर आता है। अगर किसी शख़्स को पहली सीढ़ी पार करने की तौफ़ीक़ न हुई तो वह दूसरी सीढ़ी तक कैसे पहुंचेगा।

हर हर्फ़ पर दस नेकियां

इसी वजह से नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमाया कि अगर कोई शख़्स कुरआने करीम की तिलावत करता है तो हर हर्फ़ की अदाएगी पर अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से दस नेकियां लिखी जाती हैं, और फिर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इसकी तश्रीह करते हुए फ़रमाया कि मैं यह नहीं कहता कि "अलीफ़ लाम मीम" एक हर्फ़ है, बल्कि "अलिफ़" एक हर्फ़ है, और "लाम" एक हर्फ़ है और "मीम" एक हर्फ़ है। इसलिये जिस शख़्स ने "अलिफ़ लाम मीम" पढ़ा तो उसके नामा-ए-आमाल में तीस नेकियों का इज़ाफ़ा हो गया। अगरचे बाज़ उलमा ने तो इस हदीस की तश्रीह में यह फ़रमाया कि "अलिफ़ लाम मीम" पढ़ने पर नब्बे नेकियां लिखी जायगीं, क्योंकि ख़ुद "अलिफ़" तीन हर्फ़ों पर

मुश्तमिल है, और "लाम" तीन हर्फ़ों पर मुश्तमिल है, और "मीम" तीन हर्फ़ों पर मुश्तमिल है, और इस तरह ये नौ हर्फ़ हुए और हर हर्फ़ पर दस नेकियों का सवाब लिखा जाता है तो इस तरह नव्वे नेकियां उसके नामा-ए-आमाल में लिख दी जाती हैं। इतनी बड़ी फ़ज़ीलत कुरआने करीम की तिलावत पर अल्लाह तआला ने रखी है।

"नेकियां" आख़िरत की क्रंसी

आज हमारे दिलों में नमा-ए-आमाल में नेकियों के इज़ाफ़े की अहमियत और उसकी क़द्र मालूम नहीं होती, लेकिन अगर कोई शख़्स यह कह देता कि यह नेक काम करोगे तो तुम्हें नव्वे रुपये मिलेंगे तो उसकी हमारे दिलों में बड़ी क़द्र व अहमियत होती। वजह इसकी यह है कि आज हमें इन नेकियों की क़द्र मालूम नहीं, लेकिन याद रखिये! ये नकियां ही हक़ीक़त में आख़िरत की क्रंसी हैं, जब तक यह ज़ाहिरी आंख खुली हुई है, और जब तक इन्सान का सांस चल रहा है, उस वक़्त तक इस नेकी का अज्र व सवाब और इसका हक़ीक़ी फ़ायदा इन्सान को मालूम नहीं होता, लेकिन जब यह आंख बन्द हो गयी और आख़िरत का और बर्ज़ख़ का आलम शुरू होगा तो उस वक़्त तुम वहां न तो पैसे साथ लेजा सकोगे और न रुपये साथ लेजा सकोगे। वहां तो सिर्फ़ यह सवाल होगा कि कितनी नेकियां अपने आमाल नामे में लेकर आये हो? उस वक़्त इन नेकियों की क़द्र व क़ीमत मालूम होगी।

हमने कुरआने करीम का पढ़ना छोड़ दिया

बहर हाल! कुरआने करीम का पढ़ना मुस्तक़िल फ़ज़ीलत का बाइस और अज्र व सवाब का ज़रिया है। यही वजह है कि इस्लाम की शुरू के ज़माने से लेकर आज तक उम्मते मुस्लिमा का मामूल रहा है कि सुबह को बेदार होने के बाद जब तक कुरआने करीम की थोड़ी सी तिलावत न कर लेते, उस वक़्त तक दुनिया के दूसरे कामों में नहीं लगते थे। सुबह के वक़्त मुसलमानों के मौहल्ले से गुज़रें तो

घर घर से कुरआने करीम की तिलावत की आवाज़ें आया करती थीं, और तिलावत की आवाज़ आना यह मुसलमानों के मौहल्ले की निशानी थी। अफ़सोस है कि आज हमने एक तरफ़ कुफ़्र और शिर्क से भी आज़ादी हासिल कर ली और दूसरी तरफ़ अल्लाह और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के अहकाम और उनकी तालीमात से और दीन से भी आज़ाद हो गये, और अब हर साल आज़ादी का जश्न मनाया जाता है, चिराग़ां किया जाता है, झन्डियां लगाई जाती हैं कि हमें आज़ादी हासिल हो गयी। लेकिन ऐसी आज़ादी हासिल हुई कि उसके बाद हम दीन से भी आज़ाद हो गये, और उसके नतीजे में न हमारी जानें महफ़ूज़ हैं, न माल महफ़ूज़ है, न आबरू महफ़ूज़ है, बल्कि बुराईयों और गुनाहों का बाज़ार गर्म है, इसी को हमने आज़ादी का नाम दे दिया, और अब हमारी पूरी क़ौम यह अज़ाब भुगत रही है।

कुरआने करीम की लानत से बचें

आज कुरआने करीम की तिलावत करने वाला नहीं मिलता, और अगर कोई शख़्स कुरआने करीम की तिलावत भी करता है तो वह इस तरह तिलावत नहीं करता जिस तरह तिलावत करने का हक़ है, हालांकि हदीस शरीफ़ में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमाया कि कभी कभी इन्सान तिलावत करता है लेकिन कुरआने करीम के हुरूफ़ उसको लानत कर रहे होते हैं, इसलिये कि वह कुरआने करीम को बिगाड़ कर पढ़ता है और सही तरीक़े से पढ़ने की फ़िक्र, ध्यान और ख़्याल नहीं है। अगर एक शख़्स आज ही मुसलमान हुआ और ग़लत तरीक़े से कुरआने करीम पढ़े तो वह अल्लाह तआला के यहां माज़ूर है, लेकिन अगर किसी ने सारी उम्र गुज़ार दी फिर भी सूरः फ़ातिहा तक सही तरीक़े से पढ़ना न आई तो ऐसा शख़्स अल्लाह तआला के सामने क्या उज़्र पेश करेगा। इसलिये हमें इस तरह तिलावत करने का एहतिमाम करना चाहिये जिस तरह

नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने सिखाया, यह हर मुसलमान की ज़िम्मेदारी है जिसके बगैर वह कुरआने करीम का पहला हक़ भी अदा नहीं कर सकता, दूसरा हक़ और तीसरा हक़ तो वह क्या अदा करेगा।

एक सहाबी का वाक़िआ

एक ज़माना वह था जब मुसलमान कुरआने करीम के अल्फ़ाज़ सीखने के लिये मेहनतें और मशक़्क़तें और कुरबानियां दिया करते थे। बुख़ारी शरीफ़ में वाक़िआ लिखा है कि एक सहाबी अमर बिन सलमा रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि जब हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम मदीना तैयबा तशरीफ़ लाये तो मैं उस वक़्त बच्चा था और मेरा गांव मदीना मुनव्वरा से बहुत फ़ासले पर था। मेरे क़बीले के कुछ लोग मुसलमान हो गये और मुझे भी अल्लाह तआला ने ईमान की तौफ़ीक़ अता फ़रमाई। ईमान लाने के बाद सब से बड़ी दौलत कुरआने करीम है। मुझे यह ख़्वाहिश हुई कि मैं कुरआने करीम के अल्फ़ाज़ याद करूं, इसका इल्म सीखूं, लेकिन पूरी बस्ती में कुरआने करीम पढ़ाने वाला कोई नहीं था और कुरआने करीम सीखने का कोई इन्तिज़ाम नहीं था। चुनांचे मैं यह करता कि मेरी बस्ती के बाहर क़ाफ़िलों के गुज़रने का जो रास्ता था, रोज़ाना सुबह के वक़्त वहां जाकर खड़ा हो जाता, जब कोई क़ाफ़िला गुज़रता तो मैं पूछता कि क्या यह क़ाफ़िला मदीना मुनव्वरा से आया है? जब क़ाफ़िले वाले बताते कि हम मदीना मुनव्वरा से आये हैं तो फिर उनसे दरख़्वास्त करता कि आप में से किसी को कुरआने करीम का कुछ हिस्सा याद हो तो मुझे सिखा दें, जिनको याद होता मैं उनसे वह हिस्सा याद कर लेता, यह मेरा रोज़ाना का मामूल था। इस तरह चन्द महीनों के अन्दर मैं अपनी बस्ती में सब से ज़्यादा कुरआने करीम का याद करने वाला हो गया और सब से ज़्यादा सूरतें मुझे याद थीं, चुनांचे जब मेरी बस्ती में मस्जिद की तामीर हुई और इमामत के लिये किसी को आगे बढ़ाने का वक़्त आया तो लोगों ने मुझे आगे कर दिया,

इसलिये कि सब से ज़्यादा कुरआने करीम मुझे याद था।

कुरआने करीम उसी तरह महफ़ूज़ है

बहर हाल! इस तरह लोगों ने मेहनत और मशक़्क़त करके कुरआने करीम हासिल किया और उन्हीं की मेहनत और कोशिश का नतीजा है कि आज "अल्हम्दु लिल्लाह" यह कुरआने करीम अल्लाह के फ़ज़्ल से सही शक्ल व सूरत में मौजूद है, और न सिर्फ़ अल्फ़ाज़ बल्कि मायने भी महफ़ूज़ हैं। आज अल्हम्दु लिल्लाह पूरे इत्मीनान के साथ कहा जा सकता है कि कुरआने करीम की वह सही तफ़सीर जो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सहाबा तक और सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अ़न्हुम से लेकर हम तक पहुंची है वह अपनी सही शक्ल व सूरत में महफ़ूज़ है। इसमें कोई बदलाव नहीं हुआ। अल्लाह तआ़ला ने जिस तरह इसके अल्फ़ाज़ की हिफ़ाज़त का इन्तिज़ामा फ़रमाया है, इसी तरह इसके मायनों का भी इन्तिज़ाम फ़रमाया है।

अ़रबी लुग़त की हिफ़ाज़त का एक तरीक़ा

मायनों की हिफ़ाज़त किस तरह फ़रमाई? इसकी एक छोटी सी मिसाल पेश करता हूं। एक बुज़ुर्ग और आ़लिम गुज़रे हैं, अ़ल्लामा हमवी रह्मतुल्लाहि अ़लैहि, उनकी एक किताब है जिसका नाम है "मोजमुल बलदान" इस किताब में उन्होंने अपने ज़माने तक के मश्हूर शहरों के हालात और उनकी तारीख़ बयान फ़रमाई है। गोया कि यह जुग़राफ़िया (भूगोल) और तारीख़ की किताब है, उस किताब में उन्होंने लिखा है कि जज़ीरा-ए-अ़रब में दो क़बीले थे, एक का नाम उकाद और दूसरे का नमा ज़राइब था, उन दोनों के बारे में यह बात मश्हूर थी कि अगर कोई मेहमान दूसरे शहर और दूसरी बस्ती का उनके क़बीले में आता तो ये लोग उस मेहमान को अपने यहां तीन दिन से ज़्यादा ठहरने नहीं देते थे, हालांकि अ़रब के लोग बड़े मेहमान नवाज़ होते हैं और मेहमान के आने पर खुशियां मनाते हैं,

लेकिन उकाद और जराइब के कबीले के लोग मेहमान को अपने यहां तीन दिन से ज़्यादा ठहरने की इजाज़त नहीं देते थे। लोगों ने उनसे पूछा कि इसकी क्या वजह है कि तुम मेहमान को तीन दिन से ज़्यादा ठहरने नहीं देते? जवाब में उन्होंने कहा कि बात असल में यह है कि अगर कोई बाहर का आदमी हमारे यहां तीन दिन से ज़्यादा ठहर जायेगा तो वह हमारी ज़बान ख़राब कर जायेगा और ज़बान से अल्फ़ाज़ की अदाएगी के तरीके, ज़बान का मफ़हूम, ज़बान के मुख़्तलिफ अल्फ़ाज़ के मायने और उनके इस्तेमाल के तरीक़े में वह शख़्स असर अन्दाज़ हो जायेगा, और हमारी ज़बान को तब्दील कर देगा, और हमारी ज़बान कुरआने करीम की ज़बान है, और इस ज़बान को महफूज़ रखना ज़रूरी है, इस वजह से हम किसी मेहमान को तीन दिन से ज़्यादा ठहरने की इजाज़त नहीं देते। इस तरह अल्लाह तआ़ला ने कुरआने करीम के अल्फ़ाज़ और उसके मायनों को महफूज़ रखा।

कुरआने करीम की तालीम के लिये बच्चों का चन्दा

आज कुरआने करीम और उसके तमाम उलूम पक्की पकाई रोटी की शक्ल में हमारे सामने हैं। अब हमारा काम यह है कि हम इस कुरआने करीम को और इसके उलूम को हासिल करें और इसको अपनी ज़िन्दगी के अन्दर दाख़िल करें। हमारे मुल्क और शहर में बहुत से मदरसे और मकातिब क़ायम हैं जिनके अन्दर कुरआने करीम के पढ़ने पढ़ाने का इन्तिज़ाम है, अल्लाह तआ़ला का फ़ज़्ल व करम है कि इस जगह पर भी एक मदरसे के क़ियाम (स्थापना) का इन्तिज़ाम हुआ है और इसके लिये यह जगह मुक़र्रर की गयी है। बहुत से मदरसे क़ायम होते रहते हैं और उनके लिये चन्दे भी बहुत किये जाते हैं, लेकिन जब किसी मदरसे के लिये चन्दे का मामला सामने आता है तो मुझे अपने वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रहमतुल्लाहि अलैहि की एक बात याद आती है,

वह फ़रमाया करते थे कि लोग मदरसे के लिये पैसों के चन्दे का तो बड़ा एहतिमाम करते हैं, हालांकि पैसों का चन्दा इतनी अहमियत नहीं रखता, क्योंकि मेरा यह तजुर्बा है कि जब एक काम इख़्लास के साथ शुरू किया जाता है तो अल्लाह तआला ग़ैब से उसकी मदद फ़रमाते हैं और उसका इन्तिज़ाम फ़रमाते हैं। इसका मुशाहदा और तजुर्बा है और इस वक़्त जितने मदरसे चल रहे हैं, उन सब के अन्दर जाकर खुली आंखों से इसका मुशाहदा कर सकते हैं, हालांकि वहां कोई अपील नहीं है, कोई चन्दा नहीं है, कोई सफ़ीर नहीं है। अगर काम के अन्दर इख़्लास हो तो अल्लाह तआला अता फ़रमा ही देते हैं, लेकिन मदरसों के लिये असल चन्दा बच्चों का चन्दा होना चाहिये, अब अगर क़ायम करने वालों ने मदरसे तो क़ायम कर दिये और उस पर पैसे भी ख़र्च कर दिये, इमारतें भी खड़ी कर दीं और पढ़ाई भी शुरू हो गई, लेकिन यह सब होने के बाद यह बात सामने आई कि मुसलमान उस मदरसे में अपने बच्चों को भेजने के लिये तैयार नहीं, वे मुसलमान अपने बच्चों को इसलिये भेजने के लिये तैयार नहीं कि मदरसे में भेजने से नेकियां मिलती हैं और दूसरी जगह भेजने से रुपये मिलते हैं, तो रुपये के मुक़ाबले में नेकियों को तरजीह किस तरह दें।

मदरसा इमारत का नाम नहीं

बहर हाल! यह मदरसा तो क़ायम हो रहा है, लेकिन मदरसा इमारत का नाम नहीं, मदरसा जगह और प्लाट का नाम नहीं, मदरसा दर्स गाह का नाम नहीं, बल्कि पढ़ने और पढ़ाने वालों का नाम मदरसा है। दारुल उलूम देवबन्द का नाम तो आपने सुना होगा, इतनी बड़ी दीनी दर्स गाह, लेकिन जब वह क़ायम हुआ तो उस वक़्त उसकी न कोई इमारत थी, न कोई जगह थी, न कोई कमरा था, बल्कि एक अनार के दरख़्त के नीचे बैठ कर एक उस्ताद और एक शागिर्द ने पढ़ना पढ़ाना शुरू कर दिया और इस तरह "दारुल उलूम

देवबन्द" कायम हो गया, और यही नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सुन्नत है कि आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने एक चबूतरे पर पहला मदरसा कायम फ़रमाया, और एक "सुफ़्फ़ा" पर सहाबा–ए–किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम आकर जमा हो गये और दुनिया का अज़ीमुश्शान मदरसा कायम हो गया।

और अगर मदरसा तो कायम हो गया लेकिन हमारे सारे मौहल्ले के लोग उस से गाफ़िल हैं, न तो ख़ुद कुरआने करीम की तालीम हासिल करने को तैयार हैं और न बच्चों को उसमें भेजने के लिये तैयार हैं। तो इस तरह मदरसे से पूरी तरह फ़ायदा हासिल नहीं हो सकता, इसलिये आप हज़रात से मेरी गुज़ारिश यह है कि न सिर्फ़ यह कि इस मदरसे के साथ माली सहयोग फ़रमायें बल्कि साथ साथ इस बात की कोशिश भी फ़रमायें कि लोगों के दिलों में कुरआने करीम सीखने और पढ़ने का एहतिमाम पैदा हो जाये और अपने बच्चों को भेजें, और जिन बड़ों का कुरआने करीम सही नहीं है वे अपने कुरआने करीम को सही करने का एहतिमाम करें। अगर यह काम हमने कर लिया तो इन्शा अल्लाह यह मदरसा बड़ा कामयाब और मुफ़ीद होगा और हमारे लिये ज़ख़ीरा–ए–आख़िरत होगा।

अल्लाह तआला इस मदरसे को अपनी बारगाह में कबूल फ़रमाये और इस मदरसे के कायम करने में जिन लोगों ने मेहनत और कोशिश की है, अल्लाह तआला उनकी इस मेहनत को कबूल फ़रमाये और इस मदरसे को दिन दोगुनी रात चौगुनी तरक़्क़ी अता फ़रमाये, और मुसलमानों को इस मदरसे से सही मायनों में फ़ायदा उठाने की तरफ़ मुतवज्जह फ़रमाये, आमीन।

وآخر دعوانا ان الحمد لله رب العالمين

ग़लत निस्बत से बचिए

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

"عن جابر بن عبداللّٰه رضی اللّٰه عنه قال: قال رسول اللّٰه صلی اللّٰه علیه وسلم، من تحلّٰی بمالم یعط کان کلابس ثوبی زور" (ترمذی شریف)

हदीस का मतलब

हज़रत जाबिर बिन अ़ब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है कि जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमाया कि जो शख़्स आरास्ता (सुसज्जित) हो ऐसी चीज़ से जो उसको नहीं दी गयी तो वह झूठ के दो कपड़े पहनने वाले की तरह है। मतलब यह है कि अगर कोई शख़्स अपने बारे में लोगों के सामने कोई ऐसी सिफ़त ज़ाहिर करे जो हकीकत में उसके अन्दर मौजूद नहीं, तो गोया उसने अपने पूरे जिस्म पर सर से पांव तक झूठ लपेट रखा है, और जिस तरह लिबास सारे जिस्म को ढांपा हुआ होता है, इस तरह उसने झूठ से अपने आपको ढांप लिया है।

यह भी झूठ और धोखा है

मतलब इस हदीस का यह है कि आदमी धोखा देने के लिये अपने लिये कोई ऐसी सिफ़त ज़ाहिर करे जो हक़ीक़त में उसके अन्दर नहीं है। जैसे एक शख़्स आ़लिम नहीं है, लेकिन अपने आपको आ़लिम ज़ाहिर करता है, या एक शख़्स एक ख़ास पद नहीं रखता, लेकिन अपने आपको उस ख़ास पद वाला ज़ाहिर करता है, या एक शख़्स एक ख़ास हसब नसब (नस्ल और ख़ानदान) से ताल्लुक़ नहीं

रखता, मगर अपने आपको उस नसब के साथ मन्सूब करता है, उनके बारे में फ़रमाया कि यह झूठ के कपड़े पहनने वाले की तरह है। इसी तरह एक शख़्स मालदार नहीं है, लेकिन अपने आपको मालदार ज़ाहिर करता है। बहर हाल! जो सिफ़त इन्सान के अन्दर मौजूद नहीं है, लेकिन वह बनावटी तौर पर उस सिफ़त को ज़ाहिर करता है, इस हदीस में उस पर यह वईद बयान फ़रमाई गयी है।

अपने नाम के साथ "फ़ारूक़ी, सिद्दीक़ी" लिखना

जैसे हमारे समाज में यह बात बहुत ज़्यादा पाई जाती है कि लोग अपने आपको किसी ऐसे नसब और ख़ानदान से मन्सूब कर देते हैं जिसके साथ हक़ीक़त में ताल्लुक़ नहीं होता। जैसे कोई शख़्स "सिद्दीक़ी" नहीं है लेकिन अपने नाम के साथ "सिद्दीक़ी" लिखता है। या कोई "फ़ारूक़ी" नहीं है, लेकिन अपने आपको "फ़ारूक़ी" लिखता है, या कोई "अन्सारी" नहीं है, लेकिन अपने आपको "अन्सारी" लिखता है। इसलिये अपने आपको किसी और नसब की तरफ़ मन्सूब करना जिस से उसका कोई ताल्लुक़ नहीं, यह बड़ा सख़्त गुनाह है, और इसके बारे में इस हदीस में फ़रमाया कि गोया उसने सर से लेकर पांव तक झूठ का लिबास पहना हुआ है।

कपड़ों जैसा क्यों कहा?

इस गुनाह को झूठ के कपड़े पहनने वाले से इसलिये तश्बीह दी कि एक गुनाह तो वह होता है जिसमें इन्सान थोड़ी देर के लिये मुब्तला हुआ, फिर वह गुनाह ख़त्म हो गया, लेकिन जिस शख़्स ने ग़लत निस्बत इख़्तियार कर रखी है, और लोगों में अपनी ऐसी हैसियत ज़ाहिर कर रखी है जो हक़ीक़त में उसकी हैसियत नहीं है तो वह एक हमेशा रहने वाला गुनाह है, और हर वक़्त उसके साथ लगा हुआ है, जिस तरह लिबास इन्सान के साथ हर वक़्त चिपका रहता है, इसी तरीक़े से यह गुनाह भी हर वक़्त इन्सान के साथ चिपका रहेगा।

जुलाहों का "अन्सारी" और कसाईयों का "कुरैशी" लिखना

मेरे वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह्मतुल्लाहि अलैहि ने इस मौज़ू पर एक मुस्तकिल रिसाला लिखा है, जिसका नाम है "ग़ायातुन्नसब" क्योंकि बाज़ कौमें अपने नामों के साथ ग़लत निस्बतें लगाती हैं। हिन्दुस्तान में यह बात आम थी कि कपड़े बुनने वाले जिनको "जुलाहे" कहा जाता था, वे अपने साथ अन्सारी लिखते थे, और गोश्त बेचने वाले कसाई अपने नामों के साथ "कुरैशी" लिखते थे। इसलिये हज़रत वालिद साहिब रह्मतुल्लाहि अलैहि ने यह रिसाला लिखा और उसमें इस बात की तरफ़ तवज्जोह दिलाई कि नसब के बारे में झूठा बयान करना सख़्त गुनाह है, और उसके बारे में कई हदीसें आयी हैं जिनमें झूठी निस्बत से आपने मना फ़रमाया है। उस रिसाले के लिखने के नतीजे में उन कौमों ने हज़रत वालिद साहिब रह्मतुल्लाहि अलैहि के ख़िलाफ़ पूरे हिन्दुस्तान में एक तूफ़ान खड़ा कर दिया कि इन्होंने हमारे ख़िलाफ़ बड़ी सख़्त किताब लिखी है, लेकिन हकीकत वही है जो नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने बयान फ़रमाई।

नसब और ख़ानदान फ़ज़ीलत की चीज़ नहीं

बात असल में यह है कि "नसब और ख़ानदान" का मामला ऐसा है कि उस पर कोई दीनी फ़ज़ीलत नहीं। कोई शख़्स किसी नसब और ख़ानदान से ताल्लुक रखता हो, लेकिन अल्लाह तआला ने उसको "तक़्वा" (परहेज़गारी) अता फ़रमाया है तो वह अच्छे नसब वाले से बेहतर है। कुरआने करीम में अल्लाह तआला ने साफ़ ऐलान फ़रमा दिया है:

"يَاأَيُّهَا النَّاسُ إِنَّا خَلَقْنٰكُمْ مِّنْ ذَكَرٍ وَّأُنْثٰى وَجَعَلْنٰكُمْ شُعُوْبًا وَّقَبَآئِلَ لِتَعَارَفُوْا إِنَّ أَكْرَمَكُمْ عِنْدَ اللّٰهِ أَتْقٰكُمْ" (الحجرات:١٣)

यानी ऐ लोगो! हमने तुम सब को एक मर्द और एक औरत से पैदा किया। मर्द हज़रत आदम अलैहिस्सलाम और औरत हज़रत हव्वा अलैहस्सलाम। इसलिये जितने भी इन्सान दुनिया में आये हैं सब एक मां बाप के बेटे हैं। लेकिन हमने जो ये मुख़्तलिफ़ क़बीले बना दिये कि किसी इन्सान का ताल्लुक़ किसी क़बीले से है, और किसी इन्सान का ताल्लुक़ किसी ख़ानदान से है, ये ख़ानदान और क़बीले इसलिये बनाये ताकि तुम एक दूसरे को पहचान सको। अगर सब इन्सान एक ही क़बीले के होते तो एक दूसरे को पहचानने में दुश्वारी होती। अब यह बता देना आसान है कि यह फ़लां शख़्स है और फ़लां क़बीले का है। इसलिये सिर्फ़ पहचान की आसानी की ख़ातिर हमने तुम्हें क़बीलों में तक़सीम किया है। लेकिन किसी क़बीले को दूसरे क़बीले पर कोई फ़ज़ीलत नहीं, बल्कि तुम में सब से ज़्यादा बुलन्द मर्तबे वाला और इज़्ज़त वाला वह है जिसमें तक़वा और परहेज़गारी ज़्यादा हो। इसलिये अगर कोई शख़्स किसी ऐसे नसब और ख़ानदान से ताल्लुक़ रखता है जिसको लोग आला नसब नहीं समझते तो कोई परवाह की बात नहीं, तुम अपने आमाल और अख़्लाक़ दुरुस्त करो, और अपनी ज़िन्दगी का क्रिदार सही करो तो फिर क्रिदार और अमल के नतीजे में तुम आला से आला नसब वाले से आगे बढ़ जाओगे। इसलिये क्यों अपने आपको ग़लत ख़ानदान की तरफ़ मन्सबू करके गुनाह का काम करते हो? इसलिये जिस शख़्स का जो नसब है वह उसी को बयान करे, और नसब बयान करने की ज़रूरत ही क्या है, बयान ही न करे। लेकिन अगर बयान करना ही है तो वह नसब बयान करे जो अपना वाक़ई नसब है, बिला वजह दूसरे नसब की तरफ़ मन्सूब करके लोगों को ग़लत फ़हमी में मुब्तला करना जायज़ नहीं, इस पर बड़ी सख़्त वईद बयान फ़रमाई गयी है।

"लेपालक" को हक़ीक़ी बाप की तरफ़ मन्सूब करें

इसी तरह का एक दूसरा मसला भी है, जिस पर कुरआने करीम ने आधा रुकू नाज़िल किया है: वह यह कि कभी कभी कोई शख़्स

दूसरे के बच्चे को अपना "मुतबन्ना" (लेपालक) बना लेता है, जैसे किसी शख़्स की कोई औलाद नहीं है, उसने दूसरे का बच्चा गोद ले लिया और उसकी परवरिश की, और उसको अपना "लेपालक" बना लिया, तो शरई एतिबार से लेपालक बनाना और किसी बच्चे की परवरिश करना और अपने बेटे की तरह उसको पालना तो जायज़ है, लेकिन शरई एतिबार से वह "लेपालक" किसी हालत में उस पालने वाले का हक़ीक़ी बेटा नहीं बन सकता। इसलिये जब उस बच्चे को मन्सूब करना हो तो उसको असल बाप ही की तरफ़ मन्सूब करना चाहिये कि फ़लां का बेटा है, परवरिश करने वाले की तरफ़ निस्बत करना जायज़ नहीं, और रिश्ते के जितने अहकाम हैं वे सब असल बाप की तरफ़ मन्सबू होंगे, यहां तक कि अगर वह ना मेहरम है तो उस बच्चे के बड़े होने के बाद उस से इसी तरह पर्दा करना होगा जिस तरह एक ना मेहरम से पर्दा होता है।

हज़रत ज़ैद बिन हारिसा रज़ियल्लाहु अन्हु का वाक़िआ

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत ज़ैद बिन हारिसा रज़ियल्लाहु अन्हु को अपना लेपालक बनाया था। उनका वाक़िआ भी बड़ा अजीब व ग़रीब है। यह हज़रत ज़ैद बिन हारिसा रज़ियल्लाहु अन्हु इस्लाम से पहले ज़माने में किसी के ग़ुलाम थे, अल्लाह तआ़ला ने उनको मक्का मुकर्रमा आने की तौफ़ीक़ दी, यहां आकर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मुबारक हाथ पर मुसलमान हो गये। उनके मां बाप और ख़ानदान के दूसरे अफ़राद उनकी तलाश में थे कि कहां हैं, तलाश करते करते कई साल गुज़र गये, कई साल के बाद किसी ने उनको ख़बर दी कि हज़रत ज़ैद बिन हारिसा मक्का मुकर्रमा में हैं और वह मुसलमान हो चुके हैं, और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास रहते हैं। चुनांचे उनके वालिद और चचा तलाश करते हुए मक्का मुकर्रमा पहुंच गये और जाकर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व

सल्लम से मुलाक़ात की, और कहा कि यह ज़ैद बिन हारिसा जो आपके पास रहता है, यह हमारा बेटा है, हम इसकी तलाश में परेशान हैं, यह हमें मिल नहीं रहा था, अब यहां हमें मिल गया है, हम इसको ले जाना चाहते हैं। आं हज़रत सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनसे फ़रमाया कि ठीक है, तुम उसके बाप हो और वह तुम्हारा बेटा है, जाकर उस से पूछ लो, वह अगर तुम्हारे साथ जाना चाहे तो चला जाये, मुझे इस पर कोई एतिराज़ नहीं। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की यह बात सुनकर ख़ुश हो गये कि चलो इन्होंने बहुत आसानी से इजाज़त दे दी। अब ये दोनों बाप और चचा इस ख़्याल में थे कि बेटे को जुदा हुए कई साल गुज़र चुके हैं, बाप और चचा को देख कर ख़ुश हो जायेगा और साथ चलने के लिये फ़ौरन तैयार हो जायेगा। उस वक़्त हज़रत ज़ैद बिन हारिसा रज़ियल्लाहु अ़न्हु हरम में थे। जब ये दोनों उनको लेने के लिये वहां पहुंचे और मुलाक़ात की तो उन्होंने ख़ुशी का इज़हार तो किया, लेकिन जब बाप ने यह कहा कि अब मेरे साथ घर चलो तो उन्होंने कहा नहीं अब्बा जान! मैं आपके साथ नहीं जाऊंगा। इसलिये कि एक तरफ़ तो अल्लाह तआ़ला ने मुझे इस्लाम की नेमत बख़्शी है, और आपको अभी तक इस्लाम की दौलत नसीब नहीं हुई, दूसरे यह कि यहां पर मुझे जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सोहबत नसीब है, इस सोहबत को छोड़ कर मैं नहीं जा सकता। बाप ने उनसे कहा: बेटा तुम इतने समय के बाद मुझ से मिले, इसके बावजूद तुमने मुझे इतना मुख़्तसर सा जवाब दे दिया कि तुम मेरे साथ नहीं जा सकते। उन्होंने कहा कि आपके जो हुक़ूक़ हैं, मैं उनको अदा करने के लिये तैयार हूं, लेकिन जनाब मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से मेरा जो ताल्लुक़ क़ायम हुआ है वह अब मरने जीने का ताल्लुक़ है। इसलिये मैं आपके साथ नहीं जाऊंगा।

जब हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उनका यह जवाब सुना तो आपने फ़रमाया कि चूंकि तुमने मेरे साथ यह ताल्लुक़ क़ायम किया है इसलिये मैं तुम्हें आज से अपना बेटा बनाता हूं। इस तरह हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने हज़रत ज़ैद बिन हारिसा रज़ियल्लाहु अन्हु को अपना लेपालक बना लिया, उसके बाद से हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम उनके साथ बेटे जैसा सुलूक फ़रमाने लगे तो लोगों ने भी उनको ज़ैद बिन मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) कह कर पुकारना शुरू कर दिया, जिस पर अल्लाह तआला की तरफ़ से बाक़ायदा आयत नाज़िल हुई कि:

"اُدْعُوْهُمْ لِاٰبَآءِهِمْ هُوَ اَقْسَطُ عِنْدَ اللّٰهِ" (الاحزاب:٥)

यानी तुम लोगों ने लेपालक का जो नसब बयान करना शुरू कर दिया है, यह दुरुस्त नहीं है, बल्कि जो बेटा जिस बाप का है उसको उसी हकीकी बाप की तरफ़ मन्सबू करो, किसी और की तरफ़ मन्सूब करना जायज़ नहीं। और दूसरी जगह यह आयत नाज़िल फ़रमाई:

"مَاكَانَ مُحَمَّدٌ اَبَا اَحَدٍ مِّنْ رِّجَالِكُمْ وَلٰكِنْ رَّسُوْلَ اللّٰهِ وَ خَاتَمَ النَّبِيّٖنَ"
(الاحزاب:٤٠)

यानी मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम तुम में से किसी मर्द के हकीकी बाप नहीं हैं, लेकिन वह अल्लाह के रसूल हैं और नबियों के सिलसिले को ख़त्म करने वाले हैं। इसलिये उनकी तरफ़ किसी बेटे को मन्सबू मत करो और आइन्दा के लिये यह उसूल मुक़र्रर फ़रमाया कि कोई लेपालक आइन्दा अपने मुंह बोले बाप की तरफ़ मन्सबू नहीं होगा, बल्कि हकीकी और असली बाप की तरफ़ मन्सूब होगा।

हज़रत ज़ैद बिना हारिसा रज़ियल्लाहु अन्हु के अलावा एक और सहाबी हज़रत सालिम मौला हुज़ैफ़ा रज़ियल्लाहु अन्हु थे, उनको भी मुंह बोला बेटा बनाया गया था। उनके बारे में भी हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने हुक्म फ़रमाया कि यह मुंह बोले बाप

की तरफ़ मन्सबू नहीं होंगे, और जब यह अपने मुंह बोले बाप के घर में दाख़िल हों तो पर्दे के साथ दाख़िल हों।

ये सब अहकाम इसलिये दिये गये कि शरीअ़त ने नसब की हिफ़ाज़त का बहुत एहतिमाम फ़रमाया है, कि किसी की निस्बत ग़लत न हो जाये। उसकी वजह से मुग़ालता पैदा न हो जाये, इसलिये जो शख़्स अपना नसब ग़लत बयान करे वह इस हदीस की वईद के अन्दर दाख़िल है, और वह झूठ के दो कपड़े पहनने वाले की तरह है।

अपने नाम के साथ "मौलाना" लिखना

इसी तरह अगर कोई आ़लिम नहीं है लेकिन अपने आपको आ़लिम ज़ाहिर करता है, जैसे आजकल लोग अपने नाम के साथ "मौलाना" लिख देते हैं, हालांकि उर्फ़ आम में लफ़्ज़ "मौलाना" या लफ़्ज़ "अ़ल्लामा" उन अफ़राद के लिये इस्तेमाल किये जाते हैं जो बाक़ायदा दीन का इल्म रखते हों। अब अगर एक शख़्स दीन का आ़लिम नहीं है, वह अगर इन अल्फ़ाज़ को इस्तेमाल करेगा तो उसकी वजह से मुग़ालता पैदा होगा और वह इस हदीस की वईद में दाख़िल होगा।

अपने नाम के साथ "प्रोफ़ेसर" लिखना

इसी तरह लफ़्ज़ प्रोफ़ेसर है, हमारे समाज में "प्रोफ़ेसर" एक ख़ास ओ़हदा है, उसकी ख़ास शर्तें हैं, उन शर्तों को जो शख़्स पूरी करेगा तो वह प्रोफ़ेसर कहलाएगा। लेकिन आजकल यह हाल हो गया है कि जो शख़्स किसी जगह का उस्ताद बन गया वह अपने नाम के साथ प्रोफ़ेसर लिख देता है, हालांकि इसके ज़रिये वह अपने अन्दर एक ऐसी सिफ़त ज़ाहिर कर रहा है जो उसके अन्दर मौजूद नहीं है, इसलिये यह ग़लत बयानी है और दूसरों को मुग़ालते में डालना है, और यह भी इस हदीस की वईद के अन्दर दाख़िल है और हराम है, और ना जायज़ है।

लफ़्ज़ "डॉक्टर" लिखना

इसी तरह एक शख़्स डॉक्टर नहीं है, लेकिन अपने नाम के साथ लफ़्ज़ "डॉक्टर" लिख दिया। बाज़ लोग ऐसे होते हैं कि उन्होंने चन्द दिन तक किसी डॉक्टर के पास कम्पाउन्डरी की, उसके नतीजे में कुछ दवाओं के नाम याद हो गये तो बस उसके बाद अपने नाम के साथ "डॉक्टर" लिखना शुरू कर दिया, और बाक़ायदा दवाख़ाना खोल कर बैठ गये और इलाज शुरू कर दिया, यह भी इस वईद के अन्दर दाख़िल है और यह निस्बत करना ना जायज़ है और हराम है। ये सब मुग़ालते इस हदीस के तहत दाख़िल हैं कि जो शख़्स ऐसी चीज़ ज़ाहिर करे जो हक़ीक़त में उसके अन्दर नहीं है तो वह झूठ के दो कपड़े पहनने वाले की तरह है।

जैसा अल्लाह ने बनाया है, वैसे ही रहो

और ये सब गुनाह ऐसे नहीं हैं कि इनको एक बार कर लिया, बस वह गुनाह ख़त्म हो गया, बल्कि चूंकि उस शख़्स ने उस निस्बत को अपने नाम का जुज़ और हिस्सा बना रखा है, जैसे लफ़्ज़ मौलाना या डॉक्टर या प्रोफ़ेसर वग़ैरह को अपने नाम का हिस्सा बना रखा है, तो वह गुनाह मुस्तक़िल और हमेशा का है, उसकी ज़िन्दगी के साथ साथ चला जा रहा है। इसलिये गुनाह को झूठ के कपड़े पहनने से तश्बीह दी। अल्लाह तआला हम सब को इस गुनाह से महफ़ूज़ फ़रमाये आमीन।

अरे भाई! अपनी कोई सिफ़त बयान करने में क्या रखा है, जैसा अल्लाह तआला ने पैदा किया है, वैसे ही रहो, और बिला वजह उस से आगे बढ़ने की कोशिश में न पड़ो। बल्कि जो सिफ़त अल्लाह तआला ने दी है, बस वही सिफ़त ज़ाहिर करो। इसलिये कि अल्लाह तआला ने अपनी हिक्मत से किसी को कोई सिफ़त दे दी, किसी को कोई सिफ़त दे दी, ज़िन्दगी का यह सारा कारोबार अल्लाह तआला की हिक्मत और मस्लिहत से चल रहा है, तुम इसके अन्दर दख़ल

अन्दाज़ी करके एक ग़लत बात ज़ाहिर करोगे तो यह बात अल्लाह तआला को ना पसन्द होगी।

मालदारी का इज़्हार

इसी तरह इसमें यह बात भी दाख़िल है कि एक आदमी ज़्यादा मालदार नहीं है, लेकिन लोगों को धोखा देने के लिये अपने आपको मालदार ज़ाहिर करता है और दिखावे के लिये ऐसे काम करता है ताकि लोग मुझे ज़्यादा दौलत मन्द समझ कर मेरी ज़्यादा इज़्ज़त करें। यही दिखावा है और यही नाम व नमूद है, यह बात भी इसी गुनाह में दाख़िल है।

अल्लाह की नेमत का इज़्हार करें

नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात पर क़ुरबान जायें, आपने ऐसी ऐसी बारीक तालीमात अ़ता फ़रमाई हैं जो इन्सान के ख़्याल में भी नहीं आ सकतीं। चुनांचे आपकी तालीमात पर ग़ौर करने से ज़ाहिर होता है कि दो हुक्म अलग अलग हैं। एक हुक्म तो यह है कि जो सिफ़त तुम्हारे अन्दर मौजूद नहीं है वह ज़ाहिर मत करो, ताकि उसकी वजह से दूसरे को धोखा न हो, लेकिन दूसरी तरफ़ आपने दूसरी तालीम देते हुए इर्शाद फ़रमायाः

"ان اللّٰہ یحب ان یریٰ اثر نعمتہ علیٰ عبدہ" (ترمذی شریف)

यानी अल्लाह तबारक व तआ़ला इस बात को पसन्द फ़रमाते हैं कि उन्होंने अपने बन्दे को जो नेमत अ़ता फ़रमाई है, उस नेमत के आसार उस बन्दे पर ज़ाहिर हों। जैसे एक आदमी को अल्लाह ने खाता पीता बनाया है और उसको माल व दौलत अ़ता फ़रमाई है, तो अल्लाह तआ़ला की इस नेमत का तक़ाज़ा यह है कि वह अपना रहन सहन ऐसा रखे जिस से अल्लाह तआ़ला की नेमत का इज़्हार हो। जैसे वह साफ़ सुथरे कपड़े पहने, साफ़ सुथरे घर में रहे, अगर वह शख़्स उस दौलत की नेमत के बावजूद फ़क़ीर और मिस्कीन बना फिरता है, मैला कुचैला और फटा पुराना लिबास पहना रहता है और

घर को गन्दा रखता है, तो ऐसी सूरत बनाना एक तरह से अल्लाह तआला की नेमत की नाशुक्री है। अरे भाई! जब अल्लाह तआला ने नेमत अता फ़रमाई है तो उसके आसार तुम्हारी ज़िन्दगी पर ज़ाहिर होने चाहियें, तुम्हारी सूरत देख कर कोई तुम्हें फ़कीर न समझ ले, और कोई ज़कात का मुस्तहिक़ सझम कर तुम्हें ज़कात न दे दे। इसलिये जैसे हक़ीक़त में तुम हो वैसे ही रहो, न तो अपने आपको ज़्यादा मालदार ज़ाहिर करो और न ही इतना कम ज़ाहिर करो जिस से अल्लाह तआला की नेमत की नाशुक्री हो।

आलिम के लिये इल्म का इज़हार करना

इल्म का मामला भी यही है कि अगर अल्लाह तआला ने इल्म अता फ़रमाया है तो अब तवाज़ो का मतलब यह नहीं है कि आदमी छुप कर एक कोने में बैठ जाये, इस ख़्याल से कि अगर मैं दूसरों के सामने अपने को आलिम ज़ाहिर करूंगा तो उसके नतीजे में लोग मुझे आलिम समझेंगे और यह तवाज़ो के ख़िलाफ़ है। बल्कि असल बात यह है कि जब अल्लाह तआला ने इल्म की नेमत अता फ़रमाई है तो उस नेमत का तक़ाज़ा यह है कि उस इल्म का इतना इज़हार करे कि जिस से आम लोगों को फ़ायदा पहुंचे। और इल्म की नेमत का शुक्रिया भी यही है कि बन्दों की ख़िदमत में उस इल्म को इस्तेमाल करे। वह इल्म अल्लाह तआला ने इसलिये नहीं दिया कि तुम तकब्बुर करके बैठ जाओ, वह इल्म इसलिये नहीं दिया कि उसके ज़रिये तुम लोगों पर अना रोब जमाओ, बल्कि वह इल्म इसलिये दिया है कि उसके ज़रिये तुम लोगों की ख़िदमत करो। इसलिये दोनों तरफ़ तवाज़ुन (सन्तुलन) बरक़रार रखते हुए आदमी को चलना पड़ता है। यह सब दीन का हिस्सा है। अल्लाह तआला हम सब को इस पर अमल करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

واٰخر دعوانا ان الحمد للہ رب العالمین

बुरी हुकूमत की निशानियां

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

"حدثنا سعيد بن سمعان قال: سمعت ابا هريرة رضى الله تعالىٰ عنه يتعوذ من امارة الصبيان والسفهآء، فقال سعيد بن سمعان: فاخبرنى ابن حسنة الجهنى انه قال لابى هريرة ماأية ذالك؟ قال: ان يقطع الارحام ويطاع المغوى و يعصى المرشد" (الادب المفرد)

बुरे वक़्त से पनाह मांगना

हज़रत सईद बिन समआन रह्मतुल्लाहि अलैहि जो ताबिईन में से हैं, वह फ़रमाते हैं कि मैंने हज़रत अबू हुरैरह रज़ि. को सुना कि वह बच्चों और बेवक़ूफ़ों के हाकिम बनने से पनाह मांग रहे थे।

इशारा इस बात की तरफ़ फ़रमा दिया कि वह बहुत बुरा वक़्त होगा जब नई उम्र वालों और ना तजुर्बाकार और बेवक़ूफ़ लोग अमीर और हाकिम बनाये जायेंगे। इसलिये आप पनाह मांगते थे कि या अल्लाह! ऐसे बुरे वक़्त से मुझे बचाइए, और ऐसा वक़्त न आये कि मुझे ऐसे हाकिमों से वास्ता पड़े।

बुरे वक़्त की तीन निशानियां

हज़रत सईद बिन समआन फ़रमाते हैं कि जब अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु ने यह पनाह मांगी तो उनसे पूछा गया कि ऐसे बुरे वक़्त की निशानी क्या होगी? यानी किस तरह यह पहचाना जायेगा कि यह बेवक़ूफ़ लोगों की हुक्मरानी दौर है? जवाब में हज़रत अबू

हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु ने उसकी निशानियां बयान करते हुए फ़रमाया कि:

"ان يقطع الارحام و يطاع المغوی و يعصی المرشد"

यानी उस दौर की तीन निशानियां हैं, पहली निशानी यह है कि उस दौर में लोग रिश्तेदारों के हुकूक़ ज़ाया करेंगे और रिश्ते तोड़े जाएंगे। दूसरी निशानी यह है कि गुमराह करने वालों की इताअ़त की जायेगी, लोग उनके पीछे चलेंगे और उनकी इत्तिबा करेंगे। तीसरी निशानी यह है कि हिदायत और रहनुमाई करने वाले लोगों की नाफ़रमानी की जायेगी। जब ये तीन निशानियां किसी दौर में पाई जायें तो इस से पता चल जायेगा कि यह बेवकूफ़ों की और अहमकों और नई उम्र वालों की हुक्मरानी है।

क़ियामत की एक निशानी

हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने क़ियामत की जो निशानियां बयान फ़रमाई हैं, उनमें से एक निशानी यह बयान फ़रमाई है कि:

"اَنْ تَرَى الْحُفَاةَ الْعُرَاةَ الْعَالَةَ رِعَاءَ الشَّاةِ يَتَطَاوَلُوْنَ فِی الْبُنْيَانِ"

क़ियामत की एक निशानी यह है कि नंगे पांव वाले, नंगे बदन वाले, दूसरों के मोहताज, बकरियों के चरवाहे ऊंची ऊंची इमारतों में एक दूसरे पर फ़ख़्र करेंगे।

यानी वे लोग जिनका न तो माज़ी (गुज़रा हुआ ज़माना) अच्छा है और न ही जिनके आ़दात व अख़्लाक़ शरीफ़ाना हैं, और मामूली क़िस्म के लोग हैं, जिनकी तर्बियत भी सही तरीक़े से नहीं हुई, जिनके पास दीन भी पूरा नहीं है, ऐसे लोग हाकिम बन जायेंगे, और बड़ी ऊंची इमारतों में एक दूसरे पर फ़ख़्र करेंगे, यह क़ियामत की निशानियों में से एक निशानी है जो नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बयान फ़रमाई।

जैसे आमाल वैसे हाकिम

बहर हाल! हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु के इस इर्शाद से यह मालूम हुआ कि आदमी को ऐसी लोगों की हुकूमतों से अल्लाह की पनाह मांगनी चाहिये जिनके अन्दर हुकूमत के कारोबार चलाने की अहलियत न हो। अगर कोई शख़्स ऐसी हुकूमत में मुब्तला हो जाये जैसे हम और आप इस वक़्त मुब्तला हैं, तो ऐसे मौक़े पर हमें क्या करना चाहिये?

ऐसे मौक़े के लिये हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने यह इर्शाद फ़रमाया कि याद रखो! जब मुसलमानों पर ख़राब हाकिम मुसल्लत होते हैं, तो यह सब तुम्हारे ही आमाल का नतीजा होता है, चुनांचे एक रिवायत में ये अल्फ़ाज़ आये हैं:

"كَمَا تَكُوْنُوْنَ يُؤَمَّرُ عَلَيْكُمْ"

यानी तुम जैसे होगो वैसे ही हाकिम तुम पर मुसल्लत किये जायेंगे। और एक रिवायत में ये अल्फ़ाज़ आए हैं:

"انما اعمالكم عُمَّالكم"

यानी तुम्हारे आमाल ही आख़िरकार उम्माल और हाकिमों की शक्ल में तुम्हारे सामने आते हैं। इसलिये अगर तुम्हारे आमाल ख़राब होंगे तो फिर ख़राब हाकिम तुम्हारे ऊपर मुसल्लत किये जायेंगे। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने कई हदीसों में यह मज़्मून बयान फ़रमाया है।

उस वक़्त हमें क्या करना चाहिए

एक हदीस शरीफ़ में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने यह भी फ़रमाया कि जब तुम्हारे ऊपर ग़लत हुकूमत मुसल्लत हो जाये तो हुकूमत को बुरा भला कहने और उसको गाली देने का तरीक़ा छोड़ दो। यानी यह मत कहो कि हमारे हाकिम ऐसे अय्यार और ऐसे मक्कार हैं वग़ैरह, और उनको गाली मत दो बल्कि अल्लाह तआला की तरफ़ रुजू करो कि ऐ अल्लाह! ये हाकिम जो हम पर

मुसल्लत हैं, ये हमारी बद आमालियों की वजह से हम पर मुसल्लत हैं। ऐ अल्लाह! अपनी रहमत से हमारी इन बद आमालियों को माफ़ फ़रमा दीजिये। यह तरीक़ा हदीस में नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बयान फ़रमाया है। इसलिये कि सुबह व शाम हाकिमों को गालियां देने से कुछ हासिल न होगा, इसके बजाए अल्लाह तआ़ला की तरफ़ रुजू करो और अपने आमाल की इस्लाह की फ़िक्र करो।

हमारा तरीक़ा क्या है?

अब हम ज़रा अपना जायज़ा लेकर देखें कि हम में से हर शख़्स सुबह व शाम यह रोना रो रहा है कि हम पर ग़लत क़िस्म के हाकिम मुसल्लत हैं और ना अहल हाकिम मुसल्लत हैं। चुनांचे जब कभी चार आदमी कहीं बैठ कर बात करेंगे और हुकूमत का ज़िक्र आयेगा तो उस हुकूमत पर लानत व मलामत के दो चार जुम्ले ज़रूर निकाल देंगे। यह काम तो हम सब करते हैं, लेकिन हम ज़रा अपने गिरेबान में मुंह डाल कर देखें कि क्या कभी वाक़ई सच्चे दिल से अल्लाह तआ़ला की तरफ़ रुजू करके यह कहा कि या अल्लाह! हम पर यह बला और मुसीबत मुसल्लत है, और हमारी बद आमालियों ही की वजह से है, ऐ अल्लाह! हमारी इन बद आमालियों को माफ़ फ़रमा दीजिये। और ऐ अल्लाह! इनकी जगह हमें नेक हुकूमत करने वाले अ़ता फ़रमा दीजिये। अब बताइये कि हम में कितने अफ़राद यह दुआ़ करते हैं, मगर तन्क़ीद और बुरा भला कहना तो दिन रात हो रहा है, कोई मज्लिस इस से ख़ाली नहीं, लेकिन अल्लाह तआ़ला की तरफ़ रुजू नहीं करते। देखिये! दिन में पांच बार हम नमाज़ पढ़ते हैं और नमाज़ के बाद अल्लाह तआ़ला से दुआ़एं तो करते ही हैं, लेकिन क्या कभी नमाज़ों के बाद यह दुआ़ भी की कि ऐ अल्लाह! यह हमारे आमाल की नहूसत जो हम पर मुसल्लत है, इसको उठा लीजिये। अगर हम नमाज़ों के बाद यह दुआ़ नहीं करते तो इसका मतलब यह है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने तरीक़ा हमें

बताया था उस पर अमल नहीं हो रहा है। इसलिये अल्लाह तआला की पनाह मांगो, अल्लाह तआला की तरफ़ रुजू करो, फिर उसके साथ साथ अपने हालात की दुरुस्तगी की फ़िक्र करो, इन्शा अल्लाह अल्लाह तआला फ़ज़्ल फ़रमा देंगे।

अल्लाह तआला की तरफ़ रुजू करो

एक और हदीस में जनाब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमाया कि ये जितने बादशाह, हाकिम और इक़्तिदार वाले हैं, इनके दिल अल्लाह तआला ही के क़ब्ज़े में हैं, अगर तुम अल्लाह तआला को राज़ी कर लो, और उसकी तरफ़ रुजू कर लो तो अल्लाह तआला उन्हीं हाकिमों के दिल बदल देंगे, और उन्हीं के दिल में ख़ैर पैदा फ़रमा देंगे। और अगर उनके लिये ख़ैर मुक़द्दर नहीं है तो अल्लाह तआला उनके बदले में अच्छे हाकिम अता फ़रमा देंगे। इसलिये सिर्फ़ गालियां देने से और सिर्फ़ तन्क़ीद करने से कुछ हासिल नहीं होता, बल्कि असल करने का काम यह है कि अल्लाह तआला को राज़ी करने के लिये अल्लाह तआला की तरफ़ रुजू करो। बहुत कम अल्लाह के बन्दे ऐसे हैं जो इन हालात में दर्द महसूस करके अल्लाह तआला की बारगाह में मुनाजात करते हैं और रोते हैं, और अल्लाह के सामने गिड़गिड़ा कर दुआ करते हैं कि ऐ अल्लाह! इस बला से हमें नजात अता फ़रमा दीजिये। अगर हम यह काम शुरू कर दें और अपने आमाल को दुरुस्त करने की फ़िक्र कर लें तो अल्लाह तआला ज़रूर करम फ़रमा कर सूरते हाल को बदल देंगे।

बहर हाल! इस हदीस में हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु ने ऐसे हालात में करने का एक काम यह बता दिया कि अल्लाह तआला की तरफ़ रुजू करो और अल्लाह तआला से पनाह मांगो।

बुरी हुकूमत की पहली और दूसरी निशानी

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु ने ख़राब और बुरे हाकिमों

की हुकूमत की एक निशानी यह बयान फ़रमाई है कि उस ज़माने में रिश्तों का तोड़ना आम हो जायेगा, यानी रिश्तेदारों के हुकूक़ ज़ाया किये जायेंगे। दूसरी निशानी यह बयान फ़रमाई कि गुमराह करने वाले आदमी की पैरवी की जायेगी, यानी जो शख़्स जितना बड़ा गुमराह होगा, उसके पीछे उसके मानने वाले भी उतने ही ज़्यादा होंगे। चुनांचे आज अपनी आंखों से यह देख लें कि आजके दौर पर यह बात किस तरह सही सही सादिक़ आ रही है, कि आज जो लोग दूसरों को गुमराह करने वाले हैं और जिनके पास क़ुरआन और सुन्नत का सही इल्म नहीं है, बल्कि वे लोग या तो धोखेबाज़ हैं या जाहिल हैं, ऐसे लोग ज़रा सा सब्ज़ बाज़ अ़वाम को दिखाते हैं, वे अ़वाम उनके पीछे चल पड़ते हैं, फिर वे अ़वाम को जिस रास्ते पर चाहते हैं ले जाते हैं, और उनको गुमराह कर देते हैं। जब इन्सान की आंखों पर पट्टी पड़ जाती है तो फिर वह बड़े से बड़े गुमराह को अपना मुक़्तदा और पेशवा बना लेता है, और वह यह नहीं देखता कि क़ुरआन व हदीस की रू से उसके आमाल व अख़्लाक़ कैसे हैं। अल्लाह तआ़ला हमें इस से महफ़ूज़ रखे, आमीन।

आग़ा ख़ां का महल

एक बार मेरा सूइट्ज़र लैंड जाना हुआ, वहां पर एक रास्ते से गुज़रते हुए एक साहिब ने एक बहुत बड़े आ़लीशान महल की तरफ़ इशारा करते हुए बताया कि यह आग़ा ख़ां का महल है। वह महल क्या था बल्कि वह झील के किनारे पर वाक़े एक आ़लीशान दुनिया की जन्नत मालूम हो रही थी। क्योंकि उन मुल्कों में आ़म तौर पर लोगों के मकान छोटे छोटे होते हैं, वहां बड़े मकानों और महलों का तसव्वुर नहीं होता। वह महल दो तीन किलो मीटर में फैला हुआ था, और उसमें बाग़ात और नहरें और आ़लीशान इमारतें थीं, और नौकर चाकर का एक लश्कर था। यह बात तो मश्हूर है कि फ़ुह्हाशी और अ़य्याशी के हर काम उनके यहां जायज़ होते हैं, और शराब पीने का दौर भी चलता है।

आग़ा ख़ानियों से एक सवाल

तो उस वक़्त मेरी ज़बान पर यह बात आ गयी और मैंने अपने मेज़बानों से कहा कि लोग ख़ुद अपनी आंखों से देखते हैं कि ये लोग जो पेशवा और रहनुमा बने हुए हैं, कितनी अय्याशियों में लगे हुए हैं, और वे काम जिसको एक मामूली दर्जे का मुसलमान भी हराम और ना जायज़ समझता है, ऐसे कामों में यह पेशवा और रहनुमा मश्गूल हैं, लेकिन उनके मानने वाले और पैरवी करने वाले फिर भी उनको अपना मुक़्तदा और पेशवा मानते हैं? मेरी ये बातें सुनकर मेज़बानों में से एक ने कहा कि इत्तिफ़ाक़ की बात है कि जो बातें आपने उनके बारे में कहीं बिल्कुल वही बातें मैंने आग़ा ख़ां के एक मोतक़िद के सामने कहीं कि तुम किसी नेक और मुत्तक़ी आदमी को पेशवा बनाते तो समझ में आने वाली बात थी, लेकिन तुमने एक ऐसे आदमी को अपना पेशवा और मुक़्तदा बना रखा है जिसको तुम अपनी आंखों से देखते हो कि वह अय्याशी के अन्दर मुब्तला है और इतने बड़े बड़े आलीशान महल बना रखे हैं, इन सब चीज़ों को देखने के बावजूद फिर भी तुम उसको सोने में तौलते हो और उसको अपना इमाम मानते हो?

उसके मोतक़िद का जवाब

तो उस आग़ा ख़ां के मोतक़िद ने जवाब दिया कि बात असल में यह है कि यह तो हमारे इमाम की बड़ी क़ुरबानी है कि वह दुनिया के इन महलों पर राज़ी हो गया, वर्ना हमारे इमाम का असल मक़ाम तो "जन्नत" था, लेकिन वह हमारी हिदायत की ख़ातिर जन्नत की उन नेमतों को क़ुरबान करके दुनिया में आया और दुनिया की लज़्ज़तें उसके आगे बे हक़ीक़त हैं, वर्ना वह तो इस से ज़्यादा बड़ी लज़्ज़तों और नेमतों का हक़दार था। यह वही बात है जिसकी तरफ़ इस हदीस के अन्दर इन अल्फ़ाज़ में इशारा फ़रमाया कि:

"اَنْ يُّطَاعَ الْمُغْوِىٰ"

यानी गुमराह करने वालों की इताअ़त की जायेगी। खुली आंखों से नज़र आ रहा है कि एक शख़्स गुमराही के रास्ते पर है और गुनाह व बुरे कामों में मुब्तला है, फिर उसको यह कह रहा है कि यह मेरा इमाम है, यह मेरा मुक़्तदा और पेशवा है।

गुमराह करने वालों की इताअ़त की जा रही है

इसी तरह आजकल बहुत से जाहिल पीरों की बादशाहतें क़ायम हैं, उनको अगर आप कभी जाकर देखें तो आपकी अ़क़्ल हैरान हो जायेगी। वहां पर उन जाहिल पीरों की गद्दियां सजी हुई हैं, दरबार लगे हुए हैं, जिनमें नशे वाली चीज़ें घोट कर भी पी जा रही हैं, और पिलाई जा रही हैं। बुरे से बुरे काम वहां किये जा रहे हैं, इसके बावजूद उसका मोतक़िद और उसको मानने वाला यह कहता है कि यह मेरा पीर इस ज़मीन पर ख़ुदा का नुमाईन्दा है। यह वही है जिसको हदीस में बयान किया गया है कि जो गुमराह करने वाला है, लोग उसके पीछे चल पड़े हैं, और उसके पीछे चलने की वजह यह है कि उसके हाथ कुछ करतब आ गये हैं। जैसे किसी पर क़ब्ज़ा किया तो उसका दिल हर्कत करने लगा, किसी दूसरे पर तसर्रुफ़ किया तो उसको कोई अ़जीब व ग़रीब ख़्वाब आ गया, किसी पर तसर्रुफ़ किया तो मस्जिदे हराम का नक़्शा उसके सामने आ गया, किसी पर तसर्रुफ़ करके उसको ख़ाना–ए–काबा में नमाज़ पढ़ा दी। इन तसर्रुफ़ात के नतीजे में लोग यह समझने लगे कि यह अल्लाह का कोई ख़ास नुमाईन्दा ज़मीन पर उतरा है, इसलिये अब यह जो कुछ कहे उसकी पैरवी और इत्तिबा करो, चाहे वह काम हलाल हो या हराम हो, जायज हो या ना जायज़ हो, शरीअ़त के मुवाफ़िक़ हो या शरीअ़त के ख़िलाफ़ हो।

बुरी हुकूमत की तीसरी निशानी

तीसरी निशानी यह है कि कोई अल्लाह का नेक बन्दा जो सुन्नत की इत्तिबा करने वाला हो, और शरीअ़त के मुताबिक़ अपनी

ज़िन्दगी गुज़ारने की फ़िक्र में हो, सही इल्म रखता हो। उसके पास अगर कोई शख़्स अपनी इस्लाह के लिये आयेगा तो वह उसको मशक़्क़त के काम बतायेगा और फ़राइज़ के करने का हुक्म देगा कि नमाज़ें पढ़ो, फ़लां काम करो, फ़लां काम करो और फ़लां काम से बचो, फ़लां गुनाह से बचो, आंखों की हिफ़ाज़त करो, ज़बान की हिफ़ाज़त करो और इन ताम गुनाहों से अपने आपको बचाओ। अब वह सही काम बता रहा है और जिसके करने में थोड़ी सी मशक़्क़त है तो लोग ऐसे शख़्स के पास आने के लिये तैयार नहीं होंगे, क्योंकि यहां आयेंगे तो मशक़्क़त उठानी पड़ेगी।

बहर हाल! हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु ने जो बात फ़रमाई थी कि जो गुमराह करने वाला है, उसकी तो ख़ूब इताअ़त की जायेगी, और जो शख़्स हिदायत का रास्ता बता रहा है उसकी नाफ़रमानी की जायेगी, और वह अगर कहे कि फ़लां काम ना जायज़ और हराम है, उस से बचो, तो जवाब में वह यह कहेगा कि आप कहां से हराम कहने वाले आ गये और यह चीज़ क्यों हराम है? इसको हराम कहने की क्या वजह है? अब उस से दलील और हिक्मत का मुतालबा किया जा रहा है कि पहले आप यह बतायें कि इस हुक्म में और उस हुक्म में क्या फ़र्क़ है? जब तक तुम यह नहीं बताओगे हम तुम्हारी बात नहीं मानेंगे। और फिर उस पर ताना व और उसकी बुराई की जाती है कि इन मुल्लाओं ने हमारे दीन को मुश्किल और तंग कर दिया, इसी वजह से ज़िन्दगी गुज़ारनी मुश्किल हो गई। ये सब फ़ितने हैं जो आज हमारे दौर में मौजूद हैं।

फ़ितने से बचने का तरीक़ा

इस फ़ितने से बचने का सही रास्ता यह है कि यह देखो कि जिस शख़्स के पास तुम जा रहे हो और जिस शख़्स को तुम अपना मुक़्तदा और पेशवा बना रहे हो वह सुन्नत की कितनी इत्तिबा करता है? यह मत देखो कि उसके पास शोबदे और करतब कितने हैं?

इसलिये कि उन शोबदों का दीन से कोई ताल्लुक़ नहीं।

एक पीर साहिब का मकूला

एक पीर साहिब का लिखा हुआ एक किताबचा देखा, उसमें यह लिखा था कि "जो शैख़ अपने मुरीदों को यहां रहते हुए मस्जिदे हराम में नमाज़ न पढ़ा सके वह शैख़ बनने का अहल नहीं" गोया कि शैख़ बनने की दलील यह है कि जब उसके पास कोई शख़्स मुरीद बनने के लिये आये तो वह उसके ऊपर ऐसा तसर्रुफ़ करे कि कराची में बैठे बैठे उसको मस्जिदे हराम नज़र आये और वहां पर उसको नमाज़ पढ़वाए, वह असल में शैख़ बनाने की क़ाबिल है। और जिस शख़्स को यह करतब न आता हो वह शैख़ बनाने का अहल नहीं। कोई उनसे पूछे कि यह बात क्या क़ुरआन व हदीस में कहीं मौजूद है, इसका कहीं सबूत है? कहीं भी इसका सबूत नहीं।

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का तरीक़ा

बल्कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम मक्का मुकर्रमा से हिजरत करके मदीना मुनव्वरा तशरीफ़ ले गये और मदीना मुनव्वरा में रहते हुए बैतुल्लाह की याद में तड़पते रहे, और हज़रत बिलाल रज़ियल्लाहु अन्हु शदीद बुख़ार के आलम में मक्का मुकर्रमा और मस्जिदे हराम को याद करके रोते रहे और यह दुआ करते रहे कि या अल्लाह! वह वक़्त कब आयेगा जब मक्का मुकर्रमा के पहाड़ मेरी आंखों के सामने होंगे, मगर कभी भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उनसे यह नहीं फ़रमाया कि आओ मैं तुम्हें मस्जिदे हराम में नमाज़ पढ़वा दूं। लेकिन आजके पीर साहिब यह कहते हैं कि जो शैख़ तुम्हें मस्जिदे हराम में नमाज़ न पढ़वा दे, वह शैख़ बनाये जाने का अहल ही नहीं। चूंकि लोग ज़ाहिरी चीज़ों के पीछे चलने के आदी हैं, इसलिये जब किसी शख़्स के अन्दर ये ज़ाहिरी चीज़ें देखते हैं तो उसके पीछे चल पड़ते हैं, हालांकि नेकी, इबादत और पाकीज़गी व तक़वे से इसका कोई ताल्लुक़ नहीं, बल्कि ये

तसर्रुफ़ात हैं जिसके लिये मुसलमान होना भी ज़रूरी नहीं, गैर मुस्लिम भी ये तसर्रुफ़ात करते हैं। लेकिन आजकल लोगों ने इन्हीं तसर्रुफ़ात को नेकी और परहेज़गारी के लिये मेयार बना लिया है।

बहत्तर फ़िर्क़ों में सही फ़िर्क़ा कौन सा होगा?

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने एक हदीस में हमारे लिये एक मेयार बयान फ़रमा दिया है कि मेरी उम्मत में सत्तर से ज़्यादा फ़िर्क़े हो जायेंगे, कोई फ़िर्क़ा किसी चीज़ की तरफ़ बुलाऐगा, दूसरा फ़िर्क़ा दूसरी चीज़ की तरफ़ बुलाएगा। एक फ़िर्क़ा कहेगा कि यह बात हक़ है, दूसरा फ़िर्क़ा कहेगा कि यह बात हक़ है। और ये फ़िर्क़े लोगों को जहन्नम की तरफ़ दावत देंगे। ये सब रास्ते हलाकत की तरफ़ ले जाने वाले हैं, सिर्फ़ एक रास्ता नजात दिलाने वाला है, यह वह रास्ता है जिस पर मैं हूं और मेरे सहाबा हैं, बस इस रास्ते को मज़बूती से थाम लो।

ख़ुलासा

इसलिये जब किसी को मुक़्तदा और पेशवा बनाने का इरादा करो तो पहले यह देखो कि इत्तिबा-ए-सुन्नत उसके अन्दर किस क़द्र है? और क़ुरआन व हदीस पर किस दर्जे में अमल करता है? और इस मेयार पर वह पूरा उतरता है या नहीं? अगर वह इस मेयार पर पूरा उतरता है तो बेशक उसकी इत्तिबा करो, और अगर पूरा नहीं उतरता तो वह पेशवा बनाने के लायक़ नहीं, इसलिये उस से दूर रहो, चाहे कितने ही करतब और तमाशे दिखा दे, और वह तुम्हारे ऊपर चाहे कोई तसर्रुफ़ कर दे, लेकिन तुम उसके पीछे चलने से परहेज़ करो। अल्लाह तआला हम सब को हिदायत का रास्ता अता फ़रमाये और गुमराही से हिफ़ाज़त फ़रमाये, आमीन।

واخردعوانا ان الحمد لله رب العالمين

ईसार व कुर्बानी की फ़ज़ीलत

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا، اَمَّا بَعْدُ:

عن انس رضی اللّٰہ تعالیٰ عنه ان المهاجرين قالوا: يا رسول اللّٰه! ذهبت الانصار بالاجر كله، قال: لا، ما دعوتم اللّٰه واثنيتم عليه" (ابوداؤد شریف)

अन्सार सहाबा ने सारा अज्र व सवाब ले लिया

हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि जब हिजरत करने वाले मक्का मुकर्रमा से मदीना हिजरत करके आये तो उन्होंने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से अ़र्ज़ किया: या रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम! ऐसा मालूम होता है कि जो मदीना मुनव्वरा के अन्सार सहाबा हैं, सारा अज्र व सवाब वे ले गये और हमारे लिये तो कुछ बचा ही नहीं।

जवाब में आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया: नहीं, जब तक तुम उनके लिये दुआ़ करते रहोगे और उनका शुक्रिया अदा करते रहोगे, उस वक़्त तक तुम सवाब से महरूम नहीं रहोगे।

जब मुहाजिर सहाबा मक्का मुकर्रमा से आकर मदीना तैयबा में आबाद होना शुरू हुए तो उस वक़्त आबादकारी का बहुत बड़ा मसला था, और लोगों का एक सैलाब मक्का मुकर्रमा से दमीना मुनव्वरा मुन्तक़िल हो रहा था। और उस वक़्त मदीना मुनव्वरा एक छोटी सी बस्ती थी। अब आबाद होने वालों को घर की ज़रूरत थी, उनके लिए रोज़गार चाहिये था, और उनके लिए खाने पीने का सामान और ज़िन्दगी की दूसरी ज़रूरतें चाहिए थीं। ये हज़रात जब मदीना

मुनव्वरा आये तो ख़ाली हाथ आये थे, और मक्का मुकर्रमा में उनकी ज़मीनें थीं, जायदादें थीं, सब कुछ था लेकिन वह सब मक्का मुकर्रमा में छोड़ कर आये थे।

अन्सार का ईसार व कुर्बानी

अल्लाह तआला ने मदीना मुनव्वरा के अन्सार सहाबा के दिल में ऐसा ईसार (अपनी ज़रूरत पर दूसरे की ज़रूरत को तरजीह देना) डाला और उन्होंने ईसार की वह मिसाल क़ायम की कि तारीख़ में उसकी नज़ीर मिलनी मुश्किल है। अन्सारी सहाबा ने अपनी दुनिया की सारी दौलत मुहाजिरीन के लिये खोल दी। यह सब ख़ुद अपनी तरफ़ से किया, हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उनको हुक्म नहीं दिया था, बल्कि अन्सारी सहाबा ने कहा कि जो भी मुहाजिर सहाबी आ रहे हैं, उनके लिए हमारे घर के दरवाज़े खुले हैं, खाने पीने का इन्तिज़ाम हम करेंगे। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उनका जज़्बा देख कर मुहाजिरीन और अन्सार के दरमियान "मुवाख़ात" (भाई चारा) क़ायम फ़रमा दिया। यानी हर एक मुहाजिर को एक अन्सारी का भाई बना दिया, अब वह उसके साथ रहने लगा, उसी के साथ खाने पीने लगा, यहां तक कि बाज़ अन्सारी सहाबा ने फ़रमाया कि मेरी दो बीवियां हैं मैं इसके लिए भी तैयार हूं कि मैं अपनी एक बीवी से अलग हो जाऊं, उसको तलाक़ देकर अलग कर दूं, फिर तुम्हारे साथ उसका निकाह कर दूं, अगरचे ऐसा वाक़िआ पेश नहीं आया लेकिन इसके लिए भी रज़ामन्दी ज़ाहिर की।

अन्सार और मुहाजिरीन की खेती बाड़ी में साझेदारी

यहां तक कि एक बार अन्सारी सहाबा हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में आये और अर्ज़ किया कि या रसूलल्लाह! हमारे जो मुहाजिर भाई हैं, वे भी हमारे साथ रहते हैं, अगरचे हम उनको मेहमान के तौर पर रखे हुए हैं, लेकिन उनके दिल में हर वक़्त यह ख़्याल रहता है कि हम तो मेहमान हैं और यहां

उनका बाकायदा रोज़गार का इन्तिज़ाम भी नहीं है। इसलिये हमने आपस में यह तय किया है कि मदीना मुनव्वरा में हमारी जितनी जायदादें हैं, हम आधी आधी आपस में तक़सीम कर लें, यानी आधी जायदाद मुहाजिर भाई को दे दें और आधी जायदाद हम रख लें, तो इस पर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मुहाजिर सहाबा से मश्विरा किया कि अन्सारी सहाबा यह पेशकश कर रहे हैं, आप हज़रात का क्या ख़्याल है? इस पर मुहाजिरीन सहाबा ने फ़रमाया कि नहीं, हमें यह पसन्द नहीं कि हम उनकी आधी ज़मीनें ले लें। उसके बाद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह फ़ैसला फ़रमाया कि अच्छा तुम अन्सारी सहाबा की ज़मीनों पर काम करो और जो फल और पैदावार हो वह तुम दोनों में तक़सीम हो जाया करे। चुनांचे मुहाजिर सहाबा अन्सारी सहाबा की ज़मीनों पर काम करते थे और जो फल और पैदावार होती वह आपस में तक़सीम कर लिया करते थे, इस तरह मुहाजिरीन ने अपना वक़्त गुज़ारा।

सहाबा के जज़्बात देखिये

हज़राते अन्सार ने ईसार (अपनी ज़रूरत पर दूसरे की ज़रूरत को तरजीह देने) की वह मिसालें पेश कीं जिनकी नज़ीर मिलनी मुश्किल है। बहर हाल! मुहाजिर सहाबा-ए-किराम ने जब यह देखा कि सारे सवाब वाले काम तो अन्सारी सहाबा कर रहे हैं, और सारा सवाब तो वे ले गये तो एक बार ये हज़रात हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुए और अ़र्ज़ किया कि या रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम! मदीना मुनव्वरा के जो अन्सारी सहाबा हैं, वे सारा सवाब ले गये, हमारे लिये तो कुछ बचा ही नहीं। अब आप यह देखिये कि अन्सारी सहाबा के जज़्बात क्या हैं और मुहाजिरीन सहाबा के जज़्बात क्या हैं। एक तरफ़ अन्सारी सहाबा मुहाजिरीन के लिये अपनी आंखें बिछाए हुए हैं और दूसरी तरफ़ मुहाजिरीन सहाबा को यह ख़्याल हो रहा है कि सारा अज्र व सवाब

तो अन्सारी सहाबा के पास चला गया, अब हमारे अज्र व सवाब का क्या होगा?

तुम्हें भी यह सवाब मिल सकता है

जवाब में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

"لا، مادعوتم الله لهم واثنيتم لهم"

यानी तुम यह जो कह रहे हो कि सारा सवाब अन्सारी सहाबा ले गये, तो एक बात सुन लो! वह यह कि यह मत समझो कि तुम्हें सवाब नहीं मिला, बल्कि यह सवाब तुम्हें भी मिल सकता है। जब तक तुम उनके हक़ में दुआएं करते रहोगे और उनका शुक्रिया अदा करते रहोगे, उस वक़्त तक तुम सवाब से महरूम नहीं रहोगे, और इस अमल के नतीजे में अल्लाह तआला उनके सवाब में तुमको भी शरीक कर लेंगे।

यह दुनिया चन्द दिन की है

वहां यह नहीं था कि मुहाजिरीन अपने लिये "अन्जुमन तहफ़्फ़ुज़े हुक़ूके मुहाजिरीन" बना लें और अन्सार अपने लिये "अन्जुमन तहफ़्फ़ुज़े हुक़ूके अन्सार" बना लें, और फिर दोनों अन्जुमनें अपने अपने हुक़ूक़ के हासिल करने के लिये एक दूसरे से लड़ें कि उन्होंने हमारे हुक़ूक़ ज़ाया कर दिए, बल्कि वहां तो उल्टा मामला हो रहा है और हर एक की यह ख़्वाहिश है कि मैं अपने भाई के साथ कोई भलाई करूं। ऐसा क्यों था? यह इसलिये था कि सब के सामने यह है कि मरने के बाद हमारे साथ क्या हालात पेश आने वाले हैं। दुनिया तो चन्द दिन की है, किसी तरह गुज़र जायेगी, अच्छी गुज़र जाये या थोड़ी तंगी के साथ गुज़र जाये, लेकिन गुज़र जायेगी। लेकिन असल बात यह है कि मरने के बाद जो हालात पेश आयेंगे, उस वक़्त हमारे साथ क्या मामला होगा? इस फ़िक्र का नतीजा यह था कि हर एक के दिल में दूसरे भाई के लिये ईसार (अपनी ज़रूरत

पर दूसरे की ज़रूरत को तरजीह देना) था।

आख़िरत पर नज़र हो तो

जब इन्सान की नज़र आख़िरत पर नहीं होती, दिल में अल्लाह तआला का ख़ौफ़ नहीं होता, अल्लाह तआला के सामने खड़े होने का एहसास नहीं होता, तो फिर आदमी के पेशे नज़र सिर्फ़ दुनिया ही दुनिया होती है, और फिर हर वक़्त यह फ़िक्र रहती है कि दूसरे शख़्स ने मुझ से ज़्यादा दुनिया हासिल कर ली, मेरे पास कम रह गयी, तो आदमी फिर उस वक़्त इस उधेड़ बुन में रहता है कि मैं किसी तरह ज़्यादा कमा लूं और ज़्यादा हासिल कर लूं। लेकिन अगर आदमी के दिल में यह फ़िक्र हो कि आख़िरत में मेरे साथ क्या मामला होने वाला है, और साथ में यह ख़्याल हो कि हक़ीक़ी राहत और ख़ुशी रुपये में इज़ाफ़ा करने और बैंक बेलेंस ज़्यादा करने से हासिल नहीं होगी, बल्कि हक़ीक़ी ख़ुशी यह है कि इन्सान के दिल में सुकून हो, इन्सान का ज़मीर मुत्मइन हो, उसको यह ख़ौफ़ न हो कि जब मैं अल्लाह तआला के सामने जाऊंगा तो अपने इस अ़मल का क्या जवाब दूंगा, और हक़ीक़ी ख़ुशी यह है कि आदमी अपने मुसलमान भाई के चेहरे पर मुस्कुराहट देख ले, उसका कोई दुख दूर कर दे, उसकी कोई परेशानी दूर कर दे। जब इन्सान के दिल में इस क़िस्म के जज़्बात पैदा होते हैं तो फिर इन्सान दूसरों के साथ ईसार (अपनी ज़रूरत पर दूसरे की ज़रूरत को तरजीह देने) से काम लेता है।

"सुकून" ईसार और क़ुर्बानी में है

इस्लाम की तालीम सिर्फ़ इतनी नहीं है कि बस दूसरे के सिर्फ़ वाजिब हुक़ूक़ अदा कर दिये, बल्कि इसके साथ साथ यह भी तालीम इस्लाम ने दी है कि दूसरों के लिये ईसार करो, थोड़ी सी क़ुर्बानी भी दो। यक़ीन करें कि जब आप दूसरे मुसलमान भाई के लिये क़ुर्बानी देंगे तो उसके नतीजे में अल्लाह तआला तुम्हारे दिल में जो सुकून,

आफ़ियत और राहत अता फ़रमायेंगे, उसके सामने बैंक बैलेंस की ख़ुशी कुछ भी नहीं है। चूंकि हमने ईसार (अपनी ज़रूरत पर दूसरे की ज़रूरत को तरजीह देना) और क़ुर्बानी पर अमल छोड़ रखा है और हमारी ज़िन्दगी में अब ईसार (अपनी ज़रूरत पर दूसरे की ज़रूरत को तरजीह देने) का कोई ख़ाना ही नहीं रहा कि दूसरे की ख़ातिर थोड़ी सी तक्लीफ़ उठा लें, थोड़ी सी क़ुर्बानी दे दें, इसलिये इस क़ुर्बानी की लज़्ज़त और राहत का हमें अन्दाज़ा ही नहीं।

एक अन्सारी के ईसार का वाक़िआ

क़ुरआने करीम में अल्लाह तआ़ला ने अन्सारी सहाबा के ईसार (अपनी ज़रूरत पर दूसरे की ज़रूरत को तरजीह देने) की तारीफ़ करते हुए इर्शाद फ़रमायाः

"يُؤْثِرُوْنَ عَلٰٓى اَنْفُسِهِمْ وَلَوْكَانَ بِهِمْ خَصَاصَةٌ" (سورة الحشر)

यानी यह अन्सारी सहाबा अपने आप पर दूसरों को तरजीह देते हैं, चाहे ये ख़ुद ग़ुरबत की हालत में क्यों न हों। चुनांचे वह वाक़िआ आप हज़रात ने सुना होगा कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के एक मेहमान एक अन्सारी सहाबी के पास आ गये, खाना कम था, बस इतना खाना था कि या तो ख़ुद खा लें या मेहमान को खिला दें। लेकिन यह ख़्याल हुआ कि अगर मेहमान के साथ हम बैठेंगे और उसके साथ खाना नहीं खायेंगे तो उसको इश्काल होगा इसलिये चिराग़ बुझा दिया ताकि मेहमान को पता न चले, और ज़ाहिर ऐसा किया कि वह भी साथ में खाना खा रहे हैं। इस पर क़ुरआने करीम की ऊपर लिखी गई आयत नाज़िल हुई। यानी ये लोग ग़ुरबत और तंगदस्ती की हालत में भी दूसरों को तरजीह देते हैं। इसलिये इस ईसार और क़ुर्बानी की लज़्ज़त को पाकर भी देखिए, दुसरे मुसलमान भाई के लिए ईसार और क़ुरबानी देने में जो मज़ा और रहात, लज़्ज़त और सुकून है, वह हज़ार बैंक बैलेंस के जमा करने से भी हासिल नहीं हो सकता। इसी लिये हुज़ूरे अक़्दस

सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अन्सार सहाबा और मुहाजिरीन के दरमियान यही ईसार और क़ुर्बानी का राबता क़ायम फ़रमाया। अल्लाह तआ़ला हम सब को दूसरों के लिये ईसार और क़ुरबानी की हिम्मत और तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, आमीन।

अफ़ज़ल अ़मल कौन सा?

अगली हदीस हज़रत अबू ज़र ग़िफ़ारी रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत की गयी है कि एक बार हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से पूछा गया किः

"اَیُّ الْاَعْمَالِ خَیْرٌ؟"

यानी अल्लाह तआ़ला के यहां कौन से आमाल सब से बेहतर हैं? जवाब में आपने इर्शाद फ़रमायाः

"اِیْمَانٌ بِاللّٰہِ وَجِھَادٌ فِیْ سَبِیْلِہٖ"

अल्लाह तआ़ला के नज़्दीक सब से बेहतर अ़मल अल्लाह पर ईमान लाना है, और दूसरे उसके रास्ते में जिहाद करना है।

ये दोनों अफ़ज़ल आमाल हैं। फिर किसी ने दूसरा सवाल किया किः

"ای الرقاب افضل؟"

यानी कौन से ग़ुलाम की आज़ादी ज़्यादा अफ़ज़ल है? उस ज़माने में ग़ुलाम और बांदियां हुआ करती थीं और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ग़ुलाम और बांदियों को आज़ाद करने की बहुत फ़ज़ीलत बयान फ़रमाई थी। तो किसी ने सवाल किया कि ग़ुलाम आज़ाद करना तो अफ़ज़ल है, लेकिन कौन सा ग़ुलाम आज़ाद करना ज़्यादा अफ़ज़ल है, और ज़्यादा सवाब का सबब है? आपने जवाब में इर्शाद फ़रमाया कि जो ग़ुलाम ज़्यादा क़ीमती और ज़्यादा नफ़ीस है, उसको आज़ाद करना ज़्यादा अज्र व सवाब का सबब और ज़्यादा अफ़ज़ल है। फिर किसी ने सवाल किया कि हुज़ूर! यह बताइये कि अगर मैं इनमें से कोई अ़मल न कर सकूं। जैसे किसी

उज़्र की बिना पर जिहाद न कर सकूं, और गुलाम आज़ाद करने का अमल तो उस वक़्त करें जब आदमी के पास गुलाम हो, या गुलाम ख़रीदने के लिये पैसे हों, लेकिन मेरे पास तो गुलाम भी नहीं है और पैसे भी नहीं हैं, तो फिर मैं किस तरह अज्र व सवाब ज़्यादा हासिल करूं? जवाब में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि फिर उस सूरत में तुम्हारे लिए अज्र व सवाब हासिल करने का तरीक़ा यह है कि कोई शख़्स जो बिगड़ी हुई हालत में हो तो उसकी मदद कर दो।

दूसरों की मदद करो

जैसे एक शख़्स किसी मुश्किल में मुब्तला है, परेशानी का शिकार है, उसकी हालत बिगड़ी हुई है, तो तुम उसकी मदद कर दो, या किसी अनाड़ी आदमी का कोई काम कर दो। आपने "अनाड़ी" का लफ़्ज़ इस्तेमाल फ़रमाया, यानी वह शख़्स जिसे कोई हुनर नहीं आता, या तो इसलिये कि वह माज़ूर है, या उसकी दिमाग़ी सलाहियत इतनी नहीं है कि वह अपने दिमाग़ को इस्तेमाल करके कोई बड़ा काम कर सके, तो तुम उसकी मदद कर दो और उसका काम कर दो। इसमें भी तुम्हारे लिये अल्लाह तआला के यहां बड़ा अज्र व सवाब है। अल्लाह तआला के न जाने कितने बन्दे ऐसे हैं जो या तो माज़ूर हैं, या तंगदस्त हैं, या उनके पास कोई हुनर नहीं है, कोई ज़ेहनी सलाहियत उनके पास नहीं है। तो अगर दूसरा शख़्स उनकी मदद का कोई काम कर दे तो उस पर भी अज्र व सवाब मिलेगा। और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम फ़रमा रहे हैं कि अगर तुम जिहाद नहीं कर सकते तो यह काम कर लो। इस से पता चला कि इसका सवाब भी अल्लाह तआला जिहाद के क़रीब क़रीब अता फ़रमायेंगे, इन्शा अल्लाह।

अगर मदद करने की ताक़त न हो?

उन सहाबी ने फिर सवाल किया कि या रसूलल्लाह सल्लल्लाहु

अ़लैहि व सल्लम! अगर मैं इतना कमज़ोर हूं कि इतना अ़मल भी न कर सकूं। यानी मैं ख़ुद ही कमज़ोर हूं और दूसरे कमज़ोर की मदद न कर सकूं तो फिर क्या करूं?

अब आप हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के जवाबों का अन्दाज़ा लगाइये कि आपके यहां ना उम्मीदी का कोई ख़ाना नहीं है। जो शख़्स भी आ रहा है उसको उम्मीद का रास्ता दिखा रहे हैं कि तुम अल्लाह तआ़ला की रहमत से मायूस मत हो जाओ। अगर यह अ़मल नहीं कर सकते तो यह अ़मल कर लो, अगर यह अ़मल नहीं कर सकते तो यह अ़मल कर लो।

लोगों को अपनी बुराई से बचा लो

बहर हाल! आपने जवाब में फ़रमाया कि अगर तुम कमज़ोर होने की वजह से दूसरों की मदद नहीं कर सकते तो यह एक अ़मल कर लो कि:

"تَدَعُ النَّاسَ مِنَ الشَّرِّ"

यानी लोगों को अपने शर और बुराई से महफ़ूज़ कर लो। यानी इस बात का एहतिमाम कर लो कि मेरी ज़ात से दूसरे को तक्लीफ़ न पहुंचे। इसलिये कि दूसरों को अपने शर से महफ़ूज़ करना यह तुम्हारा अपने नफ़्स पर सदक़ा होगा, क्योंकि अगर तुम दूसरे को तक्लीफ़ पहुंचाते तो तुम्हें गुनाह होता, अब तुमने जब अपने आपको दूसरों को तक्लीफ़ देने से बचा लिया तो गोया कि तुमने अपने नफ़्स को गुनाह और अ़ज़ाब से बचा लिया, इसलिये यह भी एक सदक़ा है जो तुम अपने नफ़्स पर कर रहे हो।

मुसलमान कौन?

हक़ीक़त यह है कि इस्लाम के जो समाजी ज़िन्दगी से मुताल्लिक़ अहकाम और समाजी ज़िन्दगी से मुताल्लिक़ तालीमात हैं उनकी बुनियाद यही है कि अपनी ज़ात से दूसरे को तक्लीफ़ न पहुंचे। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने साफ़ साफ़

इर्शाद फ़रमा दियाः

"المسلم من سلم المسلمون من لسانه ويده"

यानी मुसलमान वह है जिसके हाथ और ज़बान से दूसरे मुसलमान महफ़ूज़ रहें। न ज़बान से दूसरे को तक्लीफ़ पहुंचे, न हाथ से दूसरे को तक्लीफ़ पहुंचे। लेकिन यह चीज़ उसी को हासिल होती है जिसको इसका एहतिमाम हो और जिसके दिल में यह बात जमी ई हो कि मेरी ज़ात से किसी को तक्लीफ़ न पहुंचे।

आशियां किसी शाख़े चमन पे बार न हो

मेरे वालिद माजिद हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रहमतुल्लाहि अ़लैहि यह शेर बहुत ज़्यादा पढ़ा करते थे किः

तमाम उम्र इस एहतियात में गुज़री
आशियां किसी शाख़े चमन पे बार न हो

अपनी वजह से किसी पर बोझ न पड़े, अपनी वजह से किसी को तक्लीफ़ न पहुंचे। और हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली साहिब थानवी रहमतुल्लाहि अ़लैहि की तालीमात के बारे में अगर मैं यह कहूं तो मुबालग़ा न होगा कि कम से कम आपकी आधी से ज़ायद तालीमात का ख़ुलासा यह है कि अपने आप से किसी दूसरे को तक्लीफ़ न पहुंचने दो। और फिर तक्लीफ़ सिर्फ़ यह नहीं है कि किसी को मार पीट दिया, बल्कि तक्लीफ़ देने के बेशुमार पहलू हैं, कभी ज़बान से तक्लीफ़ पहुंच जाती है, कभी अ़मल से तक्लीफ़ पहुंच जाती है। इसलिये अपने आपको इस से बचाओ।

हज़रत मुफ़्ती-ए-आज़म रहमतुल्लाहि अ़लैहि का सबक़ लेने वाला वाक़िआ

हज़रत वालिद साहिब रहमतुल्लाहि अ़लैहि का यह वाक़िआ आपको पहले भी सुनाया था कि वफ़ात की बीमारी जिसमें आपका इन्तिक़ाल हुआ, उसी वफ़ात की बीमारी में रमज़ान मुबारक का महीना आ गया और रमज़ान मुबारक में बार बार आपको दिल की

तक्लीफ़ उठती रही और इतनी शिद्दत से तक्लीफ़ उठती थी कि यह ख़्याल होता था कि शायद यह आख़री हमला साबित न हो जाये। उसी बीमारी में जब रमज़ान मुबारक गुज़र गया तो एक दिन फ़रमाने लगे: हर मुसलमान की आरज़ू होती है कि उसको रमज़ान मुबारक की मौत नसीब हो, मेरे दिल में भी यह ख़्वाहिश पैदा होती थी कि अल्लाह तआला रमज़ान मुबारक की मौत अता फ़रमा दे, क्योंकि हदीस शरीफ़ में आता है कि रमज़ान मुबारक में जहन्नम के दरवाज़े बन्द कर दिये जाते हैं। लेकिन मेरी भी अजीब हालत है कि मैं बार बार सोचता था कि यह दुआ करूं कि या अल्लाह! रमज़ान मुबारक की मौत अता फ़रमा दे, लेकिन मेरी ज़बान पर यह दुआ नहीं आ सकी। वजह इसकी यह थी कि मेरे ज़ेहन में यह ख़्याल आया कि मैं अपने लिये रमज़ान मुबारक की मौत तलब तो कर लूं, लेकिन मुझे अन्दाज़ा है कि मेरी मौत के वक़्त मेरे तीमार दार और मेरे जो मिलने जुलने वाले हैं, उन सब को रोज़े की हालत में सख़्त मशक़्क़त उठानी पड़ेगी, और रोज़े की हालत में उनको सदमा होगा, और रोज़े की हालत में कफ़न दफ़न के सारे इन्तिज़ामात करेंगे तो उनको मशक़्क़त होगी। इस वजह से मेरी ज़बान पर यह दुआ नहीं आई कि रमज़ान मुबारक में मेरा इन्तिक़ाल हो जाये। फिर यह शेर पढ़ा:

तमाम उम्र इस एहतियात में गुज़री
आशियां किसी शाख़े चमन पे बार न हो

चुनांचे रमज़ान मुबारक के ११ दिन के बाद ११ शव्वालुल मुकर्रम को आपकी वफ़ात हुई। अब आप अन्दाज़ा लगायें कि जो शख़्स मरते वक़्त यह सोच रहा है कि मेरे मरने से भी किसी को तक्लीफ़ न पहुंचे, उस शख़्स का ज़िन्दगी में लोगों के जज़्बात का ख़्याल रखने का क्या आलम होगा?

तीन क़िस्म के जानवर

इमाम ग़ज़ाली रहमतुल्लाहि अलैहि फ़रमाते हैं कि अल्लाह तआला ने इस दुनिया में तीन क़िस्म के जानवर पैदा किए हैं। एक

क़िस्म के जानवर वे हैं जो दूसरों को फ़ायदा पहुंचाते हैं, तक्लीफ़ नहीं पहुंचाते, जैसे गाय है, भैंस है, बकरी है। तुम इनका दूध इस्तेमाल करते हो, और आख़िरकार उनको ज़िबह करके उनका गोश्त खा जाते हो। घोड़ा है, गधा है, तुम इन पर सवारी करते हो। दूसरी क़िस्म के जानवर ऐसे हैं जो दूसरों को तक्लीफ़ पहुंचाते हैं, जैसे सांप बिच्छू हैं, दरिन्दे हैं, ये जानवर इन्सान को तक्लीफ़ पहुंचाते हैं, फ़ायदा नहीं पहुंचाते। तीसरी क़िस्म के जानवर वे हैं जो न तो इन्सान को फ़ायदा पहुंचाते हैं और न ही तक्लीफ़ देते हैं।

इसके बाद इमाम ग़ज़ाली रहमतुल्लाहि अ़लैहि इन्सानों से मुख़ातिब होकर फ़रमा रहे हैं: ऐ इन्सान! अगर तुम ऐसे जानवर नहीं बन सकते जो दूसरों को फ़ायदा पहुंचाते हैं, तो कम से कम ऐसे जानवर बन जाओ जो न फ़ायदा देते हैं, न तक्लीफ़ देते हैं। ख़ुदा के लिये ऐसे जानवर मत बनो जो दूसरों को तक्लीफ़ ही पहुंचाते हैं, फ़ायदा कुछ नहीं पहुंचाते। यानी कम से कम तुम अपने शर (बुराई) से लोगों को महफ़ूज़ कर लो। और यही नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इर्शाद का ख़ुलासा है। अल्लाह तआ़ला हम सब को इन इर्शादात पर अ़मल करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, आमीन।

واٰخر دعوانا ان الحمد لله رب العالمين